कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

ग्रन्थावली

द्वितीय खण्ड

काव्य-खण्ड प्रथम भाग

माँ सावित्री फाउन्डेशन
की ओर से एकाधिकारी वितरक

लोकभारती प्रकाशन
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग
प्रयागराज-211 001
वेबसाइट : www.lokbhartiprakashan.com
ईमेल : info@lokbhartiprakashan.com

शाखाएँ- 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002
अशोक राजपथ, साइंस कालेज के सामने
पटना-800 006
36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

पहला संस्करण : 2022

गणपति ओवरसीज़
लखनऊ द्वारा मुद्रित

KUNWAR CHANDRAPRAKASH SINGH
GRANTHAWALI

Chief Editor : Shiv Mohan Singh
Shashi Prakash Singh

ISBN : 978-93-93603-13-5

पाँच खण्डों का संयुक्त
मूल्य : ₹ 4800/-

आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ग्रन्थावली

द्वितीय खण्ड

(काव्य-खण्ड प्रथम भाग)

प्रबन्ध सम्पादक एवं संरक्षक

डॉ. रवि प्रकाश सिंह

प्रधान सम्पादक

शिव मोहन सिंह **शशिप्रकाश सिंह**

सम्पादक मण्डल

डॉ. राम कठिन सिंह **श्रीमती सुषमा सिंह**

श्रीमती मीना सिंह **भक्तिवर्धन सिंह**

श्रीमती सुमन

माँ सावित्री फाउन्डेशन

की ओर से

लोकभारती प्रकाशन

आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

जन्म-शारदीय पूर्णिमा सं0 1967 तद्नुसार 18 अक्टूबर 1910

अमृतत्ववरण- पापाँकुशा एकादशी सं0 2054 तद्नुसार 12 अक्टूबर 1997

श्रीमती सावित्री देवी

जन्म - 30 मई 1919

अमृतत्ववरण- 05 अगस्त 1980

अनुक्रमणिका

क्रम.	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	जय जन्म-भूमि भास्वर और कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह की कविता		XI-XVI
2.	सम्पादकीय	शिवमोहन सिंह	XVII-LXIII
3.	प्रकाशकीय	शशिप्रकाश सिंह	LXV-LXVII
4.	मेघमाला		01-96
5.	शम्पा		97-176
6.	प्रतिपदा		177-296
7.	अपराजिता		297-424

जय जन्म–भूमि भास्वर और कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह की कविता

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
अधिष्ठाता, (कला संकाय)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने छायावाद युग में कविता लेखन प्रारंभ किया था। इनका पहला काव्य संग्रह 'मेघमाला' 1939 में प्रकाशित हुआ। यह समय–समय पर लिखी गई कविताओं का संग्रह है। छायावाद का कालखंड 1918–1938 तक मान्य है। कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह का जन्म 18 अक्टूबर 1910 को हुआ था। इनकी पूरी पढ़ाई–लिखाई छायावाद के कालखंड में हुई। काव्य संस्कार भी इसी युग की देन है। इनके युवावस्था में छायावाद की सर्वाधिक प्रतिष्ठित कृति 'कामायनी' का प्रकाशन 1935 में हुआ। पंत का 'युगान्त' 1936 में तथा सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'अनामिका' 1938 में प्रकाशित हुई। यह वह समय था जब प्रमुख छायावादी कवियों के साथ ही द्विवेदी युगीन कवि निरंतर अपने रचना कर्म में निरत थे। द्विवेदी युग और छायावाद के कवि युवा रचनाकारों को प्रभावित कर रहे थे। जिनकी गणना राष्ट्रीय काव्य धारा के कवियों में की जाती है वे सभी छायावाद के समय लेखन के क्षेत्र में सक्रिय थे। कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह ने हिंदी कविता के क्षेत्र जब प्रभावी ढंग से अपनी उपस्थिति दर्ज की उस समय मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुमद्रा कुमारी चौहान, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि कवि निरंतर लिख रहे थे। 1938 से 1943 तक न तो राष्ट्रीय काव्यधारा की गति शिथिल पड़ी थी, न ही छायावादी कविता का प्रभाव धूमिल हुआ था। जयशंकर प्रसाद के अतिरिक्त तीनों प्रतिष्ठित कवि लंबे समय तक काव्य क्षेत्र मे सक्रिय रहे और उनकी कविताएं छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों के साथ प्रकाशित होती रहीं। छायावाद के बाद के दौर का

नाम प्रगतिवाद देने से हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा की बड़ी क्षति हुई। ये वे कवि थे जो साम्यवादी विचारधारा में दीक्षित हुए बिना भारतीय आमजन और किसान मजदूर की पीड़ा को निरंतर अभिव्यक्ति दे रहे थे। इनकी रचनाओं ने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के मन में उत्साह का संचार किया। अधिकांश कवि स्वयं प्रखर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। क्रांतिकारिता इनके रग–रग में बसी थी। इन कवियों ने अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक यातनाएं झेलीं। इनकी आंखों में भारत को सुदृढ़, तेजस्वी, पराक्रमी और स्वतंत्र बनाने का स्वप्न था तथा तदनुरूप आचरण भी। ये मात्र वाग्वीर नहीं थे। रचना के साथ ही प्रत्यक्ष मैदान में योद्धा की भांति सक्रिय थे। इन प्रबल काव्य संस्कारों के साथ डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह कविता के क्षेत्र में प्रवृत्त हुए।

'मेघमाला' काव्य संग्रह विविध प्रकार की प्रवृत्तियों से युक्त है। इसमें कल्पना, आदर्श, सौंदर्य, यथार्थ, विरोध, व्यापक करुणा तथा आस्था है। छायावाद की आर्द्रता और चेतना के अनेक गीत इस संग्रह में हैं। युवा कवि की सौंदर्य चेतना में गति, स्थूलता, विश्वास, विरह, मिलन, साहचर्य, विलास, आलंबन–उद्दीपन के भाव, प्रकृति, उच्छ्वास, हर्ष, विषाद, आशा, निराशा, नवता तथा संचरण है। इन कविताओं में विजय की लालसा, प्रतिरोध, प्रतिकार, स्मृति, प्रतीक्षा, उच्छ्वास, पुष्पों का विकास, छंद, प्रकाश, पराधीनता का तम, आकुल स्वर, मधुमास का हर्ष, उषा के आगमन और रात्रि के अंधकार के जाने का उल्लास है। मेघमाला की अनेक रचनाएं कृषि कर्म और फसलों से जुड़ी हुई हैं। इनमें भारतीय गाँव की सुगंध है। इस के संग्रह के प्रकाशन के समय द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया था। देश की स्वतंत्रता दूर दिख रही थी। ऐसे में आस्थावान कवि का प्रभु से नौका पार कराने का निवेदन स्वाभाविक है। नास्तिक ईश्वर से प्रार्थना को पलायन मानते हैं, आस्तिक संबल। यह संबल घोर विपदा में बल प्रदान करता है और संघर्ष के लिए नव स्फूर्ति। इस प्रकार के वंदना के कई छंद इस संग्रह में हैं। युवा कवि परिवर्तन का आकांक्षी है। गुलाम भारत में उस युग में रचनाएं अनके प्रकार की नवता की कामना के साथ लिखी जा रही थीं। भारत कई प्रकार की जड़ताओं और बंधनों से युक्त था। आज वे सब समाप्त हो गई हैं, ऐसा भी नहीं है। कम अवश्य हुई हैं। परिवर्तन जैसे शब्दों की निरंतर आवृत्ति ने युग की चेतना को झकझोरा –

उतरो परिवर्तन !
भरो, करो जग के जगमग मग,
हरो जटिल भ्रम–तम–जड़ दुख–नग,
मिले दृष्टि स्थिर, सुधा–वृष्टि फिर,
सृष्टि नवल अमरण !

उस युग की अनेक प्रकार की विषमताओं, विद्रूपताओं, दमन और निराशा के बीच यह कहकर उन्होंने 'असत ध्वस्त हो सत्य का उदय, मृत्यु जाय 'जय जीवन की जय'; 'आई यह शारद शुभ्र रात'; 'गत हो मृत्यु–भीति, मृत्युंजय'; 'तुम उषा मेरे गगन की'; 'फागुन के दिन आए'; 'रे, शिशिर–शीर्ण धरणी ने पाया, फिर यौवन पाया'; 'बसंती बहती नई बयार'; 'निश्चय जय हे तेरी'; 'उर–उर में आषाढ़ समाया'; 'जागरण की रात'; 'भारत भूति–अशेष'; भारत–बोध का जगाया। भारत विभाजन की काली छाया युग के सचेत कवि देख रहे थे। एक तरफ माखनलाल चतुर्वेदी जैसे प्रतिष्ठित कवि अखण्ड भारत की कामना कर रहे थे वही प्रचंड स्वातंत्र्य समय के समय के युवा कवि कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह 'चिर अविभाज्य अखंड' की बात अपनी कविताओं में भारत भूमि की समृद्धि के संदर्भ से स्थापित कर रहे थे। भारत का विभाजन नैसर्गिक नहीं था। सांस्कृतिक भी नहीं। इसलिए अनेक नव ऋषियों ने विभाजन के बावजूद देश को पुनः अखण्ड होने की बात कही। कवि ने भारतीय जीवन में जीवन पर्यन्त आशा की किरण को देखा। इसीलिए वे सुख का सावन बरसाते हैं, ताप का त्रास हरने की आशा करते हैं तथा वैषम्य की समाप्ति का उद्घोष ज्योति के जल किरण की वर्षा के साथ करते हैं।

'शम्पा' का प्रकाशन 1943 में हुआ। यह भी समय–समय पर लिखी गई कविताओं का संग्रह है। देश विभाजन का स्वर स्वतंत्रता के पूर्व ही तीव्र हो गया था। इसकी चिंता राष्ट्रभक्त कवियों को सता रही थी। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन तीव्र गति से चल रहा था। पूरा देश आंदोलित था। देश को जगाने के लिए कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने हल्दी घाटी, पाटलिपुत्र, अयोध्या और हिमालय को लेकर कवितायें लिखीं। इस संग्रह में महाराणा प्रताप पर दो कविताएं हैं। हल्दी घाटी और महाराणा प्रताप स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के लिए प्रेरणा के आधार थे। अनेक क्रांतिकारियों ने हल्दी घाटी की मिट्टी अपने

साथ रखकर प्रेरणा ली। महाराणा प्रताप को दृढ़, स्वातंत्र्यव्रती, तपःपुंज, हिन्दुत्व का रक्षक तथा कुशल योद्धा के रूप में इन्होंने याद किया है। अयोध्या सहस्त्रब्दियों से भारतीय चेतना का प्रतीक रही है। परतंत्र देश में कवि ने राम, अयोध्या और रामराज्य को केन्द्र में रखकर जागरण का गीत लिखा है। देशवासियों को रामराज्य का दाय सँभालने के लिए प्रेरित किया है। श्रीराम और राणा की चेतना की चर्चा अनेक कविताओं में है। 1940 से 1945 के बीच देश की जनता और नेताओं के मन में विभाजन का भय निरंतर घनीभूत होता जा रहा था। अविभाज्य–अखण्ड देश को केन्द्र में रखकर कविता लिखते समय कवि ने हिन्दुओं का आह्वान किया है। हिन्दुओं का आह्वान अनेक आलोचकों को संभवतः ठीक नहीं लगा होगा। ऐसा न होता तो स्फुट कविता से लेकर महाकाव्य लिखने वाले कवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह हिन्दी आलोचकों की दृष्टि से ओझल नहीं हुए होते। उस दौर में इस तरह की रचनाएं माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे अनेक रचनाकार कर रहे थे। विभाजन की माँग निरंतर मुस्लिम नेताओं की ओर से की जा रही थी। आर्यभूमि के बँटने का दुख हिन्दुओं को सर्वाधिक था। उन्हें पंचनद का क्षेत्र, तक्षशिला, गुरु नानक देव की जन्मभूमि, सिंधु सभ्यता, ऋषि–मुनियों की तपःभूमि तथा संस्कृति का अविरल प्रवाह खंडित होते दिख रहा था। यह दर्द विभाजनकारी तत्वों को नहीं सता रहा था। उस समय कवि सागरतट पर प्रलयपुंज–सी छवि तथा रामबाण की शिखा देख रहा था। सिंधुतरंगों में अपनी जयलेखा निहार रहा था। आर्य जाति की अमरता का संदेश लेकर 'शम्पा' संग्रह की कविताएं रची गयी हैं।

'अपराजिता' काव्य संग्रह में 49 कविताएं संकलित हैं। पहली रचना 'अपराजिता' ध्वनिरूपक है। इस संग्रह के गीतों के आधार पर उनकी राष्ट्रीय चेतना का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को नवयुग के आलोक–प्रदाता के रूप में स्मरण किया गया है। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देने का संघर्ष तेज था। भारतीय संविधान में राजभाषा के रूप में हिन्दी स्थापित हुई। कवि ने हिंदी के जयगान के साथ तमिल, तेलुगु, कन्नड़, बंगला आदि भाषाओं का भी जयगान किया है। हिमालय उनकी चेतना को बार–बार झकझोरता है। स्वतंत्रता के पश्चात भी भारत को तोड़ने वाली शक्तियाँ कमजोर नहीं हुईं। पड़ोसियों द्वारा कश्मीर और नेफा की माँग लगातार होती रही, आज भी हो रही है। हिमालय अपनी पहचान को बचाने के

लिए व्याकुल है। अनेक गीतों में भारतीय अस्मिता को सँजोने की बात की गई है। इस संग्रह में जहाँ श्रीकृष्ण पर कविता है, वहीं मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी तथा निराला को केन्द्र में रखकर भी लिखा गया है।

'विजया' खंडकाव्य में आद्या, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि शीर्षकों से अध्याय हैं। देवियों के चरित्र को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करना इस ग्रंथ की बड़ी विशेषता है। भारत में जिन्हें देवी के रूप में स्मरण किया गया है, वे धन, शौर्य और ज्ञान की प्रदाता हैं। इसकी आवश्यकता हर युग में रही है। हर युग में आततायी, शोषक और विद्यासंहारक प्रकट होते रहते हैं। ऐसे दानवों पर विजय के लिए लक्ष्मी, दुर्गा और सरस्वती का स्मरण स्वाभाविक है। शक्ति तत्व पर अनेक शास्त्रों में लिखा गया है। ये भारतीय ज्ञानपंरपरा के अनुरूप शिव और शक्ति के सामरस्य की चर्चा करते हैं। संवाद शैली में अनेक पौराणिक पात्रों के माध्यम से भारत की विजयिनी शक्ति को स्मरण किया गया है। यह संस्कृत शब्दावली को आधुनिक कविता की भाषा में सजाकर प्रस्तुत करने का एक साहसिक और बौद्धिक उपक्रम है।

ऋतंभरा का प्रथम संस्करण 1978 में आया। यह समकालीन कविता के समय की छंदोबद्ध रचनाएं हैं। चित्रात्मकता तथा नाद सौंदर्य को अनेक रचनाओं में रेखांकित किया जा सकता है। कवि की सौंदर्य दृष्टि का परिपाक इस संग्रह की कविताओं में है। जो कविताएं छंदबद्ध नहीं हैं, उनमें तुक और लय की योजना सायास की गई है। अनेक रचनाओं में सामाजिक और शैक्षणिक जीवन के दीर्घ अनुभव की अभिव्यक्ति कई रूपों में हुई है। कवि की प्रारंभिक रचनाओं में विभिन्न रूपों में प्रकृति आती है। प्रौढ़ावस्था की कविताओं में भी प्रकृति के विभिन्न चित्र अनेक कविताओं में दिखलाई पड़ते हैं। समकालीन कविता के अनेक तत्वों को इन रचनाओं में ढूंढ़ा जा सकता है। अनेक प्रकार की विसंगतियों के बीच प्रेरणा और उत्साह का स्वर देखा जा सकता है—'मिलेगा किनारा, मिलेगा किनारा। बहो तो, बढ़ो तो, मिलेगा किनारा।' इस संग्रह की कविताओं में सौंदर्य के कई रूप हैं। यहाँ नयनाभिराम शशि, चपला की रेखा, केशों की निशा, शिखी के नृत्य, पिकी के गान, केतकी की गमक, शरद की अमंद ज्योत्सना, कदंब के किसलय, विकल यौवन, पल्लवित सरिता, फागुन की छवि, स्तब्धमरु, विरस पतक्षण, कीर्ति की ऋचाएं तथा फसल काटती स्त्रियों के सुख और सौंदर्य हैं।

'जीवन आस–पास' काव्य संग्रह की भूमिका कवि ने 03 / 09 / 1996 को 'अपनी बात' शीर्षक से लिखी है। सरस्वती वंदना इनके प्रत्येक संग्रह में है। इस संग्रह में सामाजिक घटनाओं पर लिखी गई कविताएं भी हैं। 'नौ अगस्त', 'लोकतंत्र का महापर्व' 'लंदन में, मंडेला', 'राम और ऐतिहासिक शोध' जैसी कविताओं के साथ ही 'मलजीवी', 'कूड़ाजीवी', 'आगि पेट की', 'साम्प्रदायिकता ढहाओ', 'भारतीय सैनिकों से' तथा 'पूस का दिन' जैसी कविताएं विविधता तथा संवेदना की गहराई के कारण स्वाभाविक रूप से ध्यान आकर्षित करती हैं। बड़ी संख्या में अप्रकाशित कविताएं भी इस खंड में संगृहीत हैं।

कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह लगभग 60 वर्षों तक हिंदी कविता के क्षेत्र में सक्रिय रहे। छायावाद प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नई कविता और समकालीन कविता के साक्षी रहे हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्यापन करते हुए रचनात्मक धरातल पर सक्रियता इन्हें तमाम शिक्षकों से अलग करती है। हिंदी का प्रचार भी उनके जीवन का ध्येय रहा है। इस कार्य को इन्होंने विदेशी विश्वविद्यालयों में भी किया। लेखन की निरंतरता, युगबोध, प्रकृति वर्णन, सौंदर्य दृष्टि, छंदों का प्रयोग, परंपरा का ज्ञान तथा अनेक प्रकार के झंझावतों के बीच अकुंठ भाव से अपने पथ पर चलते रहना इनके रचनाकर्म की विशिष्टता है। भारत भूमि की वंदना तथा इसे हिंदू भूमि के रूप में स्थापित करना इनके चिंतन.मनन तथा सांस्कृतिक बोध का परिणाम है। अनादिकाल से आसेतु हिमाचल को जिस धर्म तथा जाति ने समृद्ध किया है उसे आर्य, सनातनी या हिंदू किसी भी नाम से पुकारें, कोई अंतर नहीं पड़ता। नैसर्गिक सम्पृक्ति का स्मरण युग की मांग है। सांस्कृतिक चेतना के विस्मरण से राष्ट्र खंडित हुआ उसे बार–बार स्मृत करने की आवश्यकता है। कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह वर्तमान के कवि हैं और उससे भी अधिक भविष्य के।

सम्पादकीय

भारत की स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव वर्ष में महाकवि आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की दीर्घकालीन काव्य–साधना के कविता संग्रहों की ग्रंथावली का दूसरा तथा तीसरा खण्ड–काव्यखण्ड– हिन्दी के विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। हमें विश्वास है कि 'चिन्मय–रस' की मंगल–वृष्टि करने वाले इस कवि की यह ग्रंथावली, छायावाद के शताब्दी व्यापी कुहासे को छाँटने में सफल होगी। हिन्दी–जगत प्रारंभ से ही छायावाद विशेष रूप से निराला का विरोधी रहा है। यही कारण है कि छायावाद का सच्चा स्वरूप आज तक उद्‌घाटित नहीं हो सका है। कुँवर साहब निराला के अनन्य भक्त रहे हैं इसलिए वे भी हिन्दी– जगत के कोप से बच नहीं सके। जबकि सच यही हैं कि यदि निराला छायावाद के प्रवर्तक कवि हैं, तो कुँवर साहब इस काव्य–धारा की कविता के उन्नायक कवि हैं। उनकी जीवन व्यापी काव्य–साहित्य–साधना के आधार पर उन्हें छायावाद का उन्नायक महाकवि माना जाना चाहिए और उनकी काव्य–भाषा को भावों के अनुरूप उनके काव्यादर्श का अन्यतम रूप। उनका शब्द–चयन एवं शब्द–विन्यास उन्हें अन्य छायावादी कवियों की तुलना में उनकी निजता को प्रमाणित करते हैं। परन्तु हिन्दी–कविता का यह परम दुर्भाग्य है कि हिन्दी–जगत उन्हें समुचित आदर नहीं देना चाहता। हिन्दी के सामान्य पाठक को यदि छोड़ भी दिया जाये तो छायावाद के प्रकाण्ड पण्डित भी उन्हें पहचान नहीं सके हैं। कुँवर साहब के जन्मशती वर्ष में यह अनुभव किया गया था कि यद्यपि उनका समस्त काव्य प्रकाशित है, तथापि हिन्दी–जगत उनके काव्य से पूरी तरह से अनभिज्ञ है। इसलिए उनकी काव्य–साहित्य–साधना की ग्रंथावली के प्रकाशन की योजना बनाई गई थी।

कुँवर साहब की ग्रंथावली का प्रथमखण्ड– महाकाव्य–खण्ड प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी जगत में इसका समुचित स्वागत हुआ है। ग्रंथावली के प्रथम खण्ड के प्रकाशन के साथ–साथ 'शब्दिता' पत्रिका का एक विशेषांक 'ऋषि–परम्परा के महाकवि' भी प्रकाशित हो चुका है। इस विशेषांक ने कुँवर साहब के साहित्य को समझने और समझाने में विशेष योगदान दिया है। इसके लिए हम सभी 'शब्दिता' पत्रिका के प्रधान सम्पादक प्रो0 रामकठिन सिंह के प्रति आभारी हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में कुँवर साहब की काव्य–साधना के

लगभग वे सभी गीत तथा कविताएँ संकलित हैं, जिनका प्रणयन सन् 1930 ई0 से लेकर सन् 1996 ई0 के मध्य हुआ था। इस खण्ड में कुँवर साहब की ६६ वर्षों की साधना का अभिलेखीय साक्ष्य है जो न केवल कुँवर साहब की साहित्य–साधना को प्रमाणित करता है, अपितु इस बात का दस्तावेज भी है कि कुँवर साहब ने अपनी काव्य–साधना से छायावाद को शताब्दी–व्यापी–व्यक्तित्व प्रदान किया था।

कुँवर जी की काव्य–साधना में निरन्तर सक्रियता के कारण उनकी अनेक काव्य–कृतियाँ, नाटक, तीन महाकाव्य, शोध–ग्रन्थ तथा समालोचना–ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। इन पद्य तथा गद्य रचनाओं के अतिरिक्त उनके द्वारा वेदों के पद्यानुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। यही नहीं, वे आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ खोजकर्ता भी बने। नागरी प्रचारिणी सभा को छोड़कर इतने दुर्लभ ग्रंथों की पाण्डुलिपियों की खोज, किसी विश्वविद्यालय के किसी अन्य आचार्य द्वारा संभव नहीं हो सकी है। खोज का यह दुर्लभ कार्य, कुँवर जी ने अपने गुजरात के सीमित कार्य–काल में, संभव कर दिखाया था।

कुँवर जी ने वर्ष 1958 ई0 में युवराजदत्त महाविद्यालय लखीमपुर खीरी (उ0प्र0) को छोड़कर उसी वर्ष एम0एस0 विश्वविद्यालय बड़ौदा, गुजरात के स्नातकोत्तर स्तर के विभागाध्यक्ष का कार्य–भार सँभाला था। यहाँ आकर कर्म–वीर आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने अनेक संघर्शपूर्ण चुनौतियों को अंगीकार किया। इन चुनौतियों में पहली चुनौती, थी, इस अहिन्दी भाषा–भाषी प्रान्त के विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को भारत के प्रख्यात विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों के समकक्ष खड़ा करना। उन्होंने इस चुनौती को स्वीकार कर मात्र तीन वर्ष की सीमित अवधि में ही इस विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को शोध–केन्द्र बनाने में सफलता प्राप्त की। कुँवर जी शोध–निदेशक बने और उन्होंने अपने विभाग के प्रथम बैच के तीनों छात्रों को शोध के लिए पंजीकृत कराया। इसी के साथ ही कुँवर जी तुलसी चतुश्षती वर्ष का सफल आयोजन भी किया था। इस समारोह में सहभाग करने के लिए कुँवर जी ने भारतवर्ष के प्रायः उन सभी आचार्यों को आमंत्रित किया था, जो तुलसीदास के अधिकारी विद्वान माने जाते थे। कुँवर जी के आमंत्रण पर (1) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, (2) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, (3) डॉ0 नगेन्द्र, (4) आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, (5) डॉ0 भगीरथ मिश्र, (6) डॉ0 उदयभानु सिंह आदि आचार्यों ने उपस्थित होकर इस त्रिदिवसीय समारोह को सफल बनाने में अपना योगदान दिया था।

दूसरी बड़ी चुनौती, इस अहिन्दी भाषा–भाषी प्रदेश में हिन्दी भाषा का प्रसार–प्रचार करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने विश्वविद्यालय के समस्त शिक्षक तथा गैरशिक्षक कर्मचारियों को हिन्दी का ज्ञान अर्जित करने के लिए हिन्दी विषय अनिवार्य करा दिया था। इस योजना में विश्वविद्यालय के कुलपति तथा कुल सचिव को भी हिन्दी–योग्यता का प्रमाणपत्र अर्जित करना अनिवार्य था। इसके लिए एक पूर्णकालिक शिक्षक की नियुक्ति का प्रावधान था। इसकी नियमित पढ़ाई के लिए कुँवर जी ने विश्वविद्यालय के हिंदी–विभाग के प्रथम बैच के अपने सुयोग्य शिष्य डॉ0 प्रतापनाथ झा को नियुक्त किया था। यह योजना इतनी कारगर हुई थी कि विश्वविद्यालय के अनेक छात्र–छात्राओं ने भी हिन्दी में विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए कुलपति महोदय से आग्रह किया था। कुलपति जी के आग्रह पर इन इच्छुक छात्र–छात्राओं को स्वयं कुँवर जी ही सप्ताह में दो बार कक्षा लेते थे।

तीसरी महत्वपूर्ण चुनौती जिसे कुँवर साहब ने अंगीकार किया था वह थी राजदरबारों तथा अन्य स्थानों पर दबे दुर्लभ ग्रंथों की पाण्डुलिपियों की खोज करना। उन्होंने इन दुर्लभ पाण्डुलिपियों की खोज ही नहीं की, वरन् उनका सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित भी कराया था। ये पाण्डुलिपियाँ आज भी एम0एस0 विश्वविद्यालय में सुरक्षित हैं। दुर्लभ ग्रन्थों की खोज की प्रेरणा कुँवर जी को अपने महान गुरु बाबू श्यामसुन्दर दास से मिली थी। बाबू जी ने दुर्लभ ग्रंथों की पाण्डुलिपियों की खोज नागरी प्रचारणी सभा के माध्यम से करायी थी, जबकि आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी ने यह कार्य स्वयं अकेले किया था। इन अन्यान्य व्यस्तताओं के बाद भी उनका सृजन कभी मन्द नहीं पड़ा।

कुँवर साहब अपने जीवन काल में यद्यपि अनेक समस्याओं तथा चुनौतियों से घिरे रहे, तथापि उन्होंने अपनी कवि–प्रतिभा को जीवन्त रखने में सफल हुए थे। उन्हें अपनी व्यस्तताओं से जब कभी समय मिलता तब वे अपनी काव्यसाधना में लीन हो जाते थे। वे महाकवि निराला के सान्निध्य में आने के बाद इस आन्दोलनजीवी कविता के युग में छायावादी भाव–भूमि पर अन्त तक पूरी दृढ़ता से संस्थित रहे। वे निराला के परम भक्त–शिष्य थे। निराला अकेले लड़े। दैन्य और पलायन वे जानते नहीं थे। कुँवर जी भी अकेले लड़े और अपना लोहा मनवाया। दैन्य और पलायन वे भी नहीं जानते थे। उनका काव्य भारतीयता का पर्याय है। उनकी काव्य भाषा स्वतः यह

प्रमाणित करती है कि हिन्दी संस्कृत की सच्ची उत्तराधिकारिणी ही नहीं, वह स्वयं आधुनिक संस्कृत है। 'शम्पा' के मातृभूमि से संबधित गीत तथा विजया की कविता को विभक्ति हीन संस्कृत ही कहा जायेगा। कुँवर जी के समान संस्कृत निष्ठ प्रांजल काव्यभाषा लिखने वाला दूसरा कवि नहीं जन्मा।

छायावाद कोई साधारण काव्य–प्रवृत्ति नहीं है। यह आधुनिक कविता की सर्वोत्तम काव्य–प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति को शताब्दी व्यापी व्यक्तित्व प्रदान करके छायावाद के पंच परमेश्वरों– (1) निराला, (2) प्रसाद, (3) पन्त, (4) महादेवी वर्मा, (5) आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाष सिंह ने छायावाद को विश्व–काव्य के समकक्ष स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। इन कवियों में आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह का योगदान महत्वपूर्ण है। हम कुँवर साहब की उपेक्षा करके छायावाद की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। जो लोग कुँवर साहब को छायावाद का कवि नहीं मानते हैं, उन्हें कुँवर साहब के सहपाठी, प्रगतिवादी समीक्षा के प्रमुख आचार्य तथा कवि डॉ0 रामविलास शर्मा को ठीक से पढ़ना चाहिए।

डॉ0 रामविलास शर्मा ने सन् 1943 ई0 में 'माधुरी' के जुलाई अंक में लिखा था कि– 'शम्पा' और 'मेघमाला' में छायावादी कविता अपने पूर्ण विकास पर है। पर जिन दिनों ये रचनाएँ प्रकाषित हुई थीं, उन दिनों हिन्दी काव्य क्षेत्र में प्रगतिवादी आन्दोलन का सूत्रपात हो चुका था। डॉ0 कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह को समीक्षकों ने केवल स्वच्छंदतावादी और आदर्शवादी कवि मानकर उनके काव्य के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों की उपेक्षा की है।''

छायावाद के अभ्युदय के सौ वर्ष बीत जाने के बाद भी हमारी विश्वविद्यालयीय हिन्दी–समीक्षा छायावादी कवियों की काव्य–साहित्य–साधना से आज तक अपरिचित ही है। हिन्दी–समीक्षा का दारिद्र्य इस बात में है कि वह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यताओं और स्थापनाओं से एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकी है। हिन्दी–समीक्षा आज भी आचार्य शुक्ल के इर्द–गिर्द घूमती रहती है। वह आज भी वही घिसा–पिटा राग अलाप रही है कि छायावाद के कुल चार कवि हैं, जबकि वस्तु स्थिति यह है कि छायावाद के प्रमुख कवि चार नहीं, पाँच हैं। ये पाँच कवि हैं– (1) निराला, (2) प्रसाद, (3) पन्त, (4) महादेवी वर्मा और (5) कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह। इन कवियों में आचार्य कुँवर साहब छायावाद के अन्यतम कवि हैं। वे

सन् 1931 ई0 में निराला के सम्पर्क में आये थे। उनके सम्पर्क में आने के बाद कुँवर साहब छायावाद में पूरी तरह से दीक्षित हो चुके थे। आचार्य कुँवर साहब ने ग्यारह–बारह वर्ष की आयु से ही कविता करना प्रारम्भ किया था, परन्तु उनकी काव्य–चेतना का सम्यक विकास सन् 1931 ई0 में निराला के सम्पर्क में आने के बाद ही प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व कुँवर साहब छायावाद के प्रमुख कवियों– निराला, प्रसाद, पन्त तथा महादेवी वर्मा की छायावादी भाव–भूमि की काव्य–कृतियों– 'अनामिका' (1922), 'परिमल'(1929), 'झरना' द्वितीय संस्करण, (1927), 'पल्लव'(1928), 'नीहार' (1930), आदि का पारायण कर चुके थे। इस प्रकार कुँवर साहब ने छायावादी भाव–भूमि से परिचित तथा दीक्षित होने के बाद ही उसमें प्रवेश किया था। निराला कुँवर साहब के काव्य–गुरु थे। निराला के संसर्ग में आने के पश्चात कुँवर साहब के गीत तथा कविताएँ उनके साथ–साथ 'माधुरी' तथा 'सुधा' आदि पत्रिकाओं में छपने लगी थीं और जब छायावाद के चारों कवियों–निराला, प्रसाद, पन्त तथा महादेवी वर्मा ने क्रमशः छायावाद से नाता तोड़ लिया था तब भी अकेले कुँवर साहब छायावाद के उन्नायक कवि बने रहे। सबसे पहले पन्त ने, सन् 1932 ई0 में छायावाद के अन्त की घोषणा करते हुए अरविन्द के प्रभाव से प्रगतिवादी बन गये थे। इसके बाद प्रसाद ने 'कामायनी' जैसा महाकाव्य देकर सन् 1938 ई0 में ब्रह्मलीन हो गये थे। इसी वर्ष निराला ने छायावाद को उत्कर्ष तक पहुँचाते हुए, सन् 1938 ई0 में 'अनामिका' (1938) तथा 'तुलसीदास'(1938) जैसी काव्य–कृतियाँ देकर प्रगति– प्रयोग की ओर मुड़ गये थे। निराला के बाद महादेवी वर्मा ने अपनी 'दीपशिखा' (1942) देकर, काव्य–साधना से सन्यास ले लिया था। परन्तु आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने 'मेघमाला' (1942) तथा 'शम्पा' (1943) नामक काव्य–कृतियाँ देकर छायावाद में अपने प्रवेश की सूचना दी थी और इसके बाद छायावाद को शताब्दी–व्यापी बनाने की साधना में लग गये थे। ध्यान देने की बात यह है कि 'मेघमाला' तथा 'शम्पा' में संकलित सभी गीत तथा कविताएँ सन् 1930 ई0 से सन् 1938 ई0 के मध्य रची गई थीं। इन सभी गीतों तथा कविताओं के संकलन प्रकाशित किये जाने के पूर्व ये सभी गीत निराला के साथ 'माधुरी' तथा 'सुधा' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे।

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की ग्रन्थावली के प्रथम खण्ड द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि वे मूलतः कवि हैं, साथ ही छायावाद के कवि

हैं। उन्होंने अपनी काव्य–साधना से यह प्रमाणित किया है कि वे निराला के बाद ऐसे कवि हैं, जिनकी कविताओं में छायावाद की समस्त विशेषताएँ प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। प्रसाद विकासात्मक काव्य–प्रतिभा के कवि हैं। वे ब्रजभाषा से प्रारम्भ कर खड़ी बोली में आते हैं। उनका प्रारंभिक काव्य शिथिल है। उनमें अनेक निर्बलताएँ हैं। छायावाद की उच्चतर भाव–भूमि तक आने में उन्हें लम्बा समय लगाना पड़ा था। सही अर्थों में वे 'आँसू' के द्वितीय संस्करण (1930) तथा 'लहर' (1933) के गीतों तथा कविताओं द्वारा ही छायावाद की प्रवृत्तियों के सफल कवि बन पाते हैं। यह बात अलग है कि आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी अपने प्रिय कवि प्रसाद की प्रारंभिक कविताओं में 'कामायनी' महाकाव्य की सम्भावनाएँ खोज लेते हैं। पन्त तो छायावाद के अल्प–जीवी कवि रहे। वे प्रकृति के चतुर चितेरे कवि हैं। उनकी भाशा में एक आकर्षण है। परन्तु वे छायावाद में केवल चार वर्ष रहते हैं और इसके बाद प्रगति–प्रयोग की ओर मुड़ जाते हैं। महादेवी वर्मा छायावाद की प्रमुख कवयित्री हैं, परन्तु उनकी अनुभूति का क्षेत्र सीमित है। वह रहस्यवाद की कवयित्री हैं। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है। इन कवियों में कुँवर साहब का काव्य–व्यक्तित्व इसलिए विराट हो जाता है कि उन्होंने सन् 1930 से लेकर सन् 1997 तक छायावादी भावभूमि से एक क्षण के लिए भी विलग नहीं हुए। वे प्रेम और सौंदर्य तथा प्रकृति–चित्रण के साथ–साथ, देश–प्रेम एवं मानव–प्रेम के अन्यतम कवि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित रहते हैं। उनके भावों, उनकी भाषा, उनके छंदों, उनकी शैली तथा उनके काव्य–रूपों पर निराला के काव्य व्यक्तित्व की अमिट छाप है। निराला उनके काव्यगुरु थे। उन्होंने कभी भी निराला से प्रतिस्पर्धा नहीं की। परन्तु, उनकी काव्य–साधना में अनेक ऐसे पड़ाव आते हैं, जहाँ वे निराला से आगे निकलते हुए प्रतीत होते हैं।

निराला और कुँवर साहब को न्याय न मिलने का एक बड़ा कारण यह है कि हिन्दी–जगत में छायावाद के विकास–क्रम के इतिहास का अनुशीलन ही नहीं किया जा सका है।

छायावाद के इतिहास का तथ्यपरक विष्लेषण करने से पता चलता है कि छायावाद के नाम से प्रख्यात जिस काव्य–प्रवृत्ति का प्रवर्तन निराला ने अपनी कालजयी प्रथम कविता 'जुही की कली' से सन्–1916 ई0 में किया था, उस काव्य–प्रवृत्ति को शताब्दी–व्यापी–विस्तार छायावाद के महाकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने अपनी दीर्घकालीन काव्य–साधना से किया था।

परन्तु हिन्दी में इस बात का अध्ययन आज तक किसी भी समालोचक ने नहीं किया। इस बात की जानकारी के लिए छायावाद के विकास–क्रम का अनुशीलन आवश्यक है। छायावाद के विकास–क्रम के अनुशीलन के लिए छायावाद के विकास को चार चरणों में विभक्त कर देखा जाना आवश्यक है–

(1) प्रवर्तनकाल–सन् 1916 ई0 से सन् 1924 ई0तक। कुल समय 08 वर्ष।

(2) प्रकर्षकाल– सन् 1924 ई0 से सन् 1932 ई0तक। कुल समय 08 वर्ष।

(3) उत्कर्षकाल–सन् 1932 ई0 से सन् 1943 ई0तक। कुल समय 11 वर्ष।

(4) उन्नयनकाल–सन् 1943 ई0 से सन् 1997 ई0तक। कुल समय 54 वर्ष।

(1) प्रवर्तन काल–

सन् 1916 ई0 सन् 1924 ई0 तक। कुल समय 08 वर्ष।

कवि, कविताएँ और प्रकाशित काव्य–कृतियाँ–

पं0 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(क) प्रकाशित कविताएँ–

'जूही की कली', 'तुम और मैं', 'अधिवास', 'प्रिया के प्रति', 'संध्या सुन्दरी', 'जागो फिर एक बार', 'बादल राग', 'महाराज शिव जी का पत्र', 'यमुना के प्रति', 'पंचवटी', 'आध्यात्मफल', 'धारा', 'जागरण', 'जलद के प्रति', 'भर देते हो', 'मौन', 'क्या दूँ', 'माया', 'स्मृति', 'जागृति में सुप्ति थी', 'बदला', 'तरंगों के प्रति', 'आदान–प्रदान', 'विधवा', 'दीन', 'भिक्षुक' आदि

(ख) काव्य–कृति –अनामिका–प्रथम संस्करण (1922)

(2) प्रकर्षकाल–

सन् 1924 ई0 से सन् 1932ई0 तक (08 वर्ष)

कवि तथा प्रकाशित काव्य–कृतियाँ –

(क) पं0 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'– प्रकाशित काव्य–कृतियाँ–

'परिमल' (1929)

(ख) जयशंकर प्रसाद– प्रकाशित काव्य–कृतियाँ–

(i) झरना–द्वितीय संस्करण सन्1927 ई0

(ii) आँसू–प्रथम संस्करण सन् 1925 ई0

(ग) सुमित्रानन्दन पन्त– प्रकाशित काव्य–कृतियाँ–

(i) पल्लव–सन् 1928 ई0,

(ii) गुंजन सन् 1932 ई0

(घ) महादेवी वर्मा– प्रकाशित काव्य कृतियाँ–

(i) नीहार– सन् 1930 ई0

(ii) रश्मि–सन् 1932 ई0

(3) उत्कर्षकाल–

सन् 1932 ई0 से सन् 1943 ई0 तक–कुल समय 11वर्ष।

कवि तथा प्रकाशित काव्य–कृतियाँ –

(क) पं0 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'–

(i) गीतिका–सन् 1936 ई0

(ii) अनामिका–सन् 1938 ई0

(iii) तुलसीदास–सन् 1938 ई0

(ख) जयशंकर प्रसाद–

(i) आँसू–द्वितीय संस्करण सन् 1930 ई0

(ii) लहर सन् 1933 ई0

(iii) कामायनी सन् 1935 ई0

(ग) सुमित्रानन्दन पन्त–

कोई काव्य कृति नहीं।

(घ) महादेवी वर्मा–

(i) नीरजा सन् 1935 ई0,

(ii) सांध्यगीत सन् 1936 ई0,

(iii) यामा सन् 1940 ई0

(अ) दीप शिखा सन् 1942 ई0

(ड.) आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह–

(i) मेघमाला सन् 1942 ई0

(ii) शम्पा सन् 1943 ई0

(4) उन्नयनकाल –

सन् 1943 ई0 से सन् 1997 ई0 तक–कुल समय 54 वर्ष

कवि तथा प्रकाशित काव्य–कृतियाँ –

(क) आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

काव्यकृतियाँ– (1) बा और बापू (2) प्रतिपदा (3) अपराजिता
(4) विजया (खण्डकाव्य) (5) ऋतम्भरा
(6) वृंदावन (7) शम्बूक (खण्डकाव्य)
(8) जीवन–आसपास (9) घनमाला।
महाकाव्य (1) रामदूत (2) संकटमोचन (3) ऋषभदेव।

छायावाद के विकास के उपर्युक्त चार चरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, छायावाद के उत्कर्षकाल से लेकर उसके उन्नयन काल के अन्तिम वर्ष यानी 1997 तक, निरन्तर काव्य–साहित्य– साधना में लीन रहे थे। उनकी काव्य–साहित्य–साधना की निरन्तरता से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि कुँवर साहब हिन्दी–कविता के विभिन्न आन्दोलनों के युग में भी छायावादी भाव–भूमि से एक क्षण के लिए भी विलग नहीं हुए थे। यदि हम छायावादी कविता की प्रवृत्तियों का अनुशीलन करते हैं तो उनकी कविता में छायावाद की समस्त विशेषताएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। पाठकों की जानकारी के लिए छायावादी कवियों की काव्य–प्रवृत्तियों की एक तुलनात्मक तालिका देकर कुँवर साहब की काव्य–कृतियों का संक्षिप्त विवेचन देना यहाँ अनिवार्य प्रतीत होता है। कारण यह है कि उनकी काव्य–कृतियों का संक्षिप्त विवेचन उनकी काव्य–साहित्य–साधना की निरन्तरता को प्रमाणित करने के लिए आवश्यक है।

छायावादी कविता के प्रमुख पाँचों कवियों– (1) निराला, (2) प्रसाद, (3) पन्त, (4) महादेवी वर्मा, तथा (5) आचार्य कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह, की काव्य–प्रवृत्तियों की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है–

छायावाद की प्रमुख काव्य–प्रवृत्तियाँ और छायावादी कवि

क्रम सं०	कवि / विशेषताएँ	निराला	प्रसाद	पन्त	महादेवी वर्मा	कुँवर जी
1.	आत्माभिव्यंजकता	”	”	”	”	”
2.	विशयि प्रधानता	”	”	”	”	”
3.	मूल्यकेन्द्रियता	”	”	”	”	”
4.	वैयक्तिकता	”	”	”	”	”
5.	नारी चेतना	”	”	”	”	”
6.	प्रकृति चित्रण	”	”	”	”	”
7.	प्रेमानुभूति	”	”	”	”	”
8.	सौंदर्य–बोध	”	”	”	”	”
9.	सांस्कृतिकता	”	”	X	”	”
10	राष्ट्रीयता	”	”	X	”	”
11	आध्यात्मिकता	”	”	”	”	”
12	दार्शनिकता	”	”	”	”	”
13	अलौकिकता	”	”	X	”	”
14	लोकोन्मुखता	”	x	X	x	”
15.	रहस्यवाद	”	”	”	”	x
16.	ऐतिहासिकता	”	”	X	x	”
17.	मानवतावाद	”	x	X	x	”
18	भक्तिभावना	”	x	X	x	”
19	विश्व–बोध	”	”	”	”	”
20.	राष्ट्रजागरण	”	”	X	”	”
21	कल्पना भीलता	”	”	”	”	”
22.	अप्रस्तुत विधान	”	”	”	”	”
23.	लाक्षणिकता	”	”	”	”	”
24.	उक्ति वैचित्र्य	”	”	”	”	”
25.	वेदना की विवृत्ति	”	”	X	”	”
26.	उपचार वक्रता	”	”	”	”	”
27.	खड़ी बोली का परिमार्जन	”	”	”	”	”
28.	छन्द की नूतनता	”	”	”	”	”
29.	मुक्त छन्द	”	”	X	x	”
30.	नूतन काव्य रूप	”	”	”	”	”
31.	विद्रोह की भावना	”	x	X	x	”
	कुल विशोषताएँ	31	26	20	25	30

छायावाद के विकास–क्रम के इतिहास तथा छायावाद की काव्य–प्रवृत्तियों के विस्तृत तथा वैज्ञानिक अनुशीलन के बाद हम इस निष्कर्श पर पहुँचते हैं कि यद्यपि छायावाद के पाँचों कवियों– (1) निराला, (2) प्रसाद, (3) पन्त, (4) महादेवी वर्मा तथा (5) महाकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने हिन्दी कविता को समृद्धिशाली बनाने की साधना की है, तथापि छायावाद को विश्वजयी बनाने में निराला तथा कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह का योगदान सर्वोपरि है। कारण यह है कि छायावाद की जितनी प्रवृत्तियाँ निर्धारित की गई हैं उनमें सम्पूर्ण काव्य–प्रवृत्तियाँ निराला के काव्य में प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। इसके बाद कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह का स्थान दूसरा है। परन्तु अगर दीर्घकालीन काव्य–साहित्य–साधना की कसौटी पर छायावाद के पाँचों कवियों का मूल्यांकन किया जाता है, तो आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह इन पाँचों कवियों से श्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए हम कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के काव्य–विकास के तीन चरण निर्धारित कर सकते हैं–

(1) प्रथम चरण–विद्यार्थी जीवनकाल– सन् 1930 ई0 से लेकर सन् 1943 ई0 तक। इस युग की काव्य–कृतियाँ हैं– (1) मेघमाला (1942) तथा शम्पा (1943)

(2) दूसरा चरण–सेवाकाल– सन् 1943 ई0 से लेकर सन् 1974 ई0 तक, इस युग की काव्य–कृतियाँ हैं– (1) बा और बापू (1956) (2) प्रतिपदा (1960), (3) अपराजिता् (1969), तथा (4) विजया (1969)

(3) तीसरा चरण– सेवानिवृत्तिकाल– सन् 1974 ई0 से सन् 1997 ई0 तक, इस युग की काव्य–कृतियाँ हैं– (1) ऋतम्भरा (1978), (2) जीवन आस–पास (1996), तथा (3) वृन्दावन (1996)। इसके अतिरिक्त उनके तीनों महाकाव्य – (1) रामदूत, (2) संकटमोचन तथा ऋषभदेव इसी काल में प्रकाशित हुए थे।

इन प्रकाशित काव्य–कृतियों के अतिरिक्त कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के सैकड़ों गीत तथा कविताएँ उनके जीवनकाल में अप्रकाशित रह गये थे। इन अप्रकाशित गीतों तथा कविताओं के प्रकाशन के प्रयास चल रहे हैं। जो गीत या कविताएँ अकाल कालकवलित हो चुकी हैं, उनके विषय में कुछ भी कहना व्यर्थ है, उनकी जितनी काव्य–कृतियाँ तथा महाकाव्य प्रकाशित हैं वे सभी इस बात के प्रमाण हैं कि वे छायावाद के उन्नायक कवि हैं।

आधुनिक हिन्दी–समीक्षा के सौष्ठववादी आचार्य, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कुँवर साहब की विशिष्ट कोटि की कारयित्री प्रतिभा को लक्ष्य करते हुए कहा है कि–''व्यावहारिक जीवन की व्यस्तता और बाधा उस प्रतिभा को दबा सकने में असमर्थ रही है।'' उन्होंने यह भी कहा था कि–''उनकी काव्य–वस्तु सांस्कृतिक भूमिका से ग्रहीत है। वे स्वतः भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूपों से प्रेरित और प्रभावित होते हुए भी वह पर्याप्त नवीन हैं।'' यही नहीं, उनकी कविता में भारतीय दार्शनिक भाव–धारा की एक अभिनव कल्पना है। वे कुँवर साहब की कविता की सांस्कृतिक तथा भारत की अभिनव दार्शनिक विशेषता से आगे बढ़कर उनके काव्य के सहज प्राकृतिक सौंदर्य तथा सम्पन्नता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, कि–''न केवल रम्य दृष्यों के प्रति, उसके सरल–सहज रूपों में भी कवि की वृत्ति रमी है। उनका मानना है कि वे नगरों की अपेक्षा ग्रामों की निसर्ग सुषमा से अधिक प्रभावित हैं। वाजपेयी जी हिन्दी के पहले आचार्य हैं, जिन्होंने कुँवर साहब को छायावाद के प्रमुख कवियों के समकक्ष माना है और लिखा है, कि–''इसके अतिरिक्त छायावादी कवियों की भाँति मेघ और सौदामिनी, अरुणोदय और नक्षत्र मालिका उनके सौंदर्य के अंग हैं। उनकी इन कविताओं में उनकी 'व्यक्तिगत अनुभूति भी स्थान–स्थान पर अपनी झलक दिखाती है, जिस पर वैयक्तिगत विषाद और वेदना की छाया पड़ी है।'' कवि–कर्म में यथेष्ट समय न दे पाने पर भी वे उनको हिन्दी के प्रथम कोटि के कवियों में स्थान पाने की क्षमता को स्वीकृति प्रदान करते हैं। उनकी वस्तु–गत विशेषताओं के वैशिष्ट्य को मानते हुए, उनके नूतन अलंकारों के प्रयोग तथा उनकी नूतन शैली और भाषा सामर्थ्य को स्वीकार करते हुए वे लिखते हैं –''कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी परिष्कृत और प्रांजल पदावली है, जो भाषा पर उनके अधिकार की ही नहीं उनकी गहरी पहचान की भी परिचायक है। हिन्दी काव्य में निराला की पद–रचना अपनी सामासिक शैली के लिए प्रख्यात है। थोड़े से चुने हुए शब्दों में गंभीर और प्रशस्त आशय की अभिव्यक्ति उनकी भाषा की विशेषता है, गुण है। दूसरे कवियों में भाषा–सम्बंधी दूसरे गुण पाये जाते हैं, किन्तु अर्थगाम्भीर्य भाषा का गुण निराला में अप्रतिम हैं। . . . . .कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के शब्द–प्रयोग निराला–शैली के हैं, यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं।''

''शब्दों के चयन में अर्थ प्रवणता ही एक मात्र विशिष्टता नहीं होती। उच्चारण–संगति, भाव–संगति, प्रवहमानता आदि गुण भी अपेक्षित होते हैं।''

केवल कोमल–कान्त–पदावली भाषा प्रयोग की एकमात्र साधना नहीं है। ऋजु कुटिल नाना पदों से चलकर काव्य की पदावली अपनी भास्वरता प्राप्त करती हैं।''

कुँवर साहब की काव्यभाषा में भारतीय काव्य के श्रेष्ठ कवियों की काव्य–भाषा के गुण पाये जाते हैं। भाषा–प्रयोग में निराला को छोड़ कर कोई दूसरा कवि कुँवर साहब की काव्यभाषा की समता नहीं कर सकता है। कहीं–कहीं कुँवर साहब निराला की काव्यभाषा से चार कदम आगे बढ़ जाते हैं। भावानुरूपिणी काव्यभाषा के प्रयोग में वे निराला के समकक्ष ही ठहरते हैं। इन दोनों कवियों ने काव्यभाषा की सारी संभावनाओं को अपनी काव्यभाषा में साकार किया है।

कुँवर साहब काव्य–भाषा के प्रयोग में ही नहीं, छंद–प्रयोग में भी पर्याप्त प्रगल्भ हैं। वे एक अच्छे गायक तथा संगीत प्रिय कवि है। इसलिए उनके छंद प्रयोग में भी एक वैविध्य पाया जाता है। उन्होंने अपनी भाषा एवं छंदों के कारण आधुनिक कवियों में अपनी श्रेष्ठता स्थापित की हैं। उनकी इसी छंद प्रयोग की कला के कारण उनके भावों की पुनरावृत्ति नहीं पायी जाती है। इसलिए उनकी कविता में एक विशेष आकर्षण पाया जाता है।

कुँवर साहब में छायावाद के अन्य कवियों की अपेक्षा 'सनेही स्कूल' के कवियों का एक छंदकार भी वास करता है, जिसका चरम विकास 'वृन्दावन' काव्य में देखने को मिलता है। इस संग्रह की दो कविताओं–'महाशक्ति' तथा 'महान प्रतिशोध' में उनका छंदकार रूप सामने आया है–

संगठित देव–शक्तियों का ज्योति चक्र वह,
काल–सा अराल रोदसी में घूमने लगा।
दग्ध होके सकल दिशाएँ अति स्तब्ध हुईं,
क्षुब्ध नभ ज्वालामुखियाँ उगलने लगा।
फाड़ कर तम का विराट् शून्य ओक वह,
धूमकेतुओं का महालोक पलने लगा।
अंबर–अवनि के अनंत अवकास बीच,
मंदर–सा वह तेजकूट चलने लगा।।

कुँवर साहब ग्रामवासी हैं। बचपन में उन्होंने गाँवों के दीन–हीन तथा साधन–विहीन लोगों को खुली आँख से देखा है। बचपन में देखा गया यह गाँव संस्कार रूप में उनके मन–मस्तिष्क में बसा है। कवि यह स्वीकार करता है कि– ''किन्तु ग्रामवासी होने के नाते मैंने अपने जीवन के प्रथम चरण से ही प्रकृति के कोमल–क्रूर अनेक प्रकार के रूपों की पृष्ठिभूमि में ग्राम्य–जीवन के दैन्य और विवशता की हृदय विदारक अनुभूति का विश–दंश निरन्तर सहा है। बचपन में मैंने अनेक बार ऐसे दृश्य देखे हैं, जब फागुन लगने पर दीन–हीन–पराधीन, ग्राम–जीवन ने भी प्रकृति के साथ मुसकुराने और हँसने–गाने का प्रयत्न किया है। पर दूसरे ही दिन ओलों की वर्षा हो जाने से खेत श्मशान और ग्राम–जीवन वीरान बन गया है। 'बुझी चिताओं', से प्रतीत होने वाले उन खेतों का संस्कार मेरे मन में आज तक अमिट है और उस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति भी मेरी रचनाओं में नैसर्गिक रूप में हुई, प्रगति या प्रयोग की गढ़ी हुई परिभाषाओं को लक्ष्य कर नहीं।

कुँवर साहब की कविता निजी अनुभूति का प्रतिफल है। इसमें प्रगति–प्रयोग वादी चेतना का कोई प्रभाव नहीं है। वे भारतीय धर्म और संस्कृति के आस्थावान कवि हैं। इसीलिए उनकी कविता में निजी प्रेम और सौंदर्य से लेकर देश–प्रेम तथा मानव प्रेम की भावना विद्यमान है। वे अपनी काव्य–साधना के प्रारंभिक काल से लेकर अन्तिम समय तक छायावादी कवि रहे हैं। यह बात किसी को बताने की जरूरत नहीं है कि कुँवर साहब के छायावादी व्यक्तित्व के निर्माण में निराला के व्यक्तित्त्व तथा उनके काव्य की अमिट छाप है। उन्होंने निराला की काव्य–चेतना को ही शताब्दी व्यापी बनाने की साधना की है।

इस कविता–संग्रह की चार कविताएँ– (1) त्रिपथगा, (2) सागर, (3) हिमालय तथा (4) महाशक्ति भारत की सांस्कृतिक गरिमा तथा राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण हैं। 'महान प्रतिशोध' में पांचाली की प्रतिज्ञा के माध्यम से नारी की शक्ति और नारी के प्रति सम्मान का भाव जाग्रत किया गया है। इस कविता संग्रह की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कविताएँ वे हैं, जहाँ हिन्दू महीनों के माध्यम से प्रकृति की सुषमा तथा उनके विकृत रूप का वर्णन किया गया है। ये कविताएँ प्रकृति के वे चित्र हैं, जो विश्व–साहित्य में दुर्लभ हैं। इसके बाद शेष कविताएँ कवि की व्यक्तिगत अनुभूति से सम्बंधित हैं। यह सारी कविताएँ छायावाद के कवियों के समान प्रेम और सौंदर्य का गान करती हैं। इसमें दो गीत विशेष दृष्टव्य हैं 'विजय के गीत गाता चल' तथा प्रभात आ रहा प्रयाण गीत'।

कुँवर साहब की काव्य–साधना की ग्रंथावली के द्वितीय खण्ड में जो काव्य–कृतियाँ संकलित की गयी हैं, उनका संक्षिप्त परिचय पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

'मेघमाला' आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की काव्य–साधना का पहला गीत–संग्रह है। इसमें कुल 108 गीत हैं, जो छायावाद के उत्कर्षकाल में रचे गये थे। इस गीत–संग्रह का महत्व इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि इसके सभी गीत 'गीतिका' के गीतों के साथ–साथ 'माधुरी' तथा 'सुधा' नामक पत्रिकाओं में छप चुके थे। इस गीत–संग्रह का प्रकाशन 'गीतिका' के प्रकाशन के छः वर्ष बाद सन् 1942 ई0 में हुआ था। जिस समय देश 'द्वितीय विश्व–युद्ध' के प्रभाव–दंश को झेल रहा था। ऐसे समय में 'मेघमाला' का प्रकाशन हिन्दी–जगत को चकित कर रहा था। इस कृति के प्रकाशन में कवि की निष्ठा तथा आत्मविश्वास का परिचय मिलता है। कवि एक आस्थावान राष्ट्रभक्त कवि है। इसलिए उसका विश्वास था कि 'मेघमाला' के गीतों की पीयूष वर्षी भाव–धारा हताश, निराश तथा उदास मानवता को त्राण दे सकेगी। इसकी प्रेम और सौंदर्य परक रचनाओं में मानव–मन के लिए अनुलेप के समान शीतलता है, तो इसके गीतों की राष्ट्रीय–भावना देश पर मर–मिटने की प्रेरणा प्रदान करने वाली है। यही नहीं इस संग्रह में छायावाद की वे समस्त विशेषताएँ एक स्थान पर मिल जाती हैं, जो छायावादी कविता को एक स्वतंत्र पहचान दिलाती हैं।

'मेघमाला' कवि की काव्य–साधना का प्रस्थान–विन्दु है। यह निराला का ही प्रभाव है कि राष्ट्रीय, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्व की कविताएँ लिखने वाला कवि गीत रचना की ओर मुड़ गया और हिन्दी के सहृदय पाठकों की काव्य–तृषा को बुझाने लग गया । 'मेघमाला' छायावादी भाव–वैविध्य की अन्यतम कृति है। यह सभी स्वीकारते हैं कि कविता मानवीय चेतना की तृषा की तृप्ति का साधन है, परन्तु आज कविता से विमुख समाज विशेष रूप से साहित्य–समाज चिन्ता का विषय बन चुका है। कविता से विमुख समाज में क्रूरता का विकास हो रहा है। मानव की तृषा की तृप्ति के राशि–राशि चित्र 'मेघमाला' में मिल जाते हैं। इस संग्रह के भाव ही नहीं, कवि की काव्यभाषा भी हमारा मन मोह लेती है। छायावादी कविता प्रेम और सौंदर्य के प्रति समर्पित कविता है। आचार्य शुक्ल जैसे महान समीक्षक भी छायावाद की इस विशेषता को आत्मसात नहीं कर सके। परिणाम स्वरूप यह कविता आचार्यों की उपेक्षा का शिकार बनकर रह गयी। आचार्य शुक्ल के प्रभाव में

आने वाला प्रत्येक समीक्षक तथा आचार्य छायावाद के प्रति न्याय नहीं कर सके। प्रसाद तो प्रेम और सौंदर्य के प्रख्यात कवि हैं। उन्होंने सबसे पहले 'प्रेम–पथिक' की रचना की और उसके बाद उनका प्रेम–गीत 'आँसू' सामने आया। इसके बाद 'कामायनी' महाकाव्य में 'श्रद्धा' और मनु का प्रेम और सौंदर्य अपने चरम पर पहुँचा। इन कवियों में निराला का प्रेमादर्श 'वासना की मुक्ति' प्रदान करने वाला है। यहाँ परिणीता का गृहस्थ प्रेम है। कुँवर साहब के प्रेम और सौंदर्य में भारत के पवित्र प्रेम की उपासना का भाव निहित है। उन्होंने लिखा है–

वसना के विश्व की धृति,

पुण्यमय लावण्य की कृति,

प्राण प्रिय के प्रणय की सृति,

सरित वह वामा।

'मेघमाला' अपने युग का सर्वश्रेष्ठ गीत–संग्रह है। कारण यह है कि इसमें अपने युग–बोध से उपजी समस्त काव्य–प्रवृत्तियाँ प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। इसमें वैयक्तिक अनुभूति पर आधारित प्रणय–भावना से लेकर राष्ट्रीय– भावना के देश–प्रेम के गीत संकलित हैं। यदि हम 'मेघमाला' में पायी जाने वाली प्रवृत्तियों को एक स्थान पर संकलित कर कहना चाहें तो कह सकते हैं कि इसमें–(1) आत्माभिव्यंजकता, (2) विशयिप्रधानता, (3) मूल्यकेन्द्रिकता, (4) वैयक्तिकता, (5) नारी–भावना,(6) प्रकृति–चित्रण,(7) प्रेमानुभूति, (8) सौंदर्यबोध, (9) सांस्कृतिकता, (10) आध्यात्मिकता, (11) दार्शनिकता, (12) अलौकिकता, (13) लोकोन्मुखता, (14) रहस्यात्मकता, (15) ऐतिहासिकता, (16) मानवतावाद, (17) भक्ति–भावना, (18) राष्ट्रीयता, (19) विश्व–बोध आदि प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। इन सभी प्रवृत्तियों की विस्तृत व्याख्या तथा विश्लेषण यहाँ संभव नहीं है। इसलिए यहाँ संक्षेप में इनकी संकेतात्मक व्याख्या की जायेगी।

प्रणय एक सार्वजनीन भाव है जो जन–जन की आत्मा का गुण है। मानव जब सुन्दर नारी या पुरुष को देखता है तब उसकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता है। यह परमपिता परमात्मा का विधान है। 'आकर्षण मय विश्व तुम्हारा' कहकर कवि इसी तथ्य का उद्घाटन करता है। अपने आलम्बन (प्रिय) की ओर आकर्षित होने पर प्रेमी जिस भाव की अनुभूति करता है, वह व्याकुल करने वाली होती है। प्रेमी की यह व्याकुलता अपने प्रिय को

बाहों में बाँध लेना चाहती है – ''तुम्हें बाँध बाहों में।'' यदि वह उसे प्राप्त नहीं कर पाता (बाहों में बाँध नहीं पाता) तो वियोग का भाव जागता है। यह वियोग का भाव वेदना (करुणा) दायी होता है। छायावाद में यही भाव वेदनावाद के नाम से जाना गया है। वेदना की विवृत्ति कम–अधिक मात्रा में प्रायः सभी छायावादी कवियों में पायी जाती है। कवि इससे मुक्त नहीं है, वह कहता है–

करुण कितना प्रणय!
सफल सुख–श्रृंगार का
कुछ आँसुओं में लय।

कुँवर साहब की गीत–गंगा में स्नान करने के लिए पाठक को मेघमाला का पहला गीत, जो सरस्वती वंदना का गीत है, तथा अन्तिम गीत 'बरसो ज्योतिर्जलकण' अवश्य पढ़ने चाहिए। इन दोनों गीतों में उस निर्जर प्रकाश' के वर्षण की याचना माँ शारदा से तथा अविनश्वर मेघों से की गयी है। कवि इस समग्र सृष्टि को हर्षोल्लास से भरकर सरस और सुखी बनाना चाहता है। यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है कि आधुनिक कविता में निराला और कुँवर साहब मूलतः 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के कवि हैं। इन दोनों कवियों की आलोक–चेतना हिन्दी के लिए महान देन हैं। कवि को अपना प्रिय ज्योति की प्रतिमा प्रतुन तरुणी सहज श्यामा प्रतीत होती है–

बनी अभिरामा!
ज्योति की प्रतिमा प्रतनु,
तरुणी सहज श्यामा।
सांध्य अंचल में अचंचल,
नयन–युग तारक रहे जल,
सघन घन–केशा सजल,
छवि की क्षमा क्षामा।
वासना के विश्व की धृति,
पुण्यमय लावण्य की कृति,
प्राणप्रिय के प्रणय की,
सृति–सरित वह वामा।

कुँवर साहब के पहले महाकवि निराला ने अपने प्रेमादर्श को अपने गीत प्रिय यामिनी जागी द्वारा यह लिखकर व्यक्त किया था कि– 'वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में ताकी'। रीतिकाल ने जिस पवित्र प्रेम को वासनामय बना दिया था, उसी प्रेम को छायावादी कविता में 'वासना की मुक्ति' प्रदान करने वाला माना गया। निराला के प्रेम में एक औदात्य है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'गीतिका' के गीतों में राधा की अवतारणा देखी है। निराला के प्रेम की पवित्रता और औदात्य को स्वीकारते भी यह कहना पड़ता है कि निराला तथा किसी कवि द्वारा कुँवर साहब के समान प्रेम के आलम्बन का ऐसा उदात्त और भव्य रूप आज तक नहीं आँका जा सका है। प्रेम पवित्र पदार्थ है। प्रेम की इसी पवित्रता को कुँवर साहब ने निम्नांकित पंक्तियों द्वारा वाणी दी है–

वासना के विश्व की धृति,
पुण्यमय लावण्य की कृति,
प्राणप्रिय के प्रणय की,
सृति–सरित वह वामा।

आलम्बन के प्रति इस उदात्त कल्पना के कारण कुँवर साहब की प्रणय निवेदन की कविताएँ अद्वितीय हैं। प्रिय के सौंदर्य का एक दूसरा गीत भी पठनीय है–

मधुर शोभा – भार री!
दृगों के तम – द्वार की
तुम ज्योति, बंदनवार री!
ज्ञान तुम निःशेष, सब भ्रम,
प्रभा–तल्प सुवेश, जग तम,
सकल मम श्रम –साधना–
आराधना की पार री!
कुसुम– मुख मकरंद नव–नव,
रूप रूपसि, निरूपमित तव,
पान कर कवि – मन–मधुप
लवलीन सुख–श्रृंगार री!

लख खिला कल–कल्प–सुर–तरु,
सिंचा सौरभ – जल द्रवित मरु,
जग बजे उर के सजे अनुराग–
सुर के तार री!

ऐसे अलौकिक व्यक्तित्व के आलम्बन के सान्निध्य की अभिलाषा की पूर्ति न होने पर वेदना की अनुभूति स्वाभाविक है–

करुण कितना प्रणय!
सकल सुख – श्रृंगार का
कुछ आँसुओं में लय!
कामनाओं की चिता बन,
जली मैं, अनुदिन निपीड़न,
किन कठिन हाथों हुआ सखि,
हृदय का यह क्रय!
सतत छलनामयि शुभाषा,
वेदना ही शेष भाषा,
दग्ध – अंतस् रह गया,
कुछ सुकृति–स्मृति–संचय!
ताप से सब कुछ गया गल,
शून्य ही अवशेष केवल,
रोकता रे, क्यों खड़ा पथ,
निठुर नील निलय!

'मेघमाला' अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की भंगिमा का एक ऐसा कविता– संग्रह है, जिसमें व्यक्तिनिष्ठ प्रणय,–भावना से लेकर देश–प्रेम के गीत संकलित हैं। यह सभी जानते हैं कि यदि द्विवेदी युग की कविता विषयनिष्ठ कविता है तो छायावादी युग की कविता व्यक्तिनिष्ठ। इसी व्यक्तिनिष्ठता के कारण छायावादी कवियों के प्रणय–भावना के गीत

युवा–पीढ़ी के आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। 'मेघमाला' में प्रणय के अनेक गीत हैं। कवि का प्रिय अनुपम है। वह रूपवान है। इसीलिए उसे यह सारा विश्व आकर्षक लगता है। उसकी चाहत इस सीमा तक बढ़ती है कि वह उसे अपनी बाँहों में बाँध लेना चाहता है। प्रणय ऐसा भाव है, जब वह हृदय में जगता है तो प्रेमी को बेचैन करता है। यह ऐसी वेदना है, जिसे किसी के सामने प्रकट करना सहज संभव नहीं है। कवि कहता है–

बैठा हूँ वेदना छिपाए!

उर में अनल, दृगों में जल है,

आषा की छलना अविरल है,

जीवन प्रतिपल विषम गरल है,

पीकर जिसे गरल जल जाए।

मेरे तम–जग के ध्रुव–तारा,

सुनो, कह रहा क्या पथ–हारा,

मुझको मुक्ति–युक्ति ही कारा,

हेरो, हार विजय बन जाए।

यदि प्रेमी अपने प्रिय को एक बार 'हेर' लेता है तो उसके जीवन की 'हार' विजय बन जाती है। इस गीत में प्रेमी की पूरी मनोदषा का चित्रण, कौशल देखने योग्य है। प्रेमी अपने प्रिय को निमेष विहीन नेत्रों से निहारता रहता है, परन्तु प्रिय के घूँघट को देखकर बेचैन हो उठता है। प्रिय का सौंदर्य ऐसा है जो घूँघट में छिप नहीं सकता है। यह गीत नारी के सौन्दर्य–संभार को तथा उसके प्रभाव को उद्घाटित करता है। कवि लिखता है–

करो मत छवि का यों उपहास!

x x x x x

फूट पड़ा है अंग–अंग में यौवन का मधुमास,

व्यर्थ छिपाओगी वसनों में यह अनंग का लास,

मनोरम तनु–तन ज्योत्स्ना–वास।

x x x x x

करो कुछ तो अनुराग प्रकाश।

दुसह प्रेयसि, छवि का उपहास।

प्रेम और सौन्दर्य के अंकन की कला कुँवर साहब को अपने गुरु निराला से विरासत में मिली थी। इन गीतों में कहीं वासना का लेषमात्र उल्लेख नहीं है। इनके गीतों में प्रेम वासना से मुक्ति प्रदान करने वाला है। कुँवर साहब कविता में स्वकीया प्रेम की व्यंजना है। प्रिय प्रेमी के लिए– ''बनी अभिरामा।/ज्योति की प्रतिमा प्रतनु,/ तरणी सहज श्यामा है परन्तु वह वासना के विश्व की धृति/पुण्यमय लावण्य की कृति/प्राणप्रिय के प्रणय की,/ सृति–सरित वह वामा है। वासना से मुक्ति प्रदान करने वाले अनेक 'आलोकमय' गीत 'मेघमाला' में संकलित हैं।

वैयक्तिक प्रणयानुभूति के प्रांजल गीतों के अतिरिक्त विभिन्न ऋतुओं– 'बसंत', 'फागुन', 'चैत्र', 'आषाढ़', 'सावन', भादों, 'शरद', आदि के अनेक गीत मेघमाला में संकलित हैं। इनमें कुँवर साहब का प्रकृति प्रेम उद्घाटित हुआ है। इन प्रकृति गीतों में मानव–प्रेम की भावों के व्यंजना–संकेत प्रगल्भ हैं। 'बसंत' के आगम की सूचना हमें 'कोयल' के बोलने तथा 'बसंत' बयार' से चलती है। प्रकृति चित्रण का यह रूप अपने आप में नया है–

(1) आज स्वर भर सिहर पिक ने कुंज–वन में गान गाया।

सजनि यह मधुमास आया।

(2) बही नई बयार!

कह रही आया,

बसन्त फिर इस बार।

पावस ऋतु भारत जैसे कृषि प्रधान देश की सर्वाधिक महत्वपूर्ण ऋतु है। यह ऋतु धरती की प्यास ही नहीं बुझाती वरन् यह प्रिया–स्पर्श का सुख भी देती है। यह जीवन के मधुर मिलन को तथा धरती के कण–कण को रसाबोर करती है। एक छोटा सा गीत पढ़ा जाना चाहिए –

बरसो, बरसो पावस!

घिरे तिमिर, घिरे, घिरे बादल,

मुझे सुखद चपला का कौशल,

मीता कुछ रहे कंठ–लगन,

प्रिया स्पर्श विवस।

सींच विरह और जलाया तन,

गत वह, अब मिलन–मधुर जीवन,

करो अधिक मधुर हँसो–

कण–कण में रस–रस।

'बसन्त' ऋतुराज है। हिन्दी में बसन्त पर असंख्य गीत तथा कविताएँ हर युग में रचीं गयीं हैं। यह ऋतु अपनी मादकता के कारण विश्व–विख्यात है। कृष्ण–काव्य की रास लीलाओं के लिए यह ऋतु आदर्श मानी जाती रही है। बसन्त में कोकिल का गान सर्वख्यात है। कोकिल पूरे वर्ष शान्त रहती है परन्तु जब वह गाती है तब बसन्त ऋतु आता है और जन–जन तथा कण–कण में मादकता भर जाती है। बसन्त के आगमन की अनुभूति हमें हमारी श्रवण शक्ति कराती है।

आज स्वर भर सिहर पिक ने कुंज – वन में गान गाया।

सजनि यह मधुमास आया।

हँस रही कलिका विकल अलि का हुआ उर–देश कंपित,

बह रहा परिमल – प्रपूरित पवन मंथर कामनाश्रित,

कुसुम किसलय, द्रुम, लता, वन में नवीन विकास आया।

प्रणय का मधुमास आया।

देख, सरसीरुह – सरों में नील तारक – गगन बिम्बित,

उतर आयी कौमुदी लघु लहरियों पर चपल – चुंबित,

झर रहे केसर अरुण, हँस–हँस तरुण ऋतुराज आया।

सजनि यह मधुमास आया।

मधुमास (बसन्त) आते ही सब कुछ बदल जाता है। जड़–चेतन में एक नया उन्माद भर जाता है। यही कारण है, इसे 'प्रणय का मधुमास' कहा गया है। इस गीत संग्रह में मधुमास पर कई गीत लिखे गये हैं। होली का त्योहार भी बसन्त ऋतु का एक बड़ा त्योहार माना जाता है। निराला ने होली

पर जो गीत रचा है वह अपना महत्व रखता है। कुँवर साहब के होली गीत पर निराला के गीत– 'नयनों के डोरे लाल गुलाब भरे होली' का प्रभाव देखा जा सकता है।

इसी तरह शरद की शुभ्र रात का एक गीत यहाँ दिया जा रहा है–

आई यह शरद शुभ्र रात!

बिधु–मुख–सुख–हास–प्रकाश–पूर्ण–
तारा–हारावलि–रम्य गात!

नीले नव नभ के मुक्त–केश,
अपलक ज्योतिर्दृग भाव–शेष,
विकसित वन–यौवन, गंध–वेश,
प्रवाहित श्वासों में मलय –वात!

उर–उर की जड़–चेतना छीन,
किरणांशुक में वह खड़ी लीन,
चिर सुंदर रे, वह चिर नवीन,
लाएगी जागृति, स्वर्ण–प्रात!

कवि का ऋतु वर्णन मानव जीवन की प्रेमानुभूतियों के साथ जुड़ा हुआ है। कवि को पावस ऋतु अधिक प्यारी है। इस ऋतु में चलने वाली 'पुरवाई' में एक विशेष प्रकार की मादकता है–

(1) कहो किस देश से आई,
चपल यह आज पुरवाई।

(2) पावस समीर बहती हर–हर!
डोले तर डोली लता लोल–
उसके सब मधुर रहस्य खोल,
काँपती निभृत निज शयनों पर,
कामिनियाँ कृश–तन थर–थर–थर।

प्रणय गीतों के साथ–साथ प्रकृति–चित्रण के गीतों का सौन्दर्य जहाँ 'मेघमाला' को छायावाद का सर्वश्रेष्ठ कविता–संग्रह प्रमाणित करता है, वहीं इन गीतों में नारी के मनोहारी बिम्ब कवि की कवि–प्रतिभा को उद्घाटित करते हैं। साथ ही इन गीतों की रहस्य–भावना, अलौकिकता तथा आध्यात्मिकता गीतों का महत्व कई गुना बढ़ा देती हैं। प्रकृति मानव–जीवन की चिर सहचरी है इसलिए वह अपनी रमणीयता से मानव का समस्त विशाद हर लेती है। परन्तु प्रकृति के इस लौकिक रूप में परमात्म–तत्व का आभास उसे चकित करता रहता है। प्रकृति–वर्णन की यह अलौकिकता और आध्यात्मिकता छायावाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। पन्त की कविता का सम्पूर्ण रहस्यवाद प्रकृति के इसी अलौकिक रूप के प्रति व्यक्त की गयी जिज्ञासाओं का परिणाम है। आचार्य शुक्ल ने इसे स्वाभाविक रहस्यवाद माना है।

प्रकृति के इस अलौकिक रूप के साथ–साथ कुँवर साहब के प्राकृतिक चित्र अधिक स्वाभाविक हैं। उनमें लोक–जीवन अपनी सम्पूर्णता में साकार हुआ है। प्रकृति चित्रण का एक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत हैं, जिसमें ग्राम–जीवन की वास्तविकता साकार हो सकी है। इस गीत का महत्व इस बात में और बढ़ जाता है कि कवि ने ऋतु विशेष का स्पष्ट उल्लेख किये बिना ही चैत मास की गतिविधियों को साकार कर दिया है। यह गीत अपने आप में एक ऐसा इतिहास समेटे है, जो सन् 1935–36 ई0 के आस–पास के गाँवों का इतिहास शताब्दियों तक अक्षुण्ण रख सकेगा। गीत संश्लिष्ट गत्वर बिम्बों का सर्वोत्तम उदाहरण है–

लुट रहा हास,
रे पके सुनहले खेतों में,
लुट रहा हास!
नीली ओढ़नी सम्हाल, सुघर,
गाँव की वधू कुछ हलके कर,
काटती खेत, हँसिया सर–सर,
चुरियाँ रन–रन, तिरती मिठास!
खलिहान बसे, गार पर गार,

गेरे, घेरे सब बाग – हार,

भुरहरी रात, पछुवा बयार,

बहती महुए की लिये बास!

यह लोकोन्मुखी ग्राम–जीवन का ऐसा गीत है, जिसकी रचना आज संभव नहीं है। कारण यह है, आज 'खलिहान' नहीं लगाये जाते। खेतों की कटाई मशीनों से होती है। 'भुरहरी रात' पछुवा बयार' बहती महुए की लिये बास' गीतों में कुँवर साहब ने लोक–जीवन का जो इतिहास रचा है, वह ''चढ़ती दुपहर / बह जाता कभी पवन हर–हर'' में भी देखा जा सकता है। कार्तिक पूर्णिमा का महत्व भारतीय समाज में आदि काल से मान्यता प्राप्त करता आ रहा है। कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर गाँव का भोला–भाला किसान देश की पवित्र नदियों– गोमती, गंगा, यमुना, घाघरा आदि में पैसा–धेला विसर्जित कर अपने पाप धोकर निश्चिन्त जीवन–यापन करने के लिए आश्वस्त हो जाता है। इस गीत में भी प्रकृति का बड़ा ही जीवन्त बिम्ब आँका गया है।

कवि प्रकृति के यथार्थवादी चित्रण के माध्यम से धीरे, धीरे उसकी अलौकिकता, आध्यात्मिकता तथा दर्शन के चित्र भी उकेरता है। प्रकृति के चित्रों की अलौकिकता छायावादी कविता की आध्यात्मिकता की परिचायक है। छायावाद में अलौकिकता तथा आध्यात्मिकता इस युग की पहचान है। यह आध्यात्मिक अलौकिकता सर्वप्रथम निराला की कविताओं के माध्यम से प्रकाश में आयी थी।

कुँवर साहब उच्चकोटि के संवेदनशील वैष्णव भक्त हैं। वे अपनी खुली आँखों से समाज को देखते हैं और अनुभव करते हैं कि मनुष्य ने इस जग को नरक बना रखा है। वह ''मानव–दंशित मानव / रे जग–जीवन रौरव।'' कहकर अपने चारों ओर फैले दुष्कर आर्त–स्वर का विस्तार देखते हैं–

अपनों के आर्त स्वर,

बेध ये गये नभ–उर,

रहते दु:सह दुष्कर,

फिर भी तुम चिर नीरव।

परमपिता परमात्मा को चिर मौन देखकर कवि परमात्मा से निवेदन करता है–

असफल सफल करो,
हरो श्रम ताप हरो।

कवि अनुभव करता है कि इस दुःसह–दुस्तर संसार से मुक्ति पाना कठिन है। इसलिए वह सूरदास तथा तुलसीदास के समान परमपिता परमात्मा को पुकारता है–

अब तो करो पार!
फिर–फिर विकल क्लांत तुमको पुकारा,
विश्वास था देव, दोगे, सहारा,
बहता थका, दूर अब भी किनारा,
संबल विगत और दुस्तर तिमिर–धार।
वे पांथ, जो साथ में थे हमारे,
संघात के वात में भ्रांत हारे,
खोते गये शून्य में, बंद तारे,
मैं ही रहा आज दुर्वह व्यथा–भार!

'मेघमाला' अपने युग–बोध से उपजी काव्य–चेतना के गीतों की काव्य–कृति है। पराधीन भारत का जो युवा कवि, छायावादी भाव–भूमि से जुड़कर तथा प्रेम के वशीभूत होकर गाता है कि–

तुम्हें बाँध बाहों में।
डुबा दिया मैंने बरसों की,
विरह–बढ़ी आहों में।
शत–शत अश्रु–तरल भर चुंबन,
दे अपना चिर–प्रणय–विकल मन,
सुमन, तुम्हें पाया जीवन की,
कंटक मय राहों में।

वही कवि, देश–प्रेम के वशीभूत होकर अपनी प्रियतमा से कहता है–

छेड़ो न यह राग।
देखो चतुर्दिक
प्रलय की जागी आग।
प्रिय कण्ठ की माधुरी यों न ढालो
मुख की मुख भंगिमा तो सँभालो,
मृदु हास की चाँदनी अब छिपा लो,
मुझसे मिलेगा तुम्हारा अनुराग।

यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है कि सन् 1938– 39 ई0 भारत के स्वतंत्रता–संग्राम का अनोखा वर्ष था। द्वितीय विश्व–युद्ध के प्रारम्भ होने पर बाबू सुभाष चन्द्र बोस का मानना था कि यह एक ऐसा सुअवसर है, जो भारत को अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करने की प्रेरणा देता है, परन्तु महात्मा गाँधी इससे सहमत नहीं थे। वे इस युद्ध में अंग्रेजी सेना में युवकों की भरती का अभियान चला रहे थे और चाहते थे कि भारत को इस विश्वयुद्ध में अंग्रेजों का साथ देना चाहिए। गाँधी जी के तमाम प्रभावों के बाद भी सारा देश सुभाष के साथ खड़ा था। युवाकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह भी यह अनुभव करते थे कि यदि इस समय अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाये, तो विजय निश्चित है। इसी भाव की व्यंजना उनके इस गीत में मुखरित है–

निश्चय जय है तेरी।
उल्काओं के संघर्षण में,
धूमकेतुओं के नर्तन में,
प्रलय–पयोनिधि के प्लावन में,
बढ़–अबाध गति तेरी।
सजा – मेघ का मुकुट शीश पर,
भुजदंडों में मरुत, वज्र – कर,
हिमगिरि–वक्ष, दीप्ति दृग–दिनकर,
बजा, बजा रण – भेरी।

कवि देश–प्रेम के भाव से परिपूर्ण है। 'मेघमाला' में संकलित इस भावभूमि का एक और गीत देखा जा सकता है –

भारत भूति–अशेष।
मातृभूमि अमला,
पितृभूमि विमला,
पुण्य भूमि कमला,
वेद – वेद्य हे देश।
सुर–मुनि–सेवित सद्म,
निखिल–वंद्य– पद–पद्म,
अनय–अनृत–छल–छद्म–
पातक–तिमिर–दिनेश।
हिम–गिरि – मंडित गंड,
प्रलय–पयोनिधि – चंड,
चिर–अविभाज्य, अखंड,
जय–जय–जय सर्वेश।
भारत भूति – अशेष।

अन्त में महाकवि निराला की ही भाँति इस देश को परम पिता से देश को ज्योतिर्जलकण से शिक्त करने की अभिलाषा व्यक्त करता है–

बरसो ज्योतिर्जलकण।
घिर – घिर तिर तिमिरांबर,
छाओ जड़–जग स्तर–स्तर,
गरजो द्रुत अविनश्वर,
उमड़ो चिति के प्लावन।
जीवन के ताप – त्रास,
हर लो, वैशम्य – भास,

फैले निर्जर प्रकाश,

स्रसो, सुख के सावन।

'मेघमाला' के गीतों ने अपने युग के श्रेष्ठ कवियों तथा साहित्यकारों का ध्यान अपनी ओर खींचा था। प्रसाद जी ने 'मेघमाला' के प्रकाशन पूर्व सन् 1936 ई0 में कहा था, ''तुम बहुत श्रेष्ठ गीत रचते हो। तुम्हारी काव्यभाषा बड़ी प्रांजल तथा भाव–व्यंजक है। निराला ने 'मेघमाला' के गीतों को 'अनुपम' कहा था। अज्ञेय ने अपनी 'प्रतीक' नामक पत्रिका में 'मेघमाला' के प्रकाशन को 'एक क्रान्तिकारी घटना' कहा था। नवगीत के उन्नायक कवि डॉ0 शम्भूनाथ सिंह ने 'मेघमाला' को 'नवगीत' के विकास का प्रथम चरण माना था। कारण यह है कि 'मेघमाला' के गीतों ने हिन्दी के परम्परागत गीतों को नई दिशा प्रदान की थी। 'मेघमाला' के गीत उस युग की प्रमुख पत्रिकाओं– (1) माधुरी, (2) सुधा, (3) वीणा, (4) सरस्वती, तथा विशाल भारत में छपते रहे थे। इन पत्रिकाओं में कुँवर साहब के गीतों पर लिखी गयी टिप्पणियाँ हमारे पास नहीं हैं, फिर भी इन गीतों की महत्ता अपने युग के गीतकारों के समकक्ष उन्हें ऊँचा स्थान प्रदान करती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'मेघमाला' भाव, भाषा, शैली, छंद, अलंकार तथा काव्य रूप की कसौटी पर छायावाद का सर्वश्रेष्ठ गीत–संग्रह है।

'शम्पा' छायावाद युग में रचे गये गीतों तथा कविताओं का दूसरा कविता संग्रह है, जिसका प्रकाशन 'मेघमाला' के एक वर्ष बाद सन् 1943 ई0 में हुआ था। इस कृति में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक रचनाएँ हैं, अतीत के गौरव का गान है और अपनी मातृभूमि के प्रति अनन्य श्रद्धा–भाव 'जय हिन्दी' गीत भी इसी में हैं। कुँवर जी राष्ट्रवादी विचार–धारा के कवि हैं। उन्होंने इस बात की घोषणा अपनी 'शम्पा' के 'निवेदन' में की है। उन्होंने लिखा है कि– ''शम्पा के विषय में मुझे अधिक नहीं कहना, आवश्यक भी नहीं। अवश्य इन रचनाओं में मेरी राजनैतिक विचार– धारा का विकास–क्रम सहज संलक्ष्य है। 'शम्पा' की सफलता तथा मेरे कवि जीवन की सिद्धि इसी में है कि राष्ट्र के प्राणों के स्तर–स्तर में ये स्वर प्रवेश कर जाएँ –

अविभाज्य अखण्ड अनादि देश।

और

भारत हिन्दुओं का देश।

भारत की स्वाधीनता के अमृत महोत्सव वर्ष में 'शम्पा' की कविताओं का महत्त्व सहसा द्विगुणित हो जाता है। कारण यह है कि भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के असफल हो जाने के बाद भारत देश में जिस सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय भावना का पुनर्जागरण भारतेन्दु युग में हुआ था, उसका जीता–जागता प्रमाण हमें 'शम्पा' में संकलित कविताओं में मिलता है। आधुनिक कविता में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की भावना को व्यंजित करने वाली दूसरी कोई काव्य–कृति हमें प्राप्त नहीं है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने जिस सांस्कृतिक–राष्ट्रीय काव्य–धारा को प्रवाहित कर देश के जन– मानस में जातीय चेतना का भाव जगाया, छायावाद में वही सूक्ष्म रूप धारण कर जन–जन के अन्तर्मन को स्पन्दित करने लगी। निराला ने अपनी कविता द्वारा भारतीय जन–मानस में अलौकिक आत्म–शक्ति भर कर कहा– ''पद–रज भर भी नहीं है, यह सारा विश्व भार, जागो फिर एक बार।'' हिन्दी काव्य की परम्परागत यही सूक्ष्म राष्ट्रीयता 'शम्पा' की कविताओं का वर्ण्य विषय है।

'शम्पा' पंचान्नबे पृष्ठ की छोटी सी काव्य–कृति है। इसमें कुल ०६ (नौ) गीत हैं। राष्ट्रीयता इस काव्य–कृति का मूल स्वर है। इसमें मातृ–भूमि तथा देश–प्रेम पर लिखे गये गीत अतुलनीय हैं। इस कोटि के गीत हिन्दी के किसी कवि ने नहीं रचे। इन गीतों में कवि का मातृ–भूमि के प्रति व्यक्त प्रेम चरम पर है। शुद्ध संस्कृतनिष्ठ भाषा में रचे गये इन गीतों में संस्कृत की स्तोत्र–शैली चरितार्थ हुई है। कवि ने इन गीतों में उस भारत देश का गौरवगान किया है जो अनवरत सत्य तथा धर्म में रत रहता है। जहाँ निराकार साकार होकर सामने आता है। जिस देश ने वेद तथा उपनिषदों– जैसी रचनाएँ दीं, राम और कृष्ण को जन्म दिया। जहाँ बुद्ध की दया और करुणा के संवाद गूँजे। जो विश्व मानवता की शरण–स्थली बना, वही देश कैसे पराधीन हो गया? कुँवर जी के इन गीतों में भारत की महिमा के अनन्त विराट बिम्ब उभर कर सामने आते हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति का गौरवशाली विश्व–जयी रूप उभरता है। भारत माता की गौरव– गरिमा का गान करने वाला एक गीत यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

जय शस्य–श्यामा,

रत्न–प्रसू, पुण्य–भू पूर्ण–कामा।

शोभित हृदय–हार शत–शत–तरंगा–

यमुना, प्रथित पंचनद, शुभ्र गंगा,

विन्ध्या प्रकट मेखला कोटि–भंगा,

कटि में सुपट ऊर्मिमाला ललामा।

लंका सरोज स्थिता, वेद–हस्ता,

आद्या–जया, विश्व–वाणी प्रशस्ता,

मातः, पुरा कीर्ति, गति, धीति ध्वस्ता,

जागो, करो जानि महिमाभिरामा।

मातृ–भूमि तथा देश–प्रेम के राष्ट्रीय गीतों के साथ 'शम्पा' में ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक प्रेम की ऐसी कविताएँ संकलित हैं, जिनमें कवि की राष्ट्रीय भावना साकार हुई है। इन कविताओं में 'पाटलिपुत्र','हल्दीघाटी','अयोध्या', 'हिमालय' आदि विषेश रूप से उल्लेखनीय हैं। 'पाटलिपुत्र' कविता अखिल भारतवर्षीय क्षत्रिय महासभा के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर स्वागत के रूप में पटना में पढ़ी गयी थी। यह एक स्वागत गीत था, परन्तु कवि ने इस कविता द्वारा भव्य भारत के क्षत्रिय राजाओं का गौरवशाली इतिहास रचा है। कवि अपनी इस कविता द्वारा पराधीन भारत के क्षत्रियों की सोयी हुई क्षात्र–शक्ति को जगाना चाहता है। कवि भारतवर्ष के उन अपराजेय क्षत्रिय योद्धाओं की यशः कहानियाँ कहकर एक प्रकार से क्षत्रिय समाज को धिक्कारते हुए उन्हें देश पर मर मिटने की भावना जाग्रत करना चाहता है। कवि कहता है कि–

'स्वागतार्थ उर खोल मार्ग में नयन बिछाता,

पटना सुनिये बंधु! मौन सन्देश सुनाता।

लाता नव आलोक, जगा उल्का–सी स्मृतियाँ,

जीवित करता हुआ, भूत की शत्–शत् स्मृतियाँ।

वही देश, वह प्रान्त, वहीं यह नगर तुम्हारा,

वह सम्मुख बह रही वही गंगा की धारा।

किन्तु नहीं तुम वही, हाय! कैसे बतलायें,

तुम क्या थे क्या हुए, आज कैसे समझायें।।

'अयोध्या' और 'हल्दीघाटी' जैसी कविताओं द्वारा कवि ने बलिदानी तथा पराक्रमी चक्रवर्ती सम्राटों के इतिहास को याद दिलाकर देश वासियों को देश पर मर मिटने की प्रेरणा देता है। कवि देश के सोये हुए क्षात्र– धर्म को जगाते हुए लिखता है–

अकबर का अभिमान हुआ क्षण में क्षय सारा,
मग्न यवन साम्राज्य, बही शोणित की धारा।
मानसिंह को मिली यदपि जीवन की भिक्षा,
पाई उसने राजपूत– गौरव की शिक्षा।

हल्दीघाटी राजपूत शोणित से रंजित,
पुण्य तीर्थ बन गई अमरता की निधि वन्दित।
झाला की बलिदान–भूमि ओ हल्दीघाटी,
ज्गा, जगा फिर क्षात्रधर्म की नव परिपाटी।

तू है गत की कीर्ति और भावी की आशा,
वर्तमान में सहज शक्ति, साहस की भाषा।
कहती रह तू सतत ज्वलित बलिदान–कहानी,
गूँजे तेरी सदा सांस्कृतिक–जय की वाणी।

'अयोध्या' हमारे राष्ट्र गौरव की नगरी है। यहीं हमारे देश की राष्ट्रीयता तथा हमारी संस्कृति का डंका बजा था। हमने पृथ्वी से रावणत्व को समाप्त कर रामराज्य की स्थापना की थी। कवि पराधीन भारत को जगाकर रामत्व की स्थापना के लिए उद्घोषित करता है। राष्ट्रकवि की व्याकुलता इन शब्दों में मुखरित है–

जागो, जागो बन्धु और रामत्व जगाओ,
लक्ष्मण का तप त्याग भरत–अनुराग निभाओ।

रघु, दिलीप का ओज, तेज, पौरुष उठ धारो,
अचल भगीरथ–कीर्ति धरा पर फिर विस्तारो।

उठो, बढ़ चलो तूर्ण–चरण जीवन के रण में,
सिंह–सुवन क्यों रहें श्रृंगालों के बन्धन में?

राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत कई कविताएँ इस संग्रह में संकलित हैं। इन सभी कविताओं का रचनाकाल स्वाधीनता संग्राम का वह काल है, जब महात्मा गाँधी के साथ बाबू सुभाशचन्द्र बोस भी सक्रिय थे, परन्तु कवि देश को सामान्य राजनैतिक स्वतंत्रता दिलाने वालों तक ही सीमित नहीं है। कवि देश के प्रथम स्वतंत्रता–संग्राम के अमर बलिदानियों के गीत तो गाता ही है, सन् 1857 के बलिदानियों के गीत भी वह सामने लाता है। कवि केवल राव रामबख्श सिंह डौडिया खेड़ा पर ही कविता नहीं लिखता वह राणा बेनीमाधव को भी याद करता है। वह राणा प्रताप तथा बंदा बैरागी की यशः कहानी भी देश के सामने रखता है। मेरे कहने का अर्थ केवल इतना है कि कवि भूषण और चन्दबरदायी के समान तलवार लेकर युद्ध –स्थल में तो नहीं जाता है, परन्तु, उसने वीर–भाव की जो तलवार गही है, वह अखण्ड देश–वासियों को स्वाधीन चेतना के भाव से भरकर बलिदानी बनाने तथा देश पर मर मिटने की प्रेरणा देता है।

'शम्पा' की सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय कविताओं के मध्य में मानवीय संवेदना की दो कविताएँ– (1) 'अमीनाबाद' और (2) 'दीन देश'– ऐसी कविताएँ है, जिनमें महाकाव्य का–सा औदात्य भी है, और करुण रस का परिपाक भी। ये दोनों कविताएँ निराला की 'दीन' तथा 'भिक्षुक' कविताओं के आगे का चरण हैं जो हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्शित करती हैं और कहती हैं कि छायावादी युग विषय प्रधान कविताओं के साथ सामाजिक यथार्थ की प्रगतिषील रचनाएँ मार्क्स के प्रभाव से नहीं, अपितु भारतीय मानवतावाद की उपज हैं। कुँवर साहब स्वच्छंदतावादी हैं या कि छायावादी, यथार्थवादी या प्रगतिवादी या भारतीय मानवतावाद के उन्नायक महाकवि, इसका निर्धारण करने के पूर्व आधुनिक युग की यथार्थवादी कवियों की काव्य–चेतना का अनुशीलन अनिवार्य होगा। जब यह अनुशीलन किया जायेगा, तब हमें पता चलेगा कि निराला तथा कुँवर साहब की यथार्थवादी काव्य–चेतना भारत की मानवतावादी चेतना की उपज है। 'दीन देश' तथा 'अमीनाबाद' की समता करने वाली एक भी कविता प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद के आन्दोलन जीवी कवियों द्वारा नहीं रची जा सकीं। यदि इन दो कविताओं के समकक्ष किसी अन्य कवि की कविताओं को रखा जा सकता है, तो उस कवि का नाम है– महाकवि निराला। निराला 'अमीनाबाद' तथा 'दीन देश' के पहले 'मतवाला' काल में 'भिक्षुक' तथा 'दीन' जैसी कविताओं का सृजन कर चुके थे। निराला की ये दोनों कविताएँ अतुलनीय हैं परन्तु उनके परम प्रिय शिष्य कुँवर साहब

की उक्त दोनों रचनाएँ निराला की 'भिक्षुक' 'और दीन' से प्रतिस्पर्धा करती प्रतीत होती हैं। 'अमीनाबाद' कविता 'क्लासिक' कविता की याद दिलाती है। 'दीन देश' विदेशी सत्ता से मस्त भारत का सच्चा इतिहास प्रस्तुत करती है–

और, गृहिणी छिन्न मोती की लड़ी,
चीथड़ों से झाँकती लज्जा खड़ी,
शुष्क, कम्पित अधर, कृष, अति रुग्ण तन,
दैन्य – द्ःशासन विकर्षित रुक्ष केश।

स्तनों से कीट से चिपटे अटल,
चूसते शोणित, गया है दूध जल,
अस्थियों के ढेर, शिशु शव मात्र हैं,
देश को आशा, न अब अवलम्ब लेश।

वह बुभुक्षित बालकों की मण्डली,
एक रोटी के लिए क्या खलबली,
ताकती हैं चील, कौए भी चपल,
शोक! टुकड़ों के लिए यह घोर द्वेश!

'अमीनाबाद' भारतीय काव्य की ही नहीं, यह विश्व–काव्य की सर्वश्रेष्ठ मानवतावादी कविता है। इस कविता का महाकाव्योचित औदात्त इसे विश्व के यथार्थवादी क्लासिक काव्यों की पंक्ति में खड़ा करता है। इस कविता की 92 पंक्तियों में सन् 1932–35 ई0 के भारत की 'राजहाट' का सच्चा इतिहास अंकित है। कुँवर साहब कविता ही नहीं रचते थे। वे अपनी कविताओं द्वारा अपने युग का इतिहास भी रचते चलते थे। वह कविता मुक्त छंद में कवि के मुक्त भावों की अभिव्यक्त करती है। इस कविता में नाटकीयता हमारा ध्यान आकर्षित करती है। कवि एक सफल नाटककार के रूप में कविता की प्रस्तावना प्रस्तुत करता है। वह संस्कृत नाटकों के 'सूत्रधार' के रूप में अपनी कविता को मंच पर लाता है और कहता है–

विस्तृत, प्रशस्त राजहाट लखनऊ का,
जीवन नगर का,
शोभित अमीनाबाद–

संघटित घन–अट्टमालिका जहाँ की
दिव्य, वैभव के स्वप्न में
ऊर्ध्व–दृग हैं खड़ी।

कवि हिन्दी के पाठक को अमीनाबाद लखनऊ के 'राजहाट' पर लाकर खड़ा करता है और फिर वह अमीनाबाद के बाजार का सम्पूर्ण वैभव, उसका विलास तथा सुसज्जित दूकानों एवं युवक–युवतियों, सेठों–साहूकारों, कलाकारों–साहित्यकारों, अधिवक्ताओं, नेताओं, न्यायाधीशों, आदि संकुल अमीनाबाद की तड़क–भड़क के अन्यान्य गत्वर विम्ब अंकित करता है। इस कविता का कैनवास विराट है। उसमें पग–पग पर कंट्रास्ट है। कवि उसी अमीनाबाद में मेवे और फलों की दूकानों के मध्य महावीर 'हनुमान मन्दिर' को संस्थित देखता है। यहीं से कविता का दृश्य बदलता है और कविता अपने चरम पर पहुँचती है–

पेट पर हाथ रख, कहते पुकार–
'बाबू जी सरकार,
पैसा दो, धेला दो,
भूखे हैं दीन हम,
रुतबा बढ़े आपका,
मालिक हैं अन्नदाता!'
सूखी हुई छातियों में,
हड्डियों के सूखे लघु ढेर एक
बच्चे को चिपटाये
कहती है अर्ध–नग्न नारी–
''जिला लो इस बच्चे को बाबू जी।
लीन होता क्षीण पर स्वर यह
दीनों का
दृप्त अट्टहास, सुख–दृप्त जन रव में,
ऊँचे उठता नहीं।

भाग्य जगा
टूटा भी बतासा यदि पा गये,
महावीर स्वामी के प्रसाद का,
परम दयालु बड़े सेठ जी के दान में।

निराला की ही भाँति कुँवर जी ने अपने प्रथमोत्कर्ष काल में छायावादी भाव–बोध की कविताएँ तथा गीत लिखे थे, जो अतुलनीय हैं। इन गीतों में कुँवर साहब का देश–प्रेम, देश की सांस्कृतिक गरिमा की पृष्ठभूमि पर व्यक्त हुआ है। कवि यह मानता है कि यह देश वेदों, उपनिषदों तथा राम, कृष्ण और बुद्ध का देश है। यहाँ प्रेम और करुणा की अजस्र धारा प्रवाहित रहती थी, परन्तु किन्हीं कारणों से हमने अपने अतीत को भुला दिया और दिग्भ्रमित हो गये। कवि अपने इस गीत द्वारा देशवासियों में नई चेतना जाग्रत करना चाहता है–

जय देश,
भारत, सतत सत्य रत,
धर्म निःशेष।
पाया यहीं ज्ञान ने ज्ञेय आधार,
आकार में आ बँधा जो निराकार,
गूँजा महाशून्य में आदि ओंकार–
संसार में सार का पूर्ण निर्देश।
विस्मृत महत उपनिषद–वेद के बाद,
करुणा, दया, बुद्ध के शुद्ध संवाद,
आदर्श क्या राम के कृष्ण के याद,
कैसे हुये भ्रान्त, कैसे निरुद्देष?
गरजो गगन भेद फिर हे महाप्राण,
फूँको वही शंख, फूटें नये गान,
पावें पतित पद दलित विश्व के त्राण,
छा ले धरा साम्य का कान्य सन्देश।

कुँवर जी की काव्य –चेतना के ये दो छोर हैं, जो आदि से अन्त तक देखे जा सकते हैं। इसके पहले निराला 'मतवाला' काल में 'भिक्षुक' और 'दीन' जैसी कविताएँ रचकर दीन दुखियों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रमाणित कर चुके थे। 'अमीनाबाद' कविता मानवतावाद की आगे की कड़ी है। देश–प्रेम तथा दीन–दुखियों के प्रति सहानुभूति की इस कोटि की कविताएँ आधुनिक कविता में विरल हैं। छायावाद के बाद प्रगतिवाद में दीन–दुखियों के प्रति सहानुभूति की कविताएँ रचीं गयी थीं, परन्तु बाद की आन्दोलन जीवी कविता में दीन–दुखियों के प्रति सहानुभूति की कविता नहीं रची जा सकीं। इसका प्रमुख कारण यह है कि मानवता के प्रति करुणा का भाव भारतीय संस्कृति की देन है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है स्वाधीनता संग्राम के युग में रचे गये देश–प्रेम के गीतों, ऐतिहासिक तथा लोक–संवेदना की कविताओं का महत्त्वपूर्ण कविता–संग्रह है, 'शम्पा'। इन गीतों तथा कविताओं में जो काव्य–औदात्य पाया जाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'प्रतिपदा' आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह की काव्य–साधना का चौथा कविता–संग्रह है। इस कविता–संग्रह का प्रकाशन सन् 1960 ई0 में उस समय हुआ था, जब वे एम0एस0 विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। इस कविता–संग्रह में समय–समय पर रची गयीं कविताओं तथा गीतों का संकलन कुँवर साहब के स्नेहशील मित्रों द्वारा किया गया है। इसमें विभिन्न शैलियों में रची गयीं ऐसी कविताएँ तथा गीत हैं, जो भाव–वैविध्य के कारण पूरी शताब्दी की काव्य–चेतना का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रतीत होती हैं। इन कविताओं में छायावादी भाव–भूमि का स्वाभाविक विकास और उसकी समृद्धि देखी जा सकती है। ये सभी कविताएँ तथा गीत प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्य–चेतना से सर्वथा मुक्त हैं और इनमें कवि की नूतन स्वानुभूति की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस सम्बन्ध में कवि ने स्वयं लिखा है कि–''इस संग्रह में मेरे द्वारा समय–समय पर लिखी गयीं विभिन्न प्रकार की रचनाओं में कुछ चुनकर छापी गयीं हैं। चयन का कार्य मैंने नहीं मेरे स्नेहशील मित्रों ने किया है और उन्हीं के कारण यह संग्रह प्रकाश में आ रहा है। कदाचित इसमें विभिन्न शैलियों का प्रतिनिधित्व देने की दृष्टि प्रमुख हो उठी हैं।'' आरंभ की कुछ रचनाओं में इस देश के सांस्कृतिक मानदण्डों के पुण्य प्रतीकों की अभ्यर्थना है। जिनमें 'त्रिपथगा', 'सागर', 'हिमालय', 'महाशक्ति' आदि कविताएँ भारत की सांस्कृतिक गरिमा का आख्यान करती हैं।

'त्रिपथगा' तो केवल कपिल–कोप से ही मुक्ति नहीं है, वह तो–

कोटि–कोटि ऋषियों का तप यह जल बनकर ढलता है।

जिससे भारत की संस्कृति का निर्जरत्व पलता है।

x x x x x x x x

'यत्र', 'शक्कर मिल' जैसी रचनाओं में उन नवीन तत्वों के प्रति हमारे बढ़ते हुए रागात्मक सामन्जस्य का निरूपण है, जो औद्योगिक सभ्यता के प्रचार और प्रसार के साथ–साथ हमारे जीवन और परिवेश के अनिवार्य अंग हो गये हैं। कुछ प्रेम और सौंदर्य के गीत भी हैं और कुछ रचनाओं में प्रकृति के प्रति उनकी आत्मीयता की सहज अभिव्यक्ति है। किन्तु ग्रामवासी होने के नाते उन्होंने अपने जीवन के प्रथम चरण से ही प्रकृति के कोमल–क्रूर अनेक प्रकार के रूपों की पृष्ठभूमि में ग्राम जीवन के दैन्य और विवशता की हृदयविदारक अनुभूति के दंश निरन्तर सहे हैं। बचपन में अनेक ऐसे दृश्य देखे हैं, जब फागुन लगने पर दीन–हीन पराधीन ग्राम–जीवन में भी प्रकृति के साथ मुसकराने और हँसने–गाने का प्रयत्न किया है। पर दूसरे ही दिन ओलों की वर्षा हो जाने से खेत, श्मशान और ग्राम जीवन वीरान बन गया है। बुझी चिताओं से प्रतीत होने वाले उन खेतों का संस्कार कवि के मन पर अन्त तक अमिट रहा है और उस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति भी कुँवर साहब की रचनाओं में नैसर्गिक रूप से प्रकट हुई है, प्रगति या प्रयोग की गढ़ी हुई परिभाषाओं को लक्ष्य कर नहीं लिखी गयी है।''

पकने लगे खेत, सरसों की चलने लगी कटाई,
आशा की मुसकान किसानों के होंठों पर छाई।
भूख–शीत से सूख रही थी, जिनकी जीवन–धारा,
उनका भी उल्लास उमड़ अब ढाने लगा करारा।
पश्चिम से उठ लाल बादलों ने बरसाया ओला,
फूटा हाय! दैव के उर का आकर यहाँ फफोला।
बुझी चिताओं से लगते हैं खेत, नहीं है दाना,
बिलख रहे सब बाल–वृद्ध भोजन का कहाँ ठिकाना।

कवि मूलतः ग्रामवासी है। गवईं—गाँव की कवित—संवेदना उसका संस्कार है, जो चिर स्थाई है। छायावादी कवियों में कुँवर साहब एक ऐसे कवि हैं, जिनका बचपन गाँवों में बीता था। बचपन के बाद वे बराबर ग्रामवासी ही बने रहे। इस उद्धरण की पंक्ति—पंक्ति में कवि का यही ग्राम—जीवन का संस्कार उद्भाषित है।

'प्रतिपदा' में कई कविताएँ हिन्दी—महीनों को केन्द्र में रखकर लिखी गयीं हैं। इन कविताओं में गाँव की पूरी सुशमा प्रस्फुटित हो उठी है। कुँवर साहब का ग्राम—जीवन का प्रेम इन कविताओं में साकार हुआ है। ग्राम—जीवन का इतना सच्चा और स्वाभाविक रूप हिन्दी कविता के किसी अन्य कवि की कविता में नहीं पाया जाता है। चैत के महीने में जब फसल पकती है, तब वह खलिहानों में एकत्र की जाती है। उसे एकत्र करने और अन्न—राशि पर तरुणियों का मुसकाना आदि शब्दों द्वारा साकार किया गया है। मड़नी का चलना, उसका ओसाया जाना, आदि सभी का चित्रवत वर्णन किया गया है। किसान के लिए इससे अधिक खुशी के दिन और क्या हो सकते हैं—

खड़े लिए फल नवल आम हैं फागुन के बौराये,
झूम रहे हैं महुए, कटहल जग गन्धान्ध बनाये।
वहीं बसी है छायातप में खलिहानों की बस्ती,
रंगीनी के इस आलम में है बस केवल मस्ती।

मड़नी चलती है, बिरहों की आह बिखरती रहती,
कोयल, सुये, पपीहे की तानों पर हवा मचलती।
गेंहू, अरहर और चना की राशि उसाई जाती,
देख, देख साजन का पौरुष ग्राम—वधू मुसकाती।

अभिधा शक्ति—प्रधान—कवि की व्यंजना—धर्मिता इन पंक्तियों में साकार हो उठी है। फागुन में आमों में बौर आना एक स्वाभाविक प्राकृतिक विधान है। यहाँ 'बौराये' शब्द का श्लेश इस कविता के सौंदर्य को बढ़ाता है। ऐसा लगता है, जैसे आम के पेड़ अपने नये फलों के साथ किसी के स्वागत में मस्त हैं। इसी ऋतु में महुए 'कुचियाते' हैं, कटहल के पोर—पोर से निकल कर

कटहल निकल आते हैं, कवि महुओं तथा कटहलों के पेड़ों की मस्ती पर विमोहित है। इस विमोहन की अवस्था में कवि जिसे 'रंगीनी के इस आलम में है बस केवल मस्ती' कहकर सम्पूर्ण चैत्र मास की गति–विधियों को साकार कर देता है। 'मड़नी' का चलना, 'विरहों की आह विखरना', 'कोयल, सूये, पपीहे' की 'तानों' का 'मचलना', 'गेहूँ, अहरहर और चने की राशि' का 'ओसाया' जाना ग्रामीण जीवन की समृद्धि के द्यौतक हैं। इस सब समृद्धि को साकार करने वाले किसान के पौरुष पर ग्राम बधू का 'मुसकाना' ग्राम जीवन का अनोखा, किन्तु दिव्य बिम्ब प्रकृति चित्रण का विराट बिम्ब है।

'प्रतिपदा' कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की सम्पूर्ण साहित्य–साधना के मध्य की कड़ी है। इस कविता–संग्रह के गीतों तथा कविताओं के अनुशीलन से यह बात भली–भाँति स्पष्ट हो जाती है कि कुँवर साहब हिन्दी की आन्दोलन जीवी कविता के युग में भी छायावादी भाव–भूमि पर पूरे आत्म–विश्वास से संस्थित हैं। यहाँ देश–प्रेम तथा मानव–प्रेम की संवेदना अपने चरम पर है। यहाँ पौराणिक आख्यानों तथा ऐतिहासिक महापुरुषों और लोक–जीवन के संदर्भों की कविताएँ हिन्दी में बेजोड़ हैं।

'अपराजिता' आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की काव्य–साधना का पाचवाँ कविता–संग्रह है। इस कविता संग्रह का प्रकाशन सन् 1969 ई0 में हुआ था। इस कविता संग्रह में कुल 49 कविताएँ संग्रहीत हैं। इनमें 36 कविताएँ तथा 13 गीत हैं। इस कविता–संग्रह की पहली कविता एक ध्वनि रूपक है। यह कविता पाँच दृश्यों में विभक्त है। इसके सभी पात्र स्त्री हैं। इस कविता का आधार पौराणिक है। इस पौराणिक कथा के माध्यम से कवि की राष्ट्रीय भावना मुखरित है, जो इस धरती पर अनय तथा निर्दय समाज से जूझने की शक्ति प्रदान करती और इस धरा पर धर्म का राज्य स्थापित करने का अभय दान प्राप्त करती है– बंदीजन के अनुरोध पर जगदम्बा माँ कहती हैं–

मैं निज जन का योग क्षेम नित वहन करूँगी,
धर्म हानि यदि हुई, त्वरित अवतार धरूँगी।
अभय रहे सब लोक, धर्म की जय है, निश्चय,
असत चित का और अशिव का होगा ही क्षय।

कुँवर साहब निराला और प्रसाद से बराबर प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण करते हैं। निराला की प्रसिद्ध कविता 'बादल राग' और प्रसाद का प्रयाण गीत

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग पर, प्रबुद्ध शुद्ध भारती' उनके लिए सदैव अनुकरणीय रही हैं। प्रसाद के इसी गीत के तर्ज पर रचे गये कुँवर साहब के एक गीत की ये पंक्तियाँ पठनीय हैं–

सुपक्व स्वर्ण शस्य से
दिगन्त भूतिमान है।
प्रबुद्ध सख्य – चेतना
रसार्द्र प्राण – प्राण है।

यह एक प्रयाण गीत सा है। यह शस्य–श्यामला धरती अपनी रक्षा के लिए देश वासियों को बलिदान की प्रेरणा देती प्रतीत होती है–

स्वदेश हो प्रबुद्ध
रक्तदान माँगने लगा,
अजेय प्राण–प्राण में
बसन्त जागने लगा।

इस कविता–संग्रह की समस्त कविताएँ तथा गीत पठनीय हैं। गीतों के अतिरिक्त 'भगवान श्री कृष्ण के प्रति', 'विदुला', 'विजया', 'वीरबाहु', 'चित्तौड़', 'हिमिगिरि का आह्वान', 'संक्रान्ति', 'अमर सुभाष', 'गुर्जर भारती', 'कल्कि' आदि कविताएँ अवश्य पढ़नी चाहिए। इन्हें पढ़ने से हमें पता लगता है कि प्रगति–प्रयोग के युग में भी कुँवर जी ने छायावादी कविता की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक धारा को मन्द नहीं पड़ने दिया है। उनके गीतों तथा कविताओं में निराला युग के तेवर जैसे–के–तैसे विद्यमान हैं। इसी कविता संग्रह में 'अमर सुभाष' नाम की कविता है जो उस समय लिखी गयी थी जब वायुयान के 'क्रैश' होने के साथ सुभाष बाबू के दिवंगत होने की खबरें चारों ओर प्रसारित की जा रही थीं। उस समय देश की स्वाधीनता के विश्वासी कवि की आत्मा यह स्वीकार करने को तैयार नहीं थी कि सुभाष स्वाधीनता दिलाने से पूर्व मर सकते हैं! उसका विश्वास है कि वे कदापि मर नहीं सकते, वे अमर हैं –

ज्योति–ज्योति अस्तित्व अमर है,
अक्षत है, वह मर न सकेगा,

मृत्युंजय वह हँस–हँस कितने,
कालकूट के घूट पियेगा।

इस संकलन की कविताओं के भाव–वैविध्य में वैशिष्ट्यपूर्ण आकर्षण हैं। भाव–वैविध्य के साथ ही इस संकलन की प्रत्येक कविता राष्ट्रीय– भावना से परिपूर्ण हैं। इस संकलन में 'जय हिन्दी' गीत का अपना महत्व है। इस संकलन में कई कविताएँ प्रशस्ति मूलक हैं और कई भावांजलियाँ हैं। इनमें 'निराला के प्रति' तथा 'महामना मालवीय जी के निधन पर' कविताओं का अपना मूल्य है। निराला कुँवर साहब के गुरु रहे हैं। उन्होंने उनके जीवन की विपन्नता तथा हिन्दी जगत के स्थापित साहित्यकारों के विरोध को देखा था। उन्होंने यह भी देखा था कि दुर्निवार संघर्षों का सामना करते हुए निराला ने अपनी रचना धर्मिता को आँच नहीं आने दी। इस कविता में पूरी संवेदना और तन्मयता के साथ निराला की काव्य–चेतना का अंकन किया गया है। इस कविता में निराला का सम्पूर्ण जीवन–चरित साकार हो उठा है। बचपन में निराला जी की माँ का निधन हो गया था। बीस वर्ष की अवस्था में पिता का तथा 21 वर्ष की अवस्था में पत्नी के स्वर्गवास हो जाना निराला के जीवन का ऐसा वज्रपात था, जिसे निराला सहन तो कर गये, परन्तु अपने अन्तर्मन से टूट चुके थे। निराला अपने इस जीवन व्यापी अंधकार में आत्म–दीप बन कर जले थे। उनका जीवन और उनका काव्य परतंत्र देश के नागरिकों को जाग्रत करने में सफल रहा। यह कविता प्रत्येक साहित्यकार के लिए पठनीय है। निराला के जीवन से जो कवि को प्रेरणा मिली थी, वह हमारे लिए अनुकरणीय आदर्श है–

सीखा मैंने तुमसे जीवन का पाठ्य धन्य,
आदर्शों का आलोक–ओक पाया अनन्य।
विज्ञापन–विमुख प्रवृत्ति सरल शिशु–सा–स्वभाव,
कुसुमादपि कोमल हृदय न जिसमें कुछ दुराव।
था महाकाल–सा महत तुम्हारा वह चरित्र,
है मानस–पट पर अमिट रह गया ज्योति–चित्र।
तुम चले गये हो जहाँ धरित्री के सपूत,
ये जा न सकेंगे मेरे अक्षम अश्रु–दूत।

इसी उच्चतर भाव–भूमि पर कवि महामना मदनमोहन मालवीय के प्रति भी अपनी भावांजलि अर्पित करता है। कवि ऐसा अनुभव करता है, जैसे देश के उद्धार के लिए मालवीय जी को पुनः जन्म लेना पड़ेगा–

उद्धार करो तुम स्वर्ग–राज्य का पुनर्वार,
उद्धार करो तुम देश–धर्म का पुनर्वार।
अवतार धरो तुम भारत–भू में बार–बार,
साकार बनो, साकार बनो, फिर एक बार।

इसी भाव–भूमि पर रची गयीं कविता 'कल्कि' पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है। कवि भारतीय अध्यात्म का आस्थावान कवि है। इसलिए अधर्म के नाश का वह विश्वासी है। इस भाव की व्यंजना कवि ने इस प्रकार की है–

बदल रही है पाप–तापमय जग की सत्ता,
जागेगी फिर सत्य धर्म की प्रकृत महत्ता।
उतर रहे खिंच देव पीड़ितों की आहों से,
दीन जनों की दुसह कराहों की राहों से।
उनका ही रव दलित विश्व जन रव बन छाया,
उनका ही स्वर कोटि–कोटि कण्ठों ने गाया।
फैलेगी फिर नई धर्म ज्योति धरा पर,
भोगेंगे सब साम्य, सख्य, स्वातंश्य निरन्तर।
नव युग का आह्वान गूँजता है दिशि–दिशि में।

कविताओं के अतिरिक्त इस कविता–संग्रह में कुल 13 गीत हैं। इन गीतों की भाव–भंगिमा निराली है। इनमें 'प्राणों की होली', 'नव सन्देश' आदि उद्बोधन गीतों में देश की स्वाधीनता पर मर–मिटने का भाव प्रमुख है।

अपराजिता का अपराजेय भाव–बोध कवि की पंक्ति–पंक्ति में अनुगूँजित है। 'बलिदान गीत' इस संग्रह की एक सशक्त रचना है। इसमें कवि का वीर–भाव देश की स्वाधीनता पर मर मिटने वाले वीर सपूतों को याद करता है और उन्हें देश के मनोगगन में जगने तथा तपस्त्याग की आग लगाने की याचना करता है–

जय बोलो, उन आत्महुतों की जय बोलो, जय बोलो,
जय गणेश, जय–जय सावरकर, जय चाफेकर बोलो।
मदनलाल, वारीन्द्र घोष, जय, जय सत्येन्द्र, कन्हाई,
अपना तन–मन खुदीराम की स्मृति पर वारो भाई।
पुण्यश्लोक श्री हरदयाल जय, जय श्री रासबिहारी,
जय शचीन्द्र सान्याल, अमर स्मृति गेंदालाल तुम्हारी।
जन–जन के मानस को रोशन रोशनसिंह करो तुम,
जय विस्मिल, जय अशफाकुल्ला नवचेतना भरो तुम।
जय शहीद–पूषण नर–केहरि श्री आजाद तुम्हारी,
अर्पित है तुमको भावों की अंजलि विनत हमारी।
भगतसिंह के साथ देश की दीप्त करो तरुणाई,
स्वतंत्रता आई, न दासता मन की पर मिट पाई।
पुनः देश के मनोगगन में तुम उल्का से जागो,
एक बार फिर तपस्त्याग की आग बनो अनुरागो।

इस संक्षिप्त अनुशीलन में 'अपराजिता' के भाव वैविध्य तथा कवि की काव्य–चेतना को उद्घाटित करना संभव नहीं है। इस कविता–संग्रह का पूरा आनन्द पढ़ने के बाद ही प्राप्त किया जा सकता है।

'विजया' कुँवर साहब की काव्य–साधना की छठवीं काव्य –कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1969 ई0 में हुआ था। यह काव्य–कृति भारत के पौराणिक आख्यान 'दुर्गा सप्तशती' पर आधारित है। ''दुर्गा सप्तशती' भारतीय वाड्.मय की पुण्यतम एवं अन्यतम कृति है। इसका महत्व उपनिषदों, 'ब्रह्मसूत्र' गीता जैसे चरम प्रकर्ष–सम्पन्न, ग्रन्थों के समकक्ष ही सर्वमान्य है। जिन आर्ष ग्रन्थों में वेद के सर्वोच्च सत्य और व्यवहार को सार्वजनीन और सार्ववर्णिक बनाने का कालजयी उपक्रम किया गया है, उनमें 'दुर्गासप्तशती' का स्थान उच्चाति उच्च है। यह आख्यान आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सभी स्तरों पर एक समान परम एवं पूर्ण सत्य की सुसमन्वित व्याख्या प्रस्तुत करता है। दुर्गा शक्ति स्वरूपा हैं। दुर्गा असत प्रवृत्तियों पर

विजय पाने का एक मात्र उपाय है। संकट के समय देवों की समस्त शक्तियाँ महिषासुर मर्दिनी माँ दुर्गा में निहित मानी गयी हैं।

यह आख्यान पौराणिक है, परन्तु इस आख्यान में सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक विजय की चेतना निहित है। इसीलिए आज के इस वैज्ञानिक युग में भी शक्ति की उपासना सार्वदेशिक बनी हुई है। भारत में नवरात्रि में इसी शक्ति की उपासना का विधान है। राष्ट्र–भक्त कवि को लगता है कि स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद भी राष्ट्र के उत्थान में असत् शक्तियाँ सक्रिय हैं। इसलिए वह 'विजया' काव्य का प्रणयन करता है। 'विजया' निराला की राम की 'शक्ति पूजा' के बाद शक्ति काव्य की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमान काव्य कृति है। 'विजया' भाषा, शैली, छन्द तथा अलंकार की दृष्टि से हिन्दी कविता की एक श्रेष्ठतम उपलब्धि है। यह सही अर्थों में विश्व के श्रेष्ठ उदात्त–काव्यों में एक अन्यतम रचना है। इसके पाठ में मंत्रोच्चार की सी अनुगूँज सुनाई देती है। नौ खण्डों में विभक्त यह काव्य– कृति, पठन–पाठन के लिए ही नहीं रची गयी है, वरन् यह पारायण योग्य है। अस्तु, यह शक्ति उपासना का परम धर्म–ग्रन्थ भी है।

देश की स्वाधीनता के लिए मर–मिटने वाला कवि देश की दुर्दशा को अपनी अश्रुपूरित नेत्रों से देख रहा था। अब देश को जगाने का समय बीत चुका था। क्रान्ति के गीत लिखे तो किसके लिए? प्रयाण गीत लिखे तो कौन आगे बढ़ेगा? सिर में कफन बाँधने वाले इतिहास हो गये। न गाँधी का राम–राज्य आया। न पटेल का नव्य, भव्य, सभ्य भारत बना। न स्वाधीनता के अमर बलिदानियों– भगत, आजाद, और सुभाष का समाजवाद आया, न लोहिया का समाजवाद। यही नहीं गाँधी का 'ट्रष्टीशिप' का सिद्धान्त हवा हो गया। भ्रश्टाचार का बोल–बाला था। साम्प्रदायिकता बढ़ रही थी। असद् प्रवृत्तियाँ विनाश का ताण्डव कर रही थीं। ऐसी स्थिति में कवि को लगा कि देश की आत्म–शक्ति को जागृत किया जाये, तभी राष्ट्र का कल्याण सम्भव है। उसे लगा कि शक्ति की उपासना ही एक–मात्र निदान है। यह उपासना जाति, धर्म तथा सम्प्रदाय से ऊपर है। इसीलिए उसने दुर्गा सप्तशती को आधार बनाकर, 'विजया' खण्ड काव्य की रचना की। इस खण्ड–काव्य का उद्देश्य महान था और उसकी (शक्ति) प्राप्ति पर हमारा भारतीय समाज कैसा होगा, इसका पूरा चित्र इस कविता के उपसंहार में साकार हुआ है। कवि लिखता है–

थे भाव–पुष्प ये अर्पित चरण–वरण में,
चैतन्य–ज्योति जागृत थी करण–करण में।
थी नाभि–कुण्ड में दीप्ति चेतना–ज्वाला,
जाता था जिसमें अक्ष–वृत्ति–हवि डाला।
जो एधमान था चिन्मय सतत निरिंधन,
उस ज्ञानानल में था हविश्य बन हुत मन।
क्षय हुए तापत्रय, ध्वस्त अशेष क्लेश–घन,
बन गया व्यक्ति का जीवन तप कर कुन्दन।
चारिष्य–ज्योति फैली समाज में अनुपम,
था पुष्टि–तुष्टि से मंडित प्रति गृह–आश्रम।
प्रति वर्ण, वर्ग में था सौहार्द परस्पर,
कोई न दीन था, दुखी नहीं था कोई,
रोगी, विकलांग, अपुत्र नहीं था, कोई।
शोशक–शोशित अथवा उत्पीड़क–पीड़ित,
कोई न वहाँ था पूत–पतित जेता–जित।
परिवार एक बन गई धरा यह विस्तृत,
था स्वर्ग स्वयं चरणों में विनत अधिष्ठित।
अनुकूल नियति थी, देश–काल मंगलमय,
पाकर अभीष्ट सब जीवन निखिल निरामय।

'विजया' उदात्त काव्य का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसके भाव, भाषा, शैली, छंद, अलंकार, काव्य–रूप सभी के उदात्त काव्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं। विजया वास्तव में महत काव्य का उदाहरण है। हिन्दी कविता में अभी महत् काव्य का अनुशीलन प्रारंभ नहीं हुआ है। प्रो0 सूर्य प्रसाद दीक्षित ने 'विजया' की भूमिका का उपसंहार करते हुए लिखा है–

इस प्रकार शक्ति–माहात्म्य शक्ति स्वरूप एवं शक्ति–साधना–पद्धति से युक्त 'विजया' काव्य निश्चय ही एक महनीय कृति है।'शक्ति–साधना' से

सम्बन्धित काव्य कृतियाँ हिन्दी में अत्यल्प हैं। 'राम की शक्तिपूजा' (निराला) 'महा– भारतीया' के साथ–साथ 'विजया' एक श्रेष्ठ उपलब्धि है। इसका छन्दोविधान और भाषा प्रयोग संस्कृत श्लोकों के गायन तथा मन्त्रोच्चारण का–सा सुखद नाद–सौन्दर्य प्रस्तुत करता है। इसमें भाषा के अतिरिक्त भावों का भी औदात्य है। अनेक स्थलों पर प्रयुक्त कवित्व से युक्त उद्गार, उत्प्रेक्षा, उपमा के चमत्कार (४०), विराट से विराट बिम्बों (१०), प्रतीकों तथा रूपकों (१८) का सम्भार वस्तुतः मनोमुग्धकारी है। कथा की पौराणिक पृष्ठभूमि होते हुए भी 'विजया' में समसामयिक जीवन की अनुगूँज है, यथा–

'भूतवाद और भोगवाद के निदाघ बीच,
सूखी जा रही है प्रभु ! धर्म–जाह्नवी की धार।'
जीवन मूल्यों के विघटन से दानवता साकार'

यह काव्य–कृति पठनीय तथा संग्रहणीय है। इस काव्य–कृति की 'भूमिका', आत्म–निवेदन, 'विजयाः शक्ति की कल्पना' अद्भुत है। उदात्त भाषा तथा उदात्त शैली में रचा गया है। यह काव्य सचमुच अप्रतिम है। कृति के अन्त में शब्दार्थ दिये गये हैं, जो पाठक के लिए पथ–प्रदर्शन का काम करेंगे।

ग्रन्थावली के इस द्वितीय खण्ड में संकलित सभी पाँच काव्य–संग्रहों– (1) मेघमाला, (2) शम्पा, (3) प्रतिपदा, (4) अपराजिता तथा (5) विजया के गीतों तथा कविताओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि छायावादी भाव–भूमि का जिस काव्य–प्रवृत्ति का प्रवर्तन सन् 1916 ई0 में हुआ था, उस काव्य–प्रवृत्ति की समस्त विशेषताएँ कुँवर साहब के इस खण्ड की कविताओं में अपने पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान हैं। इन गीतों तथा कविताओं में निराला के गीतों तथा कविताओं प्रभाव स्पष्ट रूप परिलक्षित होता है। इस खण्ड के गीत तथा कविताऐं छायावादी कवियों के नूतन भाव, नूतन भाषा, नूतन शैली, नूतन छंद, नूतन अलंकार तथा नूतन काव्य–रूपों का विकास अपने चरम पर है।

प्रो. शिव मोहन सिंह

क्रमशः ....

प्रकाशकीय

आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की काव्य–साधना की ग्रन्थावली का द्वितीय एवं तृतीय खण्ड हिन्दी के सुधी साहित्यकारों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इन खण्डों में आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी का खण्ड काव्य तथा समय–समय पर प्रकाशित उनकी अन्य काव्य–कृतियों का संकलन समावेशित है। विगत कुछ वर्षों में प्रायः अनेकानेक विश्वविद्यालयों के शोध छात्रों तथा विश्वविद्यालयों के आचार्यगण हमारे पिताश्री की रचनाओं के उपलब्धता के बारे में मुझसे प्रश्न करते रहे हैं। बहुत सी पुस्तकें अब उपलब्ध नहीं हैं। अतः उनको एकत्रित करने में कुछ समय लगा। मैंने विभिन्न स्थानों से प्रयास करके प्रायः उनकी सभी रचनायें चाहे पुस्तककार हों या किसी पत्र–पत्रिका में प्रकाशित हुई हों, एकत्र करने का प्रयास किया और उन्हें एक साथ एक जगह पर लाने का प्रयास किया, जिससे कि यदि कोई विद्यार्थी या साहित्य प्रेमी उनके साहित्य को देखनाा चाहे तो उनका साहित्य एक जगह उपलब्ध हो।

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि मेरे पूज्य पिताश्री हिन्दी के प्रमुख कवि थे यहाँ तक भी कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि वे छायावाद के उन्नायक कवि भी हैं। यद्यपि न मैं साहित्य का विद्यार्थी रहा हूँ और न मुझे साहित्य पर किसी प्रकार की टिप्पणी करने का अधिकार है तथापि प्रो0 श्री शिवमोहन सिंह को स्थापनाओं को पढ़ने के बाद मुझे लगता है कि साहित्य–जगत में उनकी जानबूझ कर उपेक्षा की गई है तथा उनका जो स्थान था, उन्हें नहीं दिया गया। मेरे पिताश्री ने अपने 'संकटमोचन' महाकाव्य की भूमिका में मुझसे और मेरे अग्रज डा0 रविप्रकाश सिंह से यह अपेक्षा की है कि हम दोनों उनके काव्य–साहित्य के संवर्धक बनें और उनकी काव्य–साधना को जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास करें।

हम दोनों भाई उनके इस आदेश का पालन कर सकें, ऐसी प्रभु से प्रार्थना है। इसी क्रम में अपने अग्रज डा0 रविप्रकाश सिंह जी का विशेष उल्लेख करना चाहूँगा, जो मुझसे प्रति सप्ताह ग्रन्थावली की प्रगति के बारे में

पूछते रहते हैं तथा उसके प्रकाशन में पूरा सहयोग करते हैं। इस ग्रन्थावली के प्रकाशन के साथ–साथ मेरे पिताश्री के साहित्य के सम्बन्ध में चर्चा और नये सिरे से उसका अनुशीलन करने के लिए मैं प्रो0 श्री शिवमोहन सिंह जी का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, वे इस ग्रन्थावली के प्रधान सम्पादक भी हैं। उन्होंने हिन्दी–जगत को मेरे पिताश्री के साहित्य पर नये सिरे से सोचने को विवष किया है। मुझे विश्वास है कि साहित्य जगत इस पर अवश्य विचार करेगा और करना भी चाहिए। प्रो0 श्री शिवमोहन सिंह जी ने जिस ओर संकेत किया है उधर अवश्य मंथन करेगा और हमारे पिताश्री के साहित्य को वह स्थान देगा जिसके वे अधिकारी है। यहाँ यह उल्लेख करने में मैं संकोच नहीं करता हूँ कि उन्हें जब भारत–भारती सम्मान मिला तब तथाकथित वामपंथी साहित्यकारों ने मेरे पिताश्री के साहित्य को बिना देखे और पढ़े एक ऐसा माहौल बनाने का प्रयास किया जैसे कि उन्होंने कोई साहित्य साधना ही नहीं की। मैं समझता हूँ कि उस समय भी डॉ0 चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा, श्री आनन्द प्रकाश मिश्र 'अभय'– पूर्व सम्पादक 'राष्ट्रधर्म, ने उसका खुलकर विरोध किया। उसके बाद प्रो0 श्री शिवमोहन सिंह जी ने उनकी काव्य रचनाओं का सम्पूर्ण आकलन करने का प्रयास किया है और एक नये आयाम से सोचने का मजबूर किया है।

ग्रन्थावली का द्वितीय खण्ड सुधी–साहित्यकारों के कर–कमलों में प्रस्तुत करते हुए मुझे आपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इसके प्रकाशन से मैं अपने पिताश्री के आदेश का कुछ पालन कर सकूँगा ऐसा मुझे सन्तोष हो रहा है तथा इस ग्रन्थ के प्रकाशन में मुझे मेरे अग्रज डॉ0 रविप्रकाश सिंह का भरपूर आशीर्वाद अवश्य ही मिला हे। प्रो0 श्री शिवमोहन सिंह, उनके सम्बन्ध में कुछ भी कहने में मैं असमर्थ हूँ, क्योंकि वे उम्र में मुझसे लगभग 10 वर्ष बड़े हैं, 85 वर्ष की आयु में भी वे मेरे पिताश्री तथा महाकवि निराला के काव्य का जिस समर्पण के साथ उसका अवगाहन कर रहे हैं और इन महान कवियों के काव्य–विमर्श के नये–नये द्वार खोल रहे हैं, यह उनकी साहित्य के प्रति उनके समपर्ण का प्रमाण है।

मेरे पुत्रों सवित्रवर्धन, यशोवर्धन व भक्तिवर्धन का अपने पूज्य पितामह के प्रति उनका पूज्य–भाव मेरे लिए इस ग्रन्थावली के प्रकाशन में अत्यन्त

महत्वपूर्ण है। वे सभी समय–समय पर ग्रन्थावली के साज–सज्जा आदि पर उनका विमर्श मुझे नित्य नई ऊर्जा प्रदान करता है। मेरी ओर से उनको शुभ आशीर्वाद। यहाँ पर मैं श्री सुरेश चौहान (सुदर्शन शास्त्री), अशोक शुक्ल 'अंजान' एवं राजकुमार पाण्डेय का भी आभारी हूँ, जिन्होंने क्रमशः प्रूफ–रीडिंग और टंकण कार्य सम्पन्न किया जिससे ग्रन्थावली आकार ले सकी, इन सभी का मैं हृदय से साधुवाद करता हूँ।

ग्रन्थावली का द्वितीय खण्ड 30 मई, 2020 तक प्रकाशित होना था। 30 मई 2020 मेरी पूज्य माताश्री का 101वाँ जन्म–दिवस था, परन्तु कारोना की भीषण त्राशदी ने मेरे उस संकल्प को पूरा नहीं होने दिया। मुझे प्रसन्नता है विलम्ब से ही सही परन्तु मैं अपने पिताजी के समस्त काव्य ग्रंथों को एकत्रित करके ग्रन्थावली के रूप में प्रकाशित कर सका हूँ।

(शशिप्रकाश सिंह)

वरिष्ठ अधिवक्ता

एडीशनल सॉलिसिटर जनरल ऑफ इण्डिया

मेघमाला

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

प्रकाशक
श्रीदुलारे लाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला
कार्यालय-लखनऊ

मुद्रक
श्री दुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस,
लखनऊ

समर्पण

स्वर्गीय

परमप्रिय पितामह (बाबा)

वात्सल्य-मूर्ति

श्री ठा० अवधबख्श सिंह जी

की

पुण्यतम, पवित्रतम, मधुरतम

स्मृति

में

मेरे भावोच्छ्वासों

की

'यह मेघमाला'।

उन्हीं को

-चंद्रप्रकाश

आशीर्वाद

'गीत' अच्छे हैं –मनोरम हैं। लेखक का यह पहला साहस है, परंतु उन्हें सफलता हुई है, यह बहुत बड़ी बात है। मेरे लिये कुछ अधिक लिखना उचित नहीं मालूम होता, क्योंकि वह मेरे वंशज हैं।

ईश्वर करें, 'गीतों' को सफलता हो।

टिकरा-हाउस

लखनऊ

११.०८.१९३९

(कुँवर) राजेंद्र सिंह

(भू०पू० मिनिस्टर यू०पी०-सरकार)

प्राक्कथन

यह विश्वव्यापी महायुद्ध का समय है। अगणित स्त्री-पुरुष इसकी ज्वाला में भस्म हो चुके हैं, अभी न-जाने कितने और प्राणियों की बलि चढ़ने जा रही है। हम और हमारा देश भी आज इसी भीषण अग्नि-शिखा की समीपता का अनुभव कर रहे हैं। सबका भविष्य अनिश्चित है; सबका वर्तमान भयानक।

ऐसे समय में कविताओं का यह नया संग्रह प्रकाशित हो रहा है। रचयिता की निष्ठा और प्रकाशक का साहस, दोनों के प्रति हम आदर से शिर झुकाते हैं। यह कहकर इस प्रकाशन को असमीचीन मान लेना कि इस समय कविता की पुस्तक पढ़ने का किसके पास समय है और किसे इच्छा, उस महान् सत्य की ओर से आँखें बंद कर लेना होगा, जिसके अनुसार जहाँ वस्तु-जगत् में आवश्यकता निर्माण की जननी है, वहाँ कला के लोक में वस्तु का अस्तित्व ही उसकी आवश्यकता का कारण बन जाता है। कविता तृषा का कारण भी है, और तृप्ति का साधन भी। काव्य-रचना इसका प्रमाण देती है कि रचयिता कवि है, और उसने एक ऐसी प्रेरणा के कारण काव्य- रचना की है,, जिसके सामने कोई बाधा ठहर नहीं सकती, और उसका काव्य यदि जीवित रहने योग्य है, तो उसे संसार की कोई भी शक्ति मार नहीं सकती। उसका प्रकाश में आ जाना ही उसके लिये अमरता का कारण बन जाता है।

कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह जी की कविता 'Escapist'(वास्तविकता से दूर ले जाने वाली) कही भी जा सकती है और नहीं भी। उनकी कविता आज के वातावरण से घबराकर चिंतना अथवा स्वप्न के शांतिमय वातावरण का काल्पनिक निर्माण नहीं। वह एक आदर्श- वादी की कविता है; उसमें कल्पना असत्य की नहीं, एक ऐसे सच्चे आदर्श की आराधना-सी करती है, जिस पर

कवि की एक मात्र आस्था है। कवि असत्य, अशांति और कुरूपता से खिन्न होकर सत्य, शांति और सौंदर्य के उपासना के लिये प्रेरित नहीं होता; वह सत्य, शांति और सौंदर्य का उपासक होने के कारण असत्य, अशांति और कुरूपता से खिँचता, घबराता है।

सौंदर्य-प्रेम कवि की प्रत्येक रचना से प्रकट होता है, और साथ ही कवि का भाषा के प्रति आदर-भाव। कवि भाषा को केवल भाव प्रकट करने का साधन मात्र ही नहीं मानता, वह भाषा के सौष्ठव को भाव के उन्नतता और पवित्रता का प्रतीक भी मानता है। कवि की भाषा संस्कृत-गर्भित है, उसमें तत्सम शब्दों का प्राचुर्य है, पर यह केवल इसलिये नहीं कि कवि को संस्कृत-गर्भित भाषा लिखने का अभ्यास हो, अथवा ऐसी भाषा लिखना उसका ध्येय हो, वरन् इसलिये कि उसकी कविता-कमलिनी इस सुंदर, सजी हुई, संस्कृत-गर्भित भाषा के सरोवर में सहज ही खिल उठी है। भाषा और भाव, कल्पना और उक्ति एक दूसरे पर आश्रित और एक दूसरे के द्वारा अलंकृत हैं।

कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह की कविता करुण-रस की कविता है। (यहाँ करुण-रस से मेरा अभिप्राय उस व्यापक करुण से है, जिसकी भवभूति ने ''एको रसः करुण एव'' में व्याख्या की थी।) कुँवर साहब लिखते हैं-

''वेदना के वारिनिधि का सार यह जीवन।''

पर वह निराशावादी नहीं हैं। जिसके हृदय में सत्य और सौंदर्य पर इतनी सजीव आस्था हो, वह निराशावदी हो भी कैसे सकता है? वह कहते हैं-

''जीवन का प्रति चरण मरण रे।''

परम जीवन को 'अमा' मानकर वह प्रार्थना करते हैं-

''हरो मेरी अमा! किरण-धन, अब करो मिलन की पूर्णिमा!''

इस 'अंत' में विषाद कहाँ, निराशावादिता कैसी?

कवि अमरत्व के रूप को समझता है, और अमरत्व पर विश्वास करता है। जहाँ एक ओर जीवन की क्षणभंगुरता वह 'सूख जाते सुमन, है क्षयशील यौवन।'' कहकर स्वीकार करता है, वहाँ दूसरी ओर अमरता का परिचय कराते हुए लिखता है-

''प्रलय-वात्या में बुझें नक्षत्र, शशि, पावक, तरंगिण,
निखिल क्षय में साँस-सा सो जाय चिर-चंचल समीरण।
देव, तुम फिर भी रहोगे, और सब तुममें रहेंगे।
तुम रहोगे, हम रहेंगे।''

एक ही सुंदर पंक्ति में कवि आशा की अक्षयता और अशक्तता का साथ ही परिचय कराता है-

''जागती विधुरा धरा खद्योत के दीपक जलाए।''

जीवन में अनंत का आभास, सीमा में असीम की छाया-कवि की आदर्शवादिता और आशावादिता के ये आधार-स्तंभ हैं।

कवि मानव जीवन को ''अविनश्वर का नश्वर विहार'' कहकर आहत ही नहीं करता, चिरंतन ब्रह्म और मानव की एकता का भी सुंदर रूप अंकित करता है। कवि की कामना है-

''रहे प्रणय-अभिनय में लय नित जीवन, जन्म, मरण।''

कवि 'यहाँ लोहित तिमिर केवल' पाकर उद्विग्न अवश्य होता है पर आश्रय के अन्वेषण में असफल होकर भी उद्योग करते रहने का मंत्र सिखाता है। उसका आदेश है-

''खोज अब भी नहीं पाए यदि अभयप्रद चरण।''

इस अस्थिर समय में शांति का यह आवाहन किसे आकृष्ट न करेगा?

“सोओ प्रिय, सोए विश्व स्तब्ध,

हो तमोमयी यह निशा अमर!

निष्पलक चंचला के क्षण में

मैं पिऊँ रूप लोचन भर – भर!!”

कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह जी की कविता सुंदर और सच्ची है। उसमें लाक्षणिकता का अवलंबन नहीं; उसमें एक आदर्शवादी और आस्थावान् कवि-हृदय का सजीव कंपन है। हिंदी-काव्य-साहित्य में ‘मेघमाला’ का समुचित आदर होगा, यह मेरा विश्वास है।

लखनऊ **बालकृष्ण राव**

२८ दिसंबर १९४२

(९)

शारद जय, शारद जय!

तमहर मंगल - पद - तल,
विकसित सित विश्व - कमल,
भावोदधि - ऊर्मि - तरल,

नंदित जग-जीवन-जय!

ज्योत्स्नांशुक शुचि सभंग,
शोभित नव अंग - संग,
वीणा - वर - स्वर - तरंग,

क्षालित तन-मन निर्भय!

चंद्रानन चारु - हास,
उर - उर निर्जर प्रकाश,
व्योम छत्र, सोल्लास

मुखर हंस-'मातः जय!

•••

(२)

मधुर शोभा - भार री!
दृगों के तम - द्वार की
तुम ज्योति, बंदनवार री!
ज्ञान तुम निःशेष, सब भ्रम,
प्रभा-तल्प सुवेश, जग तम,
सकल मम श्रम -साधना-
आराधना की पार री!
कुसुम- मुख मकरंद नव-नव,
रूप रूपसि, निरूपमित तव,
पान कर कवि - मन-मधुप
लवलीन सुख-शृंगार री!
लख खिला कल-कल्प-सुर-तरु,
सिंचा सौरभ - जल द्रवित मरु,
जग बजे उर के सजे अनुराग-
सुर के तार री!

•••

(३)

नैश वन-जीवन की मधु-प्रात!
आई तम के उर, शिंजित,
खग - रव नूपुर अवदात!
छवि की सरसी के शत शतदल,
चुंबित-मुख नव ज्योति चपल पल,
सर के शर से, भेद अगम जल,
खिले सकल नवजात!
तारक हार स्नेहमय मुख-शशि,
गगन-सिंधु से हुई पार निशि,
नए प्राण से हँसतीं दिशि-दिशि,
उड़ा सुअंचल पात!

●●●

(४)

करुण कितना प्रणय!
सकल सुख - शृंगार का
कुछ आँसुओं में लय!
कामनाओं की चिता बन,
जली मैं, अनुदिन निपीड़न,
किन कठिन हाथों हुआ सखि,
हृदय का यह क्रय!
सतत छलनामयि शुभाशा,
वेदना ही शेष भाषा,
दग्ध - अंतस् रह गया,
कुछ सुकृति-स्मृति-संचय!
ताप से सब कुछ गया गल,
शून्य ही अवशेष केवल,
रोकता रे, क्यों खड़ा पथ,
निठुर नील निलय!

•••

(५)

तुम कौन स्नेह-दृग खोल रहीं;
स्वप्नों में मृदु-मृदु डोल रहीं!
उर की वीणा की नव-निःसृति,
आकुल-कर व्याकुलतर झंकृति,
प्राणों को पावन गायन की,
गति में तुम अविरत तोल रहीं!
मेरे नव - जीवन के नभ पर,
तुम यौवन की ज्योत्स्ना शुचितर,
तम के उर की प्रिय अंकुर- सी,
शशि, चिर सुख मुख-मधु घोल रहीं!

•••

(६)

अक्षय सुहाग-शृंगार री!
अविरत अप्रतिहत अग-जग का
तुम पर प्यार अपार री!
काया कनक ज्योति कल माया,
प्रणय कुंज तल शीतल छाया,
प्रिय-विभ्रम-विलास अलसाया-
अपना सुख-संसार री!
वह सरोज-मुख, वे अलि-अलकें,
स्वर्ण-स्वप्न विकसित प्रिय पलकें,
वे सौंदर्य-सुरा की छलकें,
सब तुम पर बलिहार री!
विपुल वियोग-विधुर-जन-क्रंदन,
आर्त हृदय के करुण अश्रु-कण,
आर्द्र नहीं करते तेरा मन
यह निष्ठुर व्यापार री!

•••

(७)

शुचि-स्मित वर्णभरण!

थर-थर-थर नीलांबर,
बहा पवन परिमल भर,
प्रतिहत तम के स्तर-स्तर,

जागी किरणस्तरण!

व्यंजित रे, नव-नव स्तव,
उत्थित खग-कुल-कलरव,
खोले दल मुद्रित भव,

उतरो शिंजित-चरण!

•••

(८)

दृगों में रूप अरूप खिला!
　　　　　　　　मरु-उर द्रवित, सुधा-रस-सिंचित,
　　　　　　　　बही स्नेह - सलिला!
भर चेतन पुलकित संसृति-सृति,
अमर तत्व बन गई स्वप्न-कृति,
मुखरित प्राणों में गायन बन,
　　　　　　　　तप -श्रम- सिद्धि- इला!
नव जीवन का अंध तिमिर हर,
आई स्वर्ण-किरण आशा भर,
चिर दर्शन बन गया अचिर,
　　　　　　　　वह मौन मिलन पहिला!

●●●

(६)

व्यर्थ यह अभिमान!
शरद् - चन्द्रानन न,
प्रिय-मुख का उचित उपमान!

हैं मनोरंजन न खंजन,
और, नव राजीव के वन,
बज रहा उर में मधुर,
उन नूपुरों का ध्यान।

कुंद की दंतावली, मिल,
चाँदनी जिसमें रही खिल,
प्रेयसी के हास के अलि,
हीनतम व्याख्यान!

देख दिव के सुमन तारक,
हारते उर - हार पर थक,
मग्न प्रिय - छवि में सतत,
ऋतु, वर्ष, युग का ज्ञान!

•••

(१०)

रहोगी नयनों में, मन में;
सुंदरी, प्रति जीवन-क्षण में!
तुम्हारी मुख-सुषमा अवदात,
रँगेगी मेरे सायं - प्रात,
मधुरतर चरणों के मंजीर,
बजेंगे उर के कंपन में।
तुम्हारी अलकाकुल वातास,
बनाऊँगा प्राणों की साँस,
हासमय अंगों का मधुमास,
खिलेगा कानन-कानन में।

•••

(११)

पंक उर अंक पर पद्म पद कौन तुम?
अंध-तम हर प्रखर,
तपन आलोक-कर,
रँग रहे जीवनाशा-
मुकुल मौन तुम!
ज्योति - चुंबित तुले,
प्रणय- रस में धुले,
प्राण खुल पूछते,
प्राणधन, कौन तुम?

•••

(१२)

बनी अभिरामा!
ज्योति की प्रतिमा प्रतनु,
तरुणी सहज श्यामा।
सांध्य अंचल में अचंचल,
नयन-युग तारक रहे जल,
सघन घन-केशा सजल,
छवि की क्षमा क्षामा।
वासना के विश्व की धृति,
पुण्यमय लावण्य की कृति,
प्राणप्रिय के प्रणय की,
सृति-सरित वह वामा।

●●●

(१३)

पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्न-संगिनी!
वंकिम चितवन रसाल,
नमित नयन, गति मराल,
कूजित कल नूपुर नित,
मुखर मंजु शिंजिनी।
पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्न-संगिनी!
शशि-मुख, रति-रुचिर वेश,
ज्योत्स्ना - हासिनि, सुदेश,
मेचक कच, अंग विकच,
अमल सुख -तरंगिणी।
पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्न-संगिनी!

•••

(१४)

किसी के नयन ये!
झरे फिर झरे,
दाह-दुख के अयन ये!
किस विरह की कठिन चोट पाली,
वेदना जो न जाती सम्हाली,
उमड़ता विकल मन, घिरे घन सघन ये?
किसी के नयन ये!
मेलनवय धरा साज धानी सँवारे,
लता-कुंज, तरु-पुंज मृदु गुंज धारे-
व्यथित कौन, किसके निठुर प्राणधन ये?
किसी के नयन ये!

•••

(१५)

अश्रुमय प्रतिक्षण!
वेदना के वारिनिधि का
सार यह जीवन!
दीन स्नेह-विहीन,
हार और प्रहार सह
होता रहा चिर-क्षीण;
ताप घन, अभिशाप असहन
मिले चरण-चरण।
गत सकल आशा,
शेष बस उर में व्यथा की दंशमय भाषा-
व्यर्थ कब से कह रहा मैं
''देव, शरण-शरण!''

•••

(१६)

हरो मेरी अमा!
हँसो जीवन-गगन के
सुखद चंद्रमा!
मैं विरह में तिमिर - लीन अहरह रहा,
दूर तुम दूर, सब व्यर्थ यौवन बहा,
अब न यह निठुर उर-ताप जाता सहा,
खुलो, प्रिय, खुलो, दुख-दोष कर दो क्षमा!
स्वप्न में ज्योति की किरण शुचि जो मिली,
पा उसे हृदय की कुमुद- कलिका खिली,
नित्य नव तव प्रणय के अमृत से धुली-
किरण-धन अब करो मिलन की पूर्णिमा!

●●●

(१७)

निरुपमे, शुचि सुमन- वासिन!
रेणु - तन, मधु - गंध - जीवन,
वेणु - स्वर - सिंचित सरल मन,
ह्री - वरण, श्री - आभरण,
आओ प्रतनु, दृग-उर-विलासिनि!
पवन - रथ से उतर धीरे,
श्रांति - पंत शांति सी हो,
कहो जीवन की, मरण की,
विस्मरण - गाथा सुभाषिनि!

•••

(१८)

तुम रहोगे, हम रहेंगे।
मरण - जीवन की, पतन - उत्थान की क्रीड़ा सहेंगे।
अंध-तम, पथ - लीन, यंत्रित भ्रांत जीवन लक्ष्य-हारा,
दूर- है पर दृष्टि में आलोक मंगलमय तुम्हारा।
ध्वंस हो, विश्वास का संबल सबल, निर्भय बहेंगे।
तुम रहोगे, हम रहेंगे।
प्रलय - वात्या में बुझें नक्षत्र, शशि, पावक, तरणि गण,
निखिल क्षय में साँस-सा सो जाय चिर-चंचल समीकरण।
देव, तुम फिर भी रहोगे, और सब तुममें रहेंगे!
तुम रहोगे, हम रहेंगे।

•••

(१६)

निशागम अलि, दिशाएँ नलिन-सी मलिन!
मौन खग-कुल-कला लाप, क्षिति तंद्रिता,
मूँदती चपल लोचन तिमिर - आवृता,
जग गई नैशगंधा, कुमुद सस्मिता,
चाहती मुक्त परिरंभ शशि का मसृण।
खुल रही नील नभ - वृंत पर तारिका,
ज्योति की मंद मधु -सुरभि - संचारिका,
दृगों में स्वप्नमय स्वर्ण - नीहारिका,
घूमती, भावना - लीन मन के पुलिन।

•••

(२०)

यामिनी में दामिनी को अंक से अपने लगाए-
देख री, घनश्याम छाए!
उच्छ्वसित, हर्षित प्रणय की सहज रस-धारा रही झर,
मुखर प्रति उर में निरंतर मौन के मधुमय अमृत स्वर,
हास से आकाश के निज वास को ज्योतित बनाए।
देख री, घनश्याम छाए!
ध्वनित जो सरि में, सरों में, निर्झरों में मिलन-गायन,
चातकों के चकित प्राणों के लिये असहन गया बन,
कह उठी-"प्रिय-प्रिय कहाँ, किस देश में अभिराम छाए।"
देख री, घनश्याम छाए!
मैं इधर विकला विरह के असि-निशित निज दुख-शयन पर,
हृदय में प्रिय-स्मृति, दृगों में आँसुओं के सजल जलधर,
जागती विधुरा धरा खद्योत के दीपक जलाए।
देख री, घनश्याम छाए!

•••

(२१)

रे खोज - खोज सब हारा।
वह मिला न श्रेय - सहारा।
लखते ही मैं किस ओर बहा,
भ्रम का न कहीं कुछ छोर रहा,
किसने रजनी को भोर कहा,
यह व्यर्थ हुआ श्रम सारा।
समझा रे, तू ही शांति -शयन,
निज छोड़ रहा दुख-शोक पहन,
जग यह तेरा ही मोह - नयन,
तू बनता अपनी ही कारा।
पाया तम - भेद प्रकाश वहाँ,
तकता पथ खिन्न निराश जहाँ,
करता फिर एष विशेष कहाँ,
खो दी जब अपनी दृग -तारा।

•••

(२२)

जीवन का प्रति चरण मरण रे!
कुसुम-दोल पर लोल ओस -कण,
डोल रहे जग के सुख के क्षण,
वर्ण- भरण रश्मि से उतर द्रुत,
बहा विषम वातास-हरण रे!
वह विभोर कैशोर हर्ष हर,
गया, घिरे तारुण्य-तपन पर,
जीर्ण जरा के घने सांध्य घन,
मृत्यु हँस रही रक्त-किरण रे!
महाकाल प्लावन में अहरह-
शत-शत सूर्य, चंद्र, तारा, ग्रह-
बुदबुद से उठते, मिटते थे,
विकल कह रहे, शरण-शरण रे!

•••

(२३)

बैठा हूँ वेदना छिपाए!
उर में अनल, दृगों में जल है,
आशा की छलना अविरल है,
जीवन प्रतिपल विषम गरल है,
पीकर जिसे गरल जल जाए!
मेरे तम -जग के ध्रुव - तारा,
सुनो, कह रहा क्या पथ - हारा,
मुझको मुक्ति-युक्ति ही कारा,
हेरो, हार विजय बन जाए!

•••

(२४)

पार कर पार रे!
ऊर्ध्व पथ चढ़ रही, बढ़ रही धार रे!
खुले दल कमल पर नवल प्रातः किरण,
सोहती, ध्वनित संगीत सुन मधुर स्वन,
पवन अनुकूल द्रुत चरण कर संतरण,
हार उर की, न उस पार नीहार रे!
रोध की, शोध निज बोध, मिथ्या कथा,
सर्वथा दूर होंगी, यहाँ जो व्यथा,
इष्ट अति मिष्ट होता नहीं अन्यथा,
सिद्धि लह जाय, बह जाय संसार रे!

•••

(२५)

आकर्षणमय विश्व तुम्हारा!
मज्जित इस छवि के समुद्र में-
मिलता नहीं किनारा।
जलद-वेश्म सुरधनु - आरंजित,
ऊपर नील व्योम शशि-शोभित,
क्रीड़ित सतत अनंत- अंक में-
किरण - कांत कल तारा।
ऊर्मिल जलधि-केश उर्वी - उर,
लहराता तम - वास असिततर,
स्वप्न विभोर निशीथ - शयन पर,
वह सरि - धारा - हारा।
मंद-मरंद-मूर्च्छित कलि के दृग,
बहता मलय मंद गंध- स्रग,
ए अरूप, चिर - अभिनव तेरी,
रूपमयी यह कारा।

●●●

(२६)

पंथ में उनके दृगों के पाँवड़े बैठी बिछाए!
प्राणधन अब तक न आए!
वेदना की अग्नि से उर-पिंड तप-तप विकल अविकल,
बह गया नवनीत-सा वह आँसुओं में पिघल गल-गल,
शून्य अंतस में सघन घन-से विपुल उच्छ्‌वास छाए!
प्राणधन अब तक न आए!
कर चुकी अर्पित जिन्हें सर्वस्व, जीवन, जन्म, यौवन,
सालती जिनकी प्रतीक्षा आज क्षण-क्षण मरण बन-बन,
उन शरद राकेश को बैठा अमा का तम छिपाए।
सजनि, प्रिय अब तक न आए!

•••

(२७)

तम के उर विकसित स्मित-रेखा,
अंकित नव इंदु- किरण - लेखा,
करती अशेष सुख-स्वप्न-चयन,
खोलती उषा-सी निशा-नयन,
घन जीवन के वन में निर्जन
चित्रित सी पावन मधु - लेखा।
अस्फुट, अशब्द, अश्रुत, अस्वर,
अधरों की रस - रागिनी मुखर,
प्राणों में अमर रही भर - भर-
पंकज का तरल तुहिन - वेषा।

•••

(२८)

खुल गए जड़ तम के दृग बंद,
जगत के उर उतरी निष्पंद।
प्रभा के अंग किरण परिधान,
तरुण- मुख अरुण, नयन नव ज्ञान,
अचल पल जागृति के, प्रिय -ध्यान,
खुल रही जलजों में स्मिति मंद।
हृदय में आ अशब्द पद -चाप,
सतत शत शब्दों में आलाप,
खुले सुमनों से सुख से काँप,
बहे रस के सौरभ के छंद।

•••

(२९)

रुक-रुक जाता फिर-फिर पुकार-
तू मुक्त, भुक्ति की अंध-शुक्ति,
बाँधती मुग्ध, चलती न युक्ति,
विक्षुब्ध, सतत अनुरक्ति शक्ति,
खोलेगी जागृति स्वर्ण - द्वार।
संपुटित जलज-जड़ विभा- भौन,
खोया अलि बंदी लुब्ध मौन,
लख, देता उसको मुक्ति कौन,
फिर विजय - हार, क्यों बैठ हार।

•••

(३०)

आओ मानसि, मन मौन-मना!
कच-जाल विकल लहरे-लहरे,
चरणों तक आकर हों ठहरे,
विधु पर घन श्याम घिरे गहरे,
ऊषा पर निशा- वितान तना!
नयनों में ज्योति अमंद लिए,
अरुणोदय की छवि मंद किए,
उतरो, फिर मैं कह उठूँ प्रिये,
हँस, हर लो उर का तिमिर घना!

●●●

(३१)

यह तुम्हारा हास!
शून्य रे, निर्मित मनोरम-
ज्योति - ज्योत्स्नाकाश!
नयन- इंगित पर तरंगित,
संसरण जीवन-मरण नित,
मंद - गंध - स्पंद -सृत,
मृदु-मृदु समीरण लास।
सूर्य शत, शत-शत महत ग्रह,
भ्रांत - से आक्रांत अहरह,
शांत मानव, प्राप्त वह,
चिर शरण, स्थिर आवास।

●●●

(३२)

चल रहे सब मौन।
कुछ न कह पाते,
कहाँ जाते, वहाँ वह कौन?

छंद नव आनन्द अभिनव,
कौन यह आह्वान नीरव,
श्रुत सतत, द्रुत बह रहे,
सब मौन - निष्ठुर मौन!

ज्योति में फिर तिमिर में स्थिर,
ज्ञान में अज्ञान में चिर,
प्रश्न शाश्वत कौन, पर,
उत्तर निरंतर मौन।

•••

(३३)

अर्थ ही क्या?

दृष्टि की प्रिय तुष्टि।
हे यह व्यर्थ ही क्या?

सृष्टि-पल-भर मिलन की अति-क्षीण कारा-
छिन्न होती मृत्यु ने ज्यों ही निहारा,
तिमिर में बुझतीं दृगों की दीन तारा,
लीन जीवन, जन्म, जन-जन,
अर्थ ही क्या?

आह भरता है पवन असहाय वन-वन,
भीम उर में उदधि के भी व्याप्त कंपन,
सूख जाते सुमन, है क्षयशील यौवन,
शोकमय सब ओक।
इसका अर्थ ही क्या?

•••

(३४)

अस्त रे, जीवन!
धीर पद आता मरण,
असहाय तू न शरण!

क्षीण, मलिन प्रकाश निष्फल,
यहाँ लोहित तिमिर केवल,
डूबते युग, कल्प, काल,
अबाध यह प्लावन!

देख प्रतिपल प्रलय निश्चय,
लीन छायाएँ, सतत क्षय,
खोज अब भी, नहीं पाए,
यदि अभयप्रद चरण!

•••

(३५)

खोज न व्यर्थ बसेरा!
पंछी, इस वन में भटका तू,
बिसर गया घर तेरा!
ये तरु-वीरुध शूल- मूल सब,
यहाँ मिले फल-फूल किसे कब,
उड़ चल, निठुर नियति-वधिका ने,
पग-पग जाल बिखेरा!
आया तू भ्रममय तम के मग,
पाया विषम- कर्म- संकुल जग,
श्रांत पंख, अब जीवन गति-श्लथ,
निकट काल का फेरा!

•••

(३६)

रहा मैं अनिमेष!

निरुपमे, शोभा तुम्हारी-
नव निमेष-निमेष!
चंद्र-रुचि आनन सुख-स्मित,
मधुर अमृताधर दशन-धृत,
पल्लवित तनु-तन अनावृत,
घने खुलते केश!
चपल नयनों में सुखाकर,
हँस रहा मन्मथ सुमन-शर,
स्पर्श - रस दोलित हृदय,
प्रियतर तरुण उन्मेष!

●●●

(३७)

पावस निशीथ, घन-संकुल नभ,
रस-मुकुल बरसती जल-धारा।
कुछ खोज रही दामिनी विकल,
तुम सोई, मुद्रित दृग-तारा।
बिखरी कपोल पर कुटिल अलक,
कुछ रहस-भरी मृदु पवन-चपल।
निंद्रित इस मुख-छवि में विलीन,
कितने व्रीड़ा-पीड़ा सुख - छल।

X X X X X X X X X X X X X X X X X X X

सोओ प्रिय, सोए विश्व स्तब्ध,
हो तमोमयी यह निशा अमर!
निष्पलक चंचला के क्षण में,
मैं पिऊँ रूप लोचन भर-भर!

●●●

(३८)

आओ, पिएँ प्रेम का प्याला!
प्रिये सघन आषाढ़-गगन में,
उमड़ी प्रथम श्याम-घन-माला!
किसी चपल की अलखित चितवन,
बेच गई अग का जग का मन,
खोज रहा समीर आलिंगन,
चातक तृप्ति-विधुर मतवाला!
अगणित कंठों के आकुल स्वर,
पुंजीकृत जीवन के पथ पर,
कहते- 'उतरो, झरो वारिधर,
शीतल करो हृदय की ज्वाला!
यह अभिमान-मान, यह कुंठन,
छोड़ो आज लाज- अवगुंठन,
पीने दो, पीने दो इस क्षण-
विसमृतिमयी अधर की हाला!

•••

(३६)

अलि, यही बेला!
अचिर यौवन, मत करो,
इस भाँति अवहेला!
माननी, अब सजो तन- मन,
बजो प्रिय-पथ पर मधुर-स्वन,
हठ तजो, नीरस करो मत,
सरस यह बेला!
जायगी- दिन चार पावस,
रहेगी जीवन - अमा बस,
उठो प्रियतम से मिलो-
अति निठुर अवहेला!

•••

(४०)

आज स्वर भर सिहर पिक ने कुंज-वन में गान गाया!
सजनि, यह मधु-मास आया!
हँस रही कलिका विकल अलि का हुआ उर-देश कंपित,
बह रहा परिमल - प्रपूरित पवन मंथर कामनाश्रित,
कुसुम, किसलय, द्रुम, लता, वन में नवीन विकास आया!
प्रणय का मधु-मास आया!
देख, सरसीरुह- सरों में नील तारक- गगन बिंबित,
उतर आई कौमुदी लघु लहरियों पर चपल- चुंबित,
झर रहे केशर अरुण, हँस-हँस तरुण ऋतुराज आया!
सजनि, यह मधु-मास आया!

•••

(४१)

बही नई बयार!
　　　　　　　　　　　　कह रही आया वसंत,
　　　　　　　　　　　　वसंत फिर इस बार!
तरुण प्राणों में पुलक नव,
प्रणय के, फैला पिकी-रव,
ग्राम- उपवन में, जहाँ,
　　　　　　　　　　　　घन मंजरित सहकार!
शस्य - बालों में रहे पल,
बीज, सर सरसीरुहोज्ज्वल,
कलित किसलय, खिल पलाश,
　　　　　　　　　　　　जला - जला पतझार!

●●●

(४२)

छीनते हो क्षण-क्षण जीवन!
कौन तुम आते मृत्यु चरण?

वश से सुख के दिवस अजान,
वे तन, मन, यौवन, प्राण,

सब, विफल सकल अनुमान,
शेष केवल सुविध का दंशन!

खेल यह जड़-जग जीव-निकाय,
दृग-पथ पर असहाय,

रहे दीर्ण-छिन्न हतकाय,
फैलता दिशि-दिश प्रलय-ज्वलन!

•••

(४३)

कब तक होगा सहना?
निराधार इस काल-स्त्रोत में
क्षुद्र पोत-सा बहना!
पाया नहीं विराम यहाँ रे,
बहते-ही-बहते हम हारे,
दूर सतत पादाश्रित जिनके
स्थित होकर हो रहना!
क्या पहुँची न पुकार हमारी,
खोई शून्य मध्य पथ-हारी,
पर, अशून्य वह कौन धन्य
निज ध्येय जहाँ ध्रुव लहना?

•••

(४४)

अस्त रजनी!

उदित प्रिय उषा,

आलोक अवनी!

खिले कल कमल-कुल,
खुले दिशि के मुकुल,
मुखर खग, चपल,

नव भाव-सरणी!

विकल शेफालिका,
गूँथ वर-मालिका,
मसृणतर किरण-

के तार सजनी!

उठो खोलो नयन,
मुक्त छवि के अयन,
खे चलें, खे चलें,

आज तरणी!

•••

(४५)

आज विश्व के शिशिर - शून्य-
पट पर यह काल - चितेरा
प्रिये, स्वर्ण-लिपि में लिखता है,
फिर वसंत का फेरा!
विकस रही मंजरी, आम्र-
कानन में गाती कोयल,
विविध कामनाओं में मनसिज,
जगा रहा उर के दल!
कितनी मादक फुल्ल गुलाबों के-
दल की रंगीनी,
उलझी पड़ती हैं कलियों से,
पुरवाई रस - भीनी!

X X X X X X X X X X X X X X

यही समय है, यही समय है,
सार्थक कर लो यौवन,
चिर अतृप्ति, फिर चिर अतृप्ति की,
शाश्ति सहेगा जीवन!

•••

(४६)

अपने मिलनोत्सव में अजान,
प्रियतमे, किधर हेमंत गया!
रजनियाँ शिशिर की स्वप्न हुईं,
आया फिर आज वसंत नया!
खुलतीं व्याकुल उच्छ्वासों में,
कलियाँ, कोकिल की काकलियाँ,
मंजरित आम्र-वन में अविरल-
चलतीं भ्रमरों की रँगरलियाँ!
सौरभित पवन के झोकों में,
अज्ञात किसी की छवि बहती,
अरुणिमा तरुण-उर की गहरी,
मनसिज की विजय कथा कहती!

X X X X X X X X X X X X X X X X

बाँध लो नयन, मन, यौवन में,
मधुमय वसंत की ये घड़ियाँ,
झड़ जायँ न बेसुध, जीवन के-
सपनों की कोमल पंखुड़ियाँ!

•••

(४७)

गए दिवस पार कर दिवाकर,
तमिस्र–आरक्त रे! दिशा–दल,
उड़ी प्रभा की परी गगन–पथ,
रहा मलिन, निःस्व – उत्पल!

अचेत वह चेतना गई बह,
प्रसुप्ति से प्रीत कर्म–जीवन,
अशब्द उद्बोध दे रही जल,
प्रदीप की क्षीण दीप्ति निश्चल!

इसी समय दूरतर क्षितिज पर,
उदित, खड़ी खोल नैश–कारा,
खुले अलक, ज्योति के अपल दृग,
सहास शशि, हो तुम्हीं सहारा!

•••

(४८)

आए खंजन री!
शरद - सुंदरी की चितवन - से,
मंजुल रंजन री!
ये सजीव राजीव विकल - दल,
सुषमा की परियों से चंचल,
भरते उर - उर में नूपुर - कल-
सुख-स्वर शिंजन री!
श्यामल- शुभ्र सपक्ष खंड-घन,
शशि के शिशु, निशि के तारक-धन,
मेरे जीवन के पावन क्षण,
प्राप्त निरंजन री!

•••

(४९)

देखो, प्रिय ! गृह के आँगन में
फैली शारद ज्योत्स्ना अमंद!
खुल रही रस - विकल शेफाली,
फूटते सुरभि के विपुल छंद!
आनंदमयी यह निशा अचिर,
सोकर खोओ मत इसे प्राण!
आओ इस कुसुमित उपवन में,
गाएँ हम अमरण मिलन-गान!

•••

(५०)

हेमंत हँसा!
पल्लव-पल्लव में लसा पुलक,
सिहरी री, शस्यांचला रसा!
बिखरा आतप का रुचिर हेम,
निखरा तन, ऊर्जित तरुण प्रेम,
अलकों के कोमल बंधन में,
शुचि सद्य-स्मित सित कुंद लसा!
नीहार-अंध कर गगन पार,
आया प्रिय, डोल उठी बयार,
आनंद -तरंगित अंग - अंग,
वह आलिंगन में गया कसा!

•••

(५१)

रह-रह कह जाती!
'प्रिय-पथ पर अहरह बह-बह,
अंत मैं न पाती!
'लिए मधु-सुरभि, हिमकण,
पूछ लता - तरु अगणन,
खोज दिशाएँ निर्धन,
लौट विफल आती।
'वन - वन में निःसहाय,
करती फिर हाय-हाय,
भ्रांत, श्रांत, क्लांत - काय,
दह-दह दुख पाती।'
सार्थक श्रम, सहो पवन,
विरह तुम्हारा अमरण,
अगति आह, यह जीवन,
मैं भी गति पाती!

●●●

(५२)

कहो, किस देश से आई,
चपल यह आज पुरवाई?
सुशोभित शीश पर नक्षत्र-शशि-धर छत्र-सा अंबर,
उतरती, तैरती नभ, चाँदनी के हास- पंखों पर,
सुवासित रेणुओ ं से वासिता यह अप्सरी आई!
कहो..................................?
अलक्षित इंगितों पर काँपती यह यूथिका थर-थर,
मिला संदेश प्रिय के एष में आकुल चला मधुकर,
पुलिन के मधु-अधर चुप चूम तटिनी लोल लहराई!
कहो..................................?
पिकी की वेदना का तीर रह- रह चीरता अंतर,
बिंधे स्वप्नस्थ - से नीरव खड़े पथ, पार्श्व, पुर, प्रांतर,
धरा को प्राणधन निज श्याम घन की याद हो आई।
कहो..................................?

•••

(५३)

बरसो बरसो पावस!
घिरे तिमिर, घिरे घिरे बादल,
मुझे सुखद चपला का कौशल,
भीता कुछ रहे कंठ - लग्न,
प्रिया स्पर्श विवश!
सींच विरह और जलाया तन,
गत वह, अब मिलन–मधुर जीवन,
करो अधिक मधुर हँसो-
कण–कण में रस–रस!

•••

(५४)

फिर आए री, बादल!
चपला के संग नए,
घेर गगन ये उनए,
रस के निर्झर झरते,
मंद मंदतर अविरल!
सुख - स्पर्श अंधकार,
फैला दिशि–दिशि अपार,
झिलता उर का न भार,
प्राण पवन–से चंचल!

•••

(५५)

रे, वक्र शक्र-धनु भृकुटि तान,
यह कौन बरसता वारि- बाण,
उर्वी के उर पर बार- बार,
होता रह- रह वज्र -प्रहार,
धर्षित मरु, सर, सागर अपार,
माँगते सकल भय-विकल त्राण!
सन-सन-सन-स्वन बहता समीर,
प्रिय-तरु-उर पर लतिका अधीर,
प्लावित सरिता के युगल तीर,
पर नर्तित मुक्त मयूर - प्राण।
यह किसका पौरुष उठा जाग,
छेड़ा किसने प्लुत सिंधु - राग,
शत-शत सरोष तम-काल-नाग-
दंशित उडु-शशि-रवि गत-ज्ञान।

•••

(५६)

विहरी वन-वन में,
वर्ण-विविध जीवन-निधि,
उतरी वह घन में।
कोमल तन मलय- वास,
दामिनी - विलास हास,
तिमिर तरुण केश-पाश,
खुले, खड़ी मन में।
लहरे सरि, सर, सागर,
कुसुम, लता, द्रुम थर-थर,
छवि के सम्मोहन भर,
कंपन कण-कण में।
पहन मंजु मुकुल - माल,
नाचतीं कदंब - डाल,
गा रही पिकी रसाल,
ताल गति पवन में।

●●●

(५७)

पावस समीर बहती हर- हर!
डोले तरु डोलीं लता लोल-
उर के सब मधुर रहस्य खोल,
काँपती निभृत निज शयनों पर,
कामिनियाँ कृश-तन थर-थर-थर!
घिरते घन, तिरते नील गगन,
चपला से आलिंगित क्षण-क्षण रो,
आमों की पीली डाली पर,
गाती कुछ कोकिल कोमल- स्वर!
शीतल रे, शीतल सुख-स्पर्श,
चंचल शस्यांचल, विपुल हर्ष,
भरती, जो झरती मधु-सीकर,
उतरी वह कौन परी सुन्दर?

•••

(५८)

लुट रहा हास,
रे पके सुनहले खेतों में,
लुट रहा हास!
नीली ओढ़नी सम्हाल, सुघर,
गाँव की वधू कुछ हलके कर,
काटती खेत, हँसिया सर-सर,
चुरियाँ रन-रन, तिरती मिठास!
खलिहान बसे, गार पर गार,
गेरे, घेरे सब बाग - हार,
भुरहरी रात, पछुवा बयार,
बहती महुए की लिए बास!

•••

(५९)

मुझे निज वेदना का बल है!
बिछाईं पंथ में मैंने तुम्हारे दीन जो आँखें,
वहीं वे, आँसुओं में बह गईं सब क्षीण अभिलाषें,
विकल मन-मीन को जल-हीन जग में कौन संबल है!
तिमिर में घिर, शिशिर की यामिनी में काँपती थर-थर,
लिए स्मृति-दीप बढ़ती जा रही रे लीन, सृति दुष्कर,
मिलन के प्रात तक झिल जाय, जीवन हाय! गत बल है!

•••

(६०)

अब तो करो पार!
फिर-फिर विकल क्लांत तुमको पुकारा,
विश्वास था देव, दोगे सहारा,
बहता थका, दूर अब भी किनारा,
संबल विगत, और दुस्तर तिमिर-धार!
वे पांथ, जो साथ में थे हमारे,
संघात के वात में भ्रांत हारे,
खोते गये शून्य में, बंद तारे,
मैं ही रहा आज दुर्वह व्यथा-भार!

•••

(६१)

खोजूँ किसे और ?
मातः, चरण में शरण दो,
वहीं ठौर!
बहते तमोमूढ़ मेरे दिवा - रात,
दिग्भ्रांत मैं दूर का पांथ श्लथ-गात,
कंटक मिले, शत झिले घोर आघात,
अब भी कृपा का छिपाया कहाँ भोर?
उतरो हृदय पद्‌म पर तुम किरण-कांत,
ज्योतिः सरण प्रति चरण छिन्न हो ध्वांत,
मेरे ज्वलित शाप- संताप हों शांत,
कोई नहीं और, खोजूँ कहाँ ठौर?

•••

(६२)

रे, खोया मैं जीवन - वन में!
उमड़ी दिशि-दिशि घन-तिमिर-धार,
डूबे धरणी, नभ निराधार,
भ्रम-श्रम-क्लम-दुख-कंटक अपार,
अवसाद गहनतम कण-कण में।
चिर-ज्योतिर्मय आत्मा प्रबुद्ध,
भूला मैं वह चेतना शुद्ध,
जन्म में मरण में रह, निरुद्ध,
सहता अब मोह लीन तन में।

•••

(६३)

करो मत यों छवि का उपहास!
घूँघट के घन में न दुरेगा,
मुख-शशि-विफल प्रयास!
फूट पड़ा है अंग-अंग में यौवन का मधु-मास,
व्यर्थ छिपाओगी वसनों में यह अनंग का लास,
मनोरम तनु-तन ज्योत्स्ना-वास!
करो मत यों छवि का उपहास!
विकस रहे जो प्रणय-सरोवर के अनिंद्य अरविंद,
उन्हें विकल-से खोज रहे हैं प्रिय के नयन-मिलिंद,
करो कुछ तो अनुराग प्रकाश!
दुसह प्रेयसि, छवि का उपहास!

•••

(६४)

चलना रे, कितना अभी और?
तम-संकुल इस पथ का न पार,
चिर- मौन कौन तुम कर्णधार,
ठहरो क्षण- भर, हम गए हार,
क्या इस रजनी का नहीं भोर?
सूने दिगंत पर आस - पास,
बिखरे ये सुख-दुख, शोक-हास,
दुर्वह अब जीवन श्वास-श्वास,
है अंत- हीनता का न छोर?

●●●

(६५)

तुम्हें बाँध बाहों में!
डुबा दिया मैंने बरसों की,
विरह - बढ़ी आहों में!
शत-शत अश्रु-तरल भर चुंबन,
दे अपना चिर-प्रणय-विकल मन,
सुमन, तुम्हें पाया जीवन की,
कंटकमय राहों में!
बीता अब रीता अतीत वह,
सुन प्रिय, तेरा मिलन-गीत यह,
सोए दुख के दिवस, जगेंगी-
रातें स्थिर चाहों में!

●●●

(६६)

आते जो , वे मिटते जाते,
पद-चिन्ह भी नहीं रह पाते!
जीवन यौवन की प्रबल धार,
सूखती अचानक बार- बार,
है काल-व्याल चिर-दुर्निवार,
विष-दंश न कोई सह पाते!
आकाश चूमते सौंध शिखर,
अतलान्त-असीम महासागर,
ऋतु, अयन, वर्ष, युग के पथ चल,
निरुपाय शून्य में खो जाते!

•••

(६७)

बहा और सहा!

निःस्व मैं, बस विश्व में,

विश्वास तेरा रहा!

कुलिश कठिन प्रहार,

मिले जीवन में मुझे,

प्रति चरण बारंबार,

'इष्ट जो तेरा, वही अति मिष्ट'-

यही कहा!

आज एकाकी,

खोज हारा सब,

सहारा अब नहीं बाकी,

लो, गहो कर,

अन्यथा मैं मूल से भी ढहा!

●●●

(६८)

अलि, कमल खुलने न पाया!

हंत! आज निशांत में हेमंत ने उसको जलाया!

हुआ क्रूर दिनांत, आई लुब्ध लुब्धक यामिनी जब,

चंद्रहासिनि, देख, वे भीता हुईं दिग्भामिनी सब,

बद्ध बाहु-मृणाल में तम ने उन्हें उर में छिपाया!

स्तब्ध थे नक्षत्र, प्रति तरु-पत्र में था सुप्त मर्मर,

और, निष्प्रभ चाँदनी नभ से गिरी मूर्च्छित धरा पर,

सिहर थर-थर दीन के निःश्वास-सा वातास आया!

प्रकृति साश्रु हुई, हुआ परिव्याप्त प्राणों में प्रकंपन,

सभय प्राची में उषा ने करुण निज खोले विलोचन,

शिशिर के शर से अचानक प्राणधन को विद्ध पाया!

अलि, कमल खुलने न पाया!

•••

(६६)

चढ़ती दुपहर,
बह जाता कभी पवन हर-हर!
बजरी, जुवार, ईख के खेत,
पकते, झुकते कुस-कास सेत,
गोमती-तीर चमकती रेत,
हँसती सुनहली धूप ऊपर!
बड़ के टीले पर है मेला,
कतकी का ले पैसा - धेला,
पुण्य के पण्य में इस बेला,
समवेत ग्राम के नारी-नर!

•••

(७०)

प्रिय, तुम्हें पाऊँ!
चाहता मैं कुछ न,
पर प्रियतम, तुम्हें पाऊँ!
अनिल बन घूमूँ, सलिल बन बह कहीं जाऊँ,
धूम बन जल-जल उठूँ, अंबर अधर छाऊँ,
व्योम में खोऊँ, कहीं प्रियतम तुम्हें पाऊँ!
प्राण में भर मान मैं गाऊँ - सदा गाऊँ,
बनूँ चातक, पिक बनूँ, सुमयूर बन आऊँ,
स्वाति-जल ऋतुराज में, घनश्याम में पाऊँ!
धूल बन लोटूँ, कहीं पद पद्म पा जाऊँ,
तिमिर बन भूलूँ, भ्रमूँ, भटकूँ विपथ धाऊँ,
चंद्र-छवि निस्तंद्र तेरी आँक यदि पाऊँ!
प्रिय, तुम्हें पाऊँ- प्रियतम, तुम्हें पाऊँ!

●●●

(७१)

मिला यह वरदान!
वेदना के तुषानल में-
जले अविरत प्राण!
नियति के निष्ठुर, प्रखरतर,
बेध दें, तन, व्याधि के शर,
अश्रु-प्लावित बहे जीवन,
चिर-विपथ जलयान!
दग्ध आशा का कमल-वन,
चेतना-गत स्तब्ध तन-मन,
ध्येय हो अज्ञेय, संचित,
ज्ञान हो अज्ञान!

•••

(७२)

मधु-ऋतु की मधुर बिहान, प्रिये!
आओ परिचित मुसकान प्रिये!
उपवन, वन, विटपी, तरु विशाल,
सब शिशिर-शुष्क, गत-पत्र-डाल,
पहनें अब सौरभ- सुमन - माल,
लौटे फिर भूला गान, प्रिये!
दुख-कृश जग को कर रहा जीर्ण,
झंझाहत झोंकों से विशीर्ण,
उस हिम को कर उर-उपल दीर्ण,
उतरो किरणों की बान, प्रिये!

•••

(७३)

प्रिय, तेरे पथ पर बही-बही!
मैं विपथ रही, चिर-व्यथा सही!
गिन-गिन जीवन की श्वास-श्वास,
अब निष्क्रिय बन, बैठी उदास,
निरुपाय, दीन, कोई न पास,
अवलंब तुम्हारा नाम यही!
नैराश्य - निशा में उषा - चरण,
आओ - आओ, प्रिय, करो वरण,
कब से पुकारती - शरण, शरण,
आशा की रेख न शेष रही!

•••

(७४)

तुम छेड़ रहे यों बार-बार-
मेरी तंत्री के शिथिल तार!
इनमें गायन या तान कहाँ?
जड़ में चैतन्य-विधान कहाँ?
फिर भी अविरत आह्वान यहाँ,
वादक तेरी क्रीड़ा अपार!
तेरी उँगली के चपल स्पर्श,
मेरे पीड़ा, सुख, शोक, हर्ष,
रे मीड़ों में अपकर्ष - कर्ष-
अविनश्वर का नश्वर विहार!

•••

(७५)

लाज लिपटी रे, लटपट चरण,
रणन-रण नूपुर कहते-शरण!
शरद-ज्योत्स्ना शुचि-रुचि सुकुमार,
सहज सुषमा के अंबर धार,
विकल अति आभूषण के भार,
धरा पर मृदु करती विचरण!
नमित युग लोचन, कांत कपोल,
व्यालिनी- वणी, भ्रू-मुख लोल,
कपोती - ग्रीवा, मीठे बोल-
गीति - मधु अमरण, भाव वरण!

•••

(७६)

तुम मेरे, हम तेरे!
विस्मृत बहे-बहे रे!
हृदय-रत्न, अब बहुत यत्न कर,
तुम्हें सहेज लिया अपने उर,
रहो, छेड़ सुख के दुख के स्वर,
पूजूँ साँझ - सबेरे!
नयनों की पुतली में पावन,
मूर्ति तुम्हारी धौत अश्रु- कण,
निरखूँ जीवन के प्रति पल-क्षण,
डूबें भव के घेरे!

•••

(७७)

रे, सुख के दुख के चपल चरण,
आते, जाते नित, जीवन-धन!
मेरी जड़ता पर बार- बार,
हँस-हँस करते निर्मम प्रहार,
आशा - कांक्षाओं में अपार,
मृदु- मधु-स्पंदित करते नर्तन!
वासना, तृप्ति, अज्ञान, ज्ञान,
साफल्य-वि-फल, सायं-बिहान,
हँसते क्षण-भर ऋतुपति सुजान,
फिर वही आँसुओं के सावन!

•••

(७८)

चपल अचपल पल-पल चितवन,
मधुर जीवन रे, मधुर मरण!
निखिल तू, तेरा निखिल निवास,
प्रभा-तन पीन वास-आकाश,
सूर्य-शशि-तारक-सूचित हास,
लास जग का षड् ऋतु-दर्शन!
इसी छवि-छाया में अम्लान,
खेलते, खुलते मेरे गान,
ध्यान में अवसित ज्ञानाज्ञान,
वही चिर जागृति, वही शयन!

•••

(७९)

मुँद गए दिवस के विवश लोचन-नलिन,
रख रही कौन पद मंद अति मंद गिन!
लाज - तम - संवृता,
नयन, मुख, तनु-लता,
जग रही तारिका-
दंत - मुक्ता - किरण!
मौन की मानिनी,
विश्व -उर-स्वामिनी,
भर रही सहज सुख-
स्पर्श मंजुल, मसृण!

•••

(८०)

अंतस्तल में पैठी!
अचपल दृग राग -गहन,
खिंची क्षीण- भ्रू, शोभन,
बँधी, घूम कुटिल अलक,
वेणी उर पर ऐंठी!
सुगठित रक्ताभ- अंग,
आनन सस्मित, सुरंग,
चित्रित घन - पट्टवास-
छवि मन में स्थिर बैठी!

●●●

(८१)

तेरा नाम, तेरा ध्यान,
मेरी गीति, मेरा ज्ञान!
तुमको खोजता सर्वत्र,
पहुँचा मैं न तुम हो यत्र,
लिख-लिख आँसुओं के पत्र,
है अति विकल, विथकित प्राण!
प्रिय, अब सह न जाता मौन,
सोचो देव, अपना कौन,
मेरा जगत भ्रम- तम- पूर्ण,
आओ, अमर स्वर्ण - बिहान!

●●●

(८२)

दे रहे मधु-दान अलि, घन!
अंत - हीन, असीम नभ में,
बढ़ उमड़ आकुल यथा मन!
विकल उर्वी के उरोरुह,
स्पर्श भर, पाते न सुख सह,
सिहरते आकंप रह -रह,
बह रहा मंथर समीरण!
खोल चपला के विलोचन,
हेरते ये चपल क्षण-क्षण,
विपुल कंठों से मधुर स्वन,
फूट पड़ते गान अमरण!
देख, सरि- सर का महोत्सव,
शिखी, पिक का नृत्य-रव-नव-
व्याप्त पर मुझमें विरह- दव,
दूर वे मेरे हृदय - धन!

●●●

(८३)

बीते रे, दिन बीते!
जीवन-शतदल के सब पल-दल,
सुख-सौरभ से रीते!
मुकुलित, पुलक-प्रकंपित नव तन,
वह क्रीड़न, पीड़न, आलिंगन,
सरल विनोद-प्रमोद- मधुर मन,
स्वप्न-स्मृति-दिन बीते!
सूखी सुषमा - सुधा - तरंगिणि,
किस अतीत- शय्या पर रंगिणि,
सोई फेर नयन, प्रिय- संगिनि,
शैशव - श्री, सुप्रीते!
खोया तुम्हें कर्म- श्रम पाया,
अहरह क्लांति अक्लांत कमाया,
क्षीण हो रही माया - काया,
अब विषाद - विष पीते!

•••

(८४)

मिला जीवन, वन परिपूरण,
सकल लहराए री, तन-मन।

आई कनक-कलित, छवि-आकृति,
मंद-मंद अति मंद मलय - गति,
बजा मंजु मंजीर, विपुल रति,
भ्रमरों का गुंजन।

मिली मधुर कर- किरण बढ़ाकर,
स्रस्त, शिथिल ज्योत्स्ना का अंबर,
भरे, मुग्ध किसलय- अधरों पर,
मुकुलों के चुंबन!

बार - बार सहकार - अंक पर,
अर्द्ध-शचित गाती पिक- स्वर भर,
सकुच-सिहर, अग-जग का उर हर,
गूँज रहा मधु स्वन,

•••

(८५)

वह गई रात!

बातों - बातों में लघु पल-सी,

बह गई शिशिर की दीर्घ रात!

कहते वियोग की करुण कथा,

जागी प्रिय के उर की ममता,

पहले ही चुंबन में सहसा,

खिल उठा लजीला अरुण प्रात!

अधरों का अधरों में सुहास,

मुरझाया, जग का रंग- रास,

निष्प्रभ नभ में होती विलीन,

फीकी शशि- रेखा पीत- गात!

•••

(८६)

अब भी दूर किनारा!
छिन्नप्राय है तरी जीर्ण यह,
और प्रबल है धारा!
कालानिल प्रेरित कितने रे,
बहे इसी पथ साँझ- सबेरे,
वृत्त-च्युत नभ से बुझे-बुझाये,
सूर्य, चंद्र, ग्रह, तारा!
बिछुड़े, जुड़े जन्म, जग, जीवन,
अविकल कर्म-क्लांत, श्लथ तन-मन,
कर्णधार, क्या अंत - हीन है,
यह अभियान हमारा?

●●●

(८७)

मानव - दंशित मानव,
रे, जग- जीवन रौरव!
तृष्णा- पर ज्ञान विफल,
पलते क्षयकर कौशल,
निश्चेतन जन जल-जल,
वृद्धिगत धन का दव!
अवनी के आर्त स्वर,
वेध ये गए नभ - उर,
सहते दुःसह दुष्कर,
फिर भी तुम चिर-नीरव!

•••

(८८)

आओ मधुर चरण!
खोल हृदय-शतदल के सब दल,
उतरो परिवर्तन!
भरो, करो जग के जगमग मग,
हरो जटिल भ्रम-तम-जड़ दुख-नग,
मिले दृष्टि स्थिर, सुधा- वृष्टि फिर,
सृष्टि नवल अमरण!
अकल तान,, मृदु गान एक स्वर,
बहें उभय कंठों के निर्झर,
रहें प्रणय-अभिनय में लय नित,
जीवन, जन्म, मरण!

•••

(८६)

असफल सफल करो,
हरो, श्रम-ताप हरो!
तम से हो प्रकाश का परिचय,
असत ध्वस्त, हो सत्य का उदय,
मृत्यु जाय, जय जीवन की जय,
बहु भव-विभव भरो!
श्रम-क्लम के पावस का प्लावन,
तरो तूर्ण, निर्भय हों तन-मन,
सुख-सुरधनु रँगती आशा-घन,
वरद शरद विहरो!

•••

(६०)

आई यह शारद शुभ्र रात!
बिधु-मुख-सुख-हास-प्रकाश-पूर्ण-
तारा-हारावलि-रम्य गात!
नीले नव नभ के मुक्त- केश,
अपलक ज्योतिर्दृग भाव-शेष,
विकसित वन-यौवन, गंध-वेश,
प्रवहित श्वासों में मलय-वात!
उर-उर की जड़-चेतना छीन,
किरणांशुक में वह खड़ी लीन,
चिर सुंदर रे, वह चिर नवीन,
लाएगी जागृति, स्वर्ण-प्रात!

●●●

(६१)

श्यामल, कोमल, चंचल अलकें,
इनमें बँध बिध, खो सब सुध-बुध,
बन जाती हैं अचपल पलकें।
आनन - सरोज पर तर निर्भर,
अलि-कुल-सी आकुल तृष्णा-सर,
छवि-दिन-मुख पर सुख-सांध्य-प्रहर-
लख उर की मधु-रस-निधि छलकें।
ये व्रज - बालाएँ मद - विह्वल,
मोहन - मुख घेर रहीं निश्चल,
सुषमा की यमुना में प्रतिपल,
रलमल बहु - भाव - भरी झलकें।

●●●

(६२)

तुम हो, फिर यह व्यथा रहे क्यों?
द्वेष-दंभ-दुख-द्रोह-मोह-पर,
भेद-क्लेद-संताप-पाप-ज्वर,
जलता जग-जीवन सचराचर,
करुणामय, भव-भय न बहे क्यों?
खुलें करुण तव नयन अमृतमय,
गत हो मृत्यु - भीति, मृत्युंजय,
विश्वरूप हे, अनघ, अनामय,
तुममें तम, जन भ्रांति सहे क्यों?

●●●

(६३)

सब ओर तुम्हें चित्रित देखा,
पर, सतत अचित्रित ही लेखा।
छाया तन की घन सहज श्याम,
आनन सा शशि नयनाभिराम,
लोचन ये इंदीवर प्रकाम,
स्मिति मृदु चपला की चल लेखा।
पाई पल्लव ने कोमलता,
कुसुमों में लिखती हास लता,
नभ में वह निर्मल व्यापकता,
केशों से निशा असित- वेषा!
रव सुन कंठीरव, पिक, कपोत,
गाते, बहता नित रस-स्रोत,
रे, अस्थिर कवि-उर-भाव-पोत,
वह अकल-कला सृति निःशेषा!

•••

(६४)

मारो मत पिचकारी,
होली खेलती मैं हारी!
रँगे गुलाल, जगमगे तन-मन,
भीगे वसन, वश न अब यौवन,
करती जीवन - प्राण समर्पण,
बलिहारी बलिहारी!
पीर - अधीर अबीर भरे दृग,
छूट गईं सखियाँ, न मिला मग,
पकड़ो कर, उठते न थके पग,
यह निकुंज श्रम - हारी!

•••

(६५)

इस निशा में मैं अकेला!

झर रही है शरद की राका निरंतर अमृत-निर्झर,
तिर रहा है कुमुद का उल्लास पुलकित पवन-पथ पर,
गूँजते हैं निखिल प्राणों में किसी के मिलन के स्वर,
विवश मैं, कैसे सहूँ यह विरह-दुःसह प्रणय -हेला?

इस निशा में मैं अकेला!

इंदु ने प्रेयसि, तुम्हारी मुख-सुधा का सिंधु पाया,
नैशगंधा ने तुम्हारे अंग का सौरभ चुराया,
आज इस सर में तुम्हारे हृदय का मधु-मास छाया,
किंतु मैं वंचित, विकल हा! बह रही यह मधुर वेला!

इस निशा में मैं अकेला!

•••

(६६)

तुम उषा मेरे गगन की!
इस विरह की दुख-निशा के पार,
आशा नयन-मन की।
सहज उर की शून्यता में आ प्रिये, सावन समाया,
रूप का, रस का, तुम्हारे स्पर्श का आसव पिलाया,
चंचलालिंगित घिरी उतरी उधर नव घटा घन की!
मैं अकेला आज अपलक वेदना अपनी सँजोए,
चातकी की आह, पिक के गान में अस्तित्व खोए,
सुनूँ कब नूपुर-मधुर पद-चाप प्रिय तव आगमन की?

●●●

(६७)

फागुन के दिन आए!
आमों में छवि मंजरियों की,
सौरभ में सुधि अप्सरियों की,
गति समीर में किन्नरियों की,
भृंग संग चढ़ धाए!
कलरव के सुख कंपित अंबर,
प्रणय-विकल लतिका-द्रुम थर-थर,
रँग - रँग यौवन के अंकुर उर,
किसलय - कुसुम सुहाए!
प्रति सर स्वर्ण- सरोज रहे हँस,
जन-जन प्रीति-प्रतीति-गीति वश,
नयनों में बस मधु, मधु में रस,
रस में प्राण समाए!

●●●

(६८)

रे, शिशिर - शीर्ण धरणी ने पाया, फिर यौवन पाया;
सुख से, सुषमा से, मधु से कण-कण का मन हुलसाया।
कोकिल के स्वर के शर से जल-जल उठते वन-उपवन;
मधुपों ने प्रिय गीतों से कलियों का उर उकसाया!
श्लथ सौरभ मंजरियों की उरझा दी किसने वेणी,
बिंध-बिंध जिसके गुंफन में खिंचता कुसुमाकर आया?
इस अशिव, असत्य, असुंदर के महाध्वंस के क्षण में-
जागो हे ऋतुपति, जागो, छविमय कवि के जीवन में।

•••

(६६)

भुवन - मोहन हे!
सहज छवि-मधु-लुब्ध लोचन-प्राण-जीवन हे!
प्रिय तुम्हारी गीति -गति पर,
नृत्य करते हहर सागर,
अथिर रवि, शशि, अनिल, अंबर,
उडु किरण- तन ये!
जन्म के पथ विपथ बह-बह,
मरण का दुख-ताप सह-सह,
खोजते चर - अचर अहरह,
माधुरी-घन हे!
अगति में गति- से समाश्रित,
तिमिर में चिर-ज्योति से स्थित,
मोह के उस पार तुम नित,
प्रेम के धन हे!

•••

(१००)

चूमती मंजरियों को, घूम-
बसंती बहती नई बयार।
खुले सर में सरसिज मधु-घ्राण,
पिकी का गूँजा प्रणयाह्वान,
नया जग में सुखानुसंधान,
बसंती बहती नई बयार।
जगा उर-उर में मादक भाव,
दृगों में यौवन का अपनाव,
प्रणय में लाज, न रोष, दुराव-
बसंती बहती नई बयार।
निवारी, कुंद, गुलाब अपार,
लुटाते गंध-दुसह वह भार,
सम्हल कैसे पाए फिर प्यार,
बसंती बहती नई बयार।
अकेला मैं निशीथ में आज,
जल रहा अंतर में अनुराग,
लगी बाहर फागुन की आग,
दूर तुम-बही बसन्त - बयार।

●●●

(१०१)

छेड़ो न यह राग!
देखो, चतुर्दिक
प्रलय की जगी आग!
प्रिय, कंठ की माधुरी यों न ढालो,
मुख की, मुखर भंगिमा तो सम्हालो,
मृदु हास की चाँदनी अब छिपा लो,
मुझसे मिलेगा तुम्हारा न अनुराग।
सौरभ-विकल कलि-कुसुम द्रुम-लता श्रांत,
रवि, चंद्र, उडु- वृंद, सब क्षुब्ध दिग्भ्रांत,
मूर्च्छित धरा है, प्रकंपित पवन - प्रांत,
स्वर की शिखा से हृदय जल उठा जाग।
छेड़ों न यह राग !

•••

(१०२)

निश्चय जय है तेरी!
उल्काओं के संघर्षण में,
धूमकेतुओं के नर्तन में,
प्रलय-पयोनिधि के प्लावन में,
बढ़-अबाध गति तेरी!
सजा - मेघ का मुकुट शीश पर,
भुजदंडों में मरुत, वज्र - कर,
हिमगिरि-वक्ष, दीप्ति दृग-दिनकर,
बजा, बजा रण - भेरी!

•••

(१०३)

विकल दिन बीता,
दूर जीवन - घन,
विवश वह घट लिए रीता।
शून्य - दृग, तट पर अचल-पल,
हेरती सरि - लहर, कल- कल-
अस्त रवि, तम - न्यस्त जग,
नत नलिन निष्प्रीता।
चूम अलक, उरोज, अंबर,
पवन - वाहित गंध मृदुतर,
भर रही उर में मधुर,
प्रिय की प्रणय - गीता।

•••

(१०४)

उर-उर में आषाढ़ समाया!
उमड़े काले मेघ क्षितिज पर,
इंद्र-चाप, वक-पंक्ति-मनोहर,
बरस रही रस-राशि धरा पर,
प्रणयोन्मेष प्राण में छाया।
गंध - मनोज्ञ समीरण शीतल,
हलका अंधकार का अंचल,
उड़ता अलि, आकुल मैं प्रतिपल,
प्रियतम का संदेश न पाया!

●●●

(१०५)

जागरण की रात!
चुंबनों में स्वप्न - सी,
खोई सजी वह रात!
ज्वलित जीवन को मिला मधु,
बाहु - बंधन में हँसा विधु,
अंध - से उर के विकल,
निर्बंध युग - जलजात!
पुलक-भर तनु तन-लता पर,
खिले श्रम के ज्योति-सीकर,
नहा व्रीड़ा का सरोवर,
खुला प्रणय - प्रभात!

●●●

(१०६)

भारत   भूति-अशेष!

मातृभूमि अमला,
पितृभूमि विमला,
पुण्य भूमि कमला,

वेद - वेद्य हे देश!

सुर-मुनि-सेवित सद्‌म,
निखिल-वंद्य- पद-पद्‌म,
अनय-अनृत-छल-छद्‌म

पातक-तिमिर-दिनेश!

हिम-गिरि - मंडित गंड,
प्रलय-पयोनिधि - चंड,
चिर-अविभाज्य, अखंड,

जय-जय-जय सर्वेश!
भारत भूति - अशेष!

•••

(१०७)

कितने दिवस प्रिये,
बीते सकल विफल–
विषाद का विष प्रतिनिमिष पिए!
तिमिर–लीन मेरा जग दिशि–दिशि,
तुम चिर - अंतर्हित मेरे शशि,
बैठा विरह - दीन जीवन के,
मैं पल कल्प किए!
खोया, जब खोया आशा - धन,
था नैराश्य - मग्न व्याकुल मन,
सस्मित तब तुमने प्रकाश - तन,
चुंबन उतर दिए!

•••

(१०८)

बरसो ज्योतिर्जलकण!
घिर - घिर तिर तिमिरांबर,
छाओ जड़-जग स्तर-स्तर,
गरजो द्रुत अविनश्वर,
उमड़ो चिति के प्लावन!
जीवन के ताप - त्रास,
हर लो वैषम्य - भास,
फैले निर्जर प्रकाश,
सरसो सुख के सावन!

●●●

शम्पा

लेखक

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

एम०ए०

('मेघमाला' के प्रणेता)

प्रकाशक

श्री अवध बख़्श प्रकाशन मण्डल

पैसिया, पो० सिधौली,

सीतापुर।

(प्रथम बार) १६४३ ई० (मूल्य १/-)

प्रकाशक
कुँ चन्द्रप्रकाश सिंह, एम०ए०,
श्री अवध बख्श प्रकाशन मण्डल,
पैसिया, पो० सिधौली, सीतापुर।

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक
व्ही० के० पावगी,
बलवन्त प्रिंटिंग वर्क्स,
सीतापुर।

१८६१ a

अर्चना

आदर्श साधु

एकाधार में महान् सन्यासी तथा कर्मयोगी

निष्काम लोकसेवी और लोकनायक

युगावतारमहापुरूष, महर्षि-कल्प

श्री श्री १०८ स्वामी
श्री नारदानन्दजी सरस्वती महाराज

के

चरणों में

सादर

सविनय

मेरे मनोनभ की यह

'शम्पा'।

-चन्द्रप्रकाश

आमुख

''नेह-उमंग-तरंग पगी,
उपजावै न भूलिहु दारुन कंपा;
नेकु थकौ न तकौ कितनो,
नहिं छावति नैनन कौंध को झंपा;
सोंधी सुगंधि दुचंद करै,
झुरसै नहिं याके समागम चंपा;
चन्द्र प्रकास हू मैं बिलसै,
व्यतिरेकमयी यह नूतन संपा।''

गंधौली, सीतापुर
ता० ३१-१२-१९४२.

कृष्ण बिहारी मिश्र
बी.ए., एल्.एल्.बी

(भूतपूर्व सम्पादक 'माधुरी', 'साहित्य-समालोचक'
'आज' आदि तथा अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों के
प्रणेता और सम्पादक)

प्राक्कथन

हिन्दी के प्राचीन काव्य-साहित्य पर प्रत्येक हिन्दू एवं साहित्य-प्रेमी व्यक्ति को गर्व है। किन्तु, अर्वाचीन हिन्दी साहित्य भी तुलना में किसी दूसरी भाषा के साहित्य से पिछड़ा हुआ नहीं है। बंग साहित्य ने कथा एवं काव्य-साहित्य में विशेष प्रगति अवश्य की है, किन्तु हिन्दी भी इसमें पीछे नहीं है। हिन्दी साहित्य का उत्तरोत्तर क्रम-विकास प्रशंसनीय है। आधुनिक हिन्दी-काव्य साहित्य की प्रगति को देखते हुए हमें भरोसा होता है कि वह अदूर भविष्य में ही साहित्य-शरीर को काफी स्वस्थ एवं मांसल बना लेगा। हमारे नवीन कवियों की प्रगति, उनकी रचनायें और भावपूर्ण कल्पनायें तथा उन मधुर कल्पनाओं की मकरंद से हिन्दी एवं हिन्दुस्तान का नन्दन- निकुंज सुरभित हो रहा है और उनका पराग हम सब लोगों को, जान एवं अनजान दोनों अवस्थाओं में प्रसन्न कर रहा है।

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी की ''शम्पा'' नामक यह पुस्तक उनकी समय-समय पर लिखी गईं कतिपय भावपूर्ण एवं परिमार्जित कविताओं का सुन्दर संकलन है। कवि गीतों (Lyrics) का, मेरी दृष्टि में, अपनी कोटि का एक ही लेखक है और इसके पहले भी आपके गीतों का हिन्दी-साहित्य में एवं सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में स्वागत हो चुका है- कितने ही युवकों की जबान से आपके गीतों के मीठे पद्यांश हमेशा स्वर बन कर निकला करते हैं। कवि की लोक-प्रियता ही उसकी सबसे बड़ी सफलता है और यह लोक-प्रियता हमारे इस युवक कवि को काव्य-जगत में प्रवेश करते ही प्राप्त हुई है।

मैं कवि अथवा साहित्य-मर्मज्ञ नहीं हूँ। इसलिए कविता की बारीकियों पर विचार करने की वांछित क्षमता भी मुझमें नहीं है किन्तु, हिन्दी की आधुनिक कविताओं से मुझे प्रेम तो है ही, कविता तथा कला का उद्देश्य मेरी दृष्टि में

अंग्रेजी के एक विद्वान की इस एक पंक्ति में सन्निहित है कि:-''T0 Reveal the art and conceal the artist is the art's aim.'' कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह वास्तव में अपनी कविताओं द्वारा ही प्रकट हैं। यों व्यक्तिगत रूप में कवि का व्यक्तित्व उसकी कविता में ही छिपा हुआ है, और यही होना भी चाहिये।

सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर की गई रचनाओं को ''शम्पा''की माला में पिरोया गया है कवि के विचारों में हिन्दू-राष्ट्रीयता की प्रधानता है और आधुनिक मुस्लिम आन्दोलन की प्रतिक्रिया-स्वरूप उसमें हिन्दू-आदर्श की सबल भावना जागृत हुई है। कवि बड़े ओजस्वी शब्दों में अपने देश की अखंडता के बारे में पाकिस्तान का विरोध करते हुए पुकार-पुकार कर कह रहा है :-

''यह हिन्दू - धर्म का धाम प्रथम,
यह आर्य सभ्यता का उद्गम,
यह वेदों का संगीत चरम,
उपनिषदों का वाणी - विभ्रम,
ऋषि-मुनियों का संचित तप-श्रम,
संसृति का मंगलमय उपक्रम!
यह निखिल धरा का तीर्थ परम,
अपहृत इससे जग का भ्रम-तम,
इसमें प्रभु स्वयं रहे हैं रम,
यह विश्व विजय को सहज क्षम!
इसकी महिमा, गरिमा, अशेष,
अविभाज्य अखण्ड अनादि देश!''

कवि ने अपने देश की अखण्डता को सुरक्षित रखने के लिये यह

आवाज़ बुलन्द की है कि यह उसकी पितृ-भूमि, मातृ भूमि एवं धर्म-भूमि है। इसका विभाजन प्रत्येक हिन्दू की जननी को खण्ड-खण्ड करने के समान है जिसे कोई मातृ-भक्त पुत्र प्राण रहते बर्दाश्त नहीं कर सकता। भारतीय मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए कवि लिखता है :-

''यह कुसमय है अभी न छेड़ो यार बेसुरा राग,
सावधान तुम, लग न जाय माँ की अस्मत में दाग़।
कभी तुम्हारे हो न सकेंगे अरब और ईरान,
तुम इसके हो, और तुम्हारा प्यारा हिन्दुस्तान!''

ऐतिहासिक आधार पर लिखी गईं कवितायें बड़ी रोचक, जोशीली और हिन्दू-जाति के अतीत की याद दिलाने वाली हैं। यों तो कवि ने कई ऐतिहासिक कवितायें लिखी हैं और सब बेजोड़ हैं। किन्तु 'पाटलिपुत्र' शीर्षक कविता की पैनी पंक्ति हमारे हृदय की तह पर पहुँच कर आलोकित करनेवाली है। प्राचीन पाटलिपुत्र के भग्नावशेष आज भी हमें हिन्दू-साम्राज्य के वैभव की मूक कहानी सुनाया करते हैं, और गंगा की लहरें आज भी अपने कलकल स्वर में अशोक और चन्द्रगुप्त के शौर्य-वीर्य के गीत गाया करती हैं। कवि कहता है :-

चन्द्रगुप्त का अतुल पराक्रम भूल न जाना।
ग्रीक शक्ति ने जिसे पराभव पा पहचाना।।

x x x x x x x x

निज अशोक के विश्व विजय की अकथ कहानी,
कहता जिसको द्रवित नित्य गंगा का पानी।
अश्व-मेध के कृती विश्व-जय के व्रतधारी,
तुम थे, तुम थे, सतत् शत्रु-श्री-भोग्य तुम्हारी।

''शम्पा'' की कवितायें कवि के विचारों का प्रतिनिधित्व करती हैं। और कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। काव्य-कला की दृष्टि से भी कवि अपनी

रचनाओं में काफी सफल हुआ है। कवि में पीड़ा है, बेचैनी है; शोषितों के प्रति सम- वेदना है, अपने अतीत का गौरव और वर्तमान का विश्वास एवं सुनहले भविष्य की प्रबल आशाओं का स्रोत है। मैं कवि की सफलता चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि प्रत्येक हिन्दी, हिन्दु और हिन्दुस्तान का प्रेमी ''शम्पा'' का

लखनऊ
तारीख ०७ दिसम्बर १९४२
(महाराजा बहादुर डुमराँव राज (बिहार)

राम रण विजय प्रसाद सिंह
एम. एल. ए०
(केन्द्रीय), अध्यक्ष,
अ०भा० क्षत्रिय महासभा)

निवेदन

'शम्पा' कतिपय अभिन्न मित्रों और आत्मीयों के अनुरोध से प्रकाश में आ सकी है। यह मेरा दूसरा संग्रह है। पहला 'मेघमाला' गंगा-पुस्तक-माला, लखनऊ ने प्रकाशित किया है। 'शम्पा' की प्रायः सभी कवितायें सर्वथा स्वान्तः सुखाय लिखी गई थीं, और इसीलिये इनमें की कदाचित् एक-आध कविता ही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो पाई - वह भी दूसरों के द्वारा प्रेषित होने पर। ये कवितायें मेरे कवि-जीवन के विभिन्न क्षणों में लिखी गई हैं। संग्रह की केवल तीन-चार कविताएँ नई हैं अथवा इस वर्ष लिखी गई हैं। अन्य सभी प्रायः पुरानी हैं, और चार-पाँच वर्ष पूर्व लिखी गई थीं। इसके प्रकाशन की ओर कभी मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई, अब भी नहीं थी, इसलिये इस तरह की मेरी बहुत सी कवितायें नष्ट हो गईं। तथापि 'शम्पा' आज साहित्य-संसार के समक्ष है, इसके लिये मैं अपने उन साहित्य-रसिक मित्रों का बलात् आभारी हूँ, जिनके स्नेह-आग्रह का यह परिणाम है। 'मेघमाला' फिर 'शम्पा' प्रकृति का यह प्रकृत विलास है।

इधर मैंने कुछ ऐतिहासिक आख्यान-काव्य लिखे हैं। 'शम्पा के छपते समय उन्हें भी इसी में ग्रथित करने का विचार आया था। पर, उन्हें अगले संग्रह के लिये रख लिया । मेरे सहृदय सुधी -पाठक उसकी प्रतीक्षा करेंगे।

'शम्पा' के सम्बन्ध में मुझे अधिक नहीं कहना , आवश्यक भी नहीं है। अवश्य, इन रचनाओं में मेरी राजनैतिक विचार- धारा का विकास-क्रम सहज संलक्ष्य है। 'शम्पा' की सफलता, वरन् मेरे कवि-जीवन की सिद्धि, इसी में है कि राष्ट्र के प्राणों के स्तर-स्तर में ये स्वर प्रवेश कर जाँय-

'अविभाज्य, अखंड, अनादि देश', और

'भारत हिन्दुओं का देश।'

भविष्य में मेरी काव्य-साहित्य-साधना एवम् जीवन की प्रत्येक कृति-सृति इसी महिमामय आदर्श की सक्रिय उपासना में समर्पित रहेगी। मैं इसे ही स्वस्थ, अकृत्रिम राष्ट्रीयता मानता हूँ।

‘शम्पा’ के लिये डुमरांव के चारु–कीर्ति नरेश महाराजा बहादुर श्री राम रण विजयप्रसाद सिंह जू देव, एम०एल०ए० (केन्द्रीय) ने प्राक्कथन लिखने की कृपा की, यह उनका परम अनुग्रह है। ऐसा सर्वथा उचित भी था। कारण, आदरणीय महाराजा बहादुर अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा के अध्यक्ष हैं, और ‘शम्पा’ में हिन्दुओं के क्षात्र–धर्म, कर्म, तप तथा त्याग की प्रशस्ति का स्वर प्रधान है। हिन्दी संसार के यशस्वी विद्वान, लेखक एवं कवि श्रद्धेय श्री पं० कृष्ण बिहारी मिश्र जी, बी०ए०, एल०एल०बी० के विशिष्ट व्यतिरेकपूर्ण ‘आमुख’ में मेरे प्रति उनके अकृत्रिम स्नेह और वात्सल्य का अतिरेक है। उनके प्रति कृतज्ञता–ज्ञापन दुर्विनीत होना है।

‘शम्पा’ श्री अवध बख़्श प्रकाशन मंडल का प्रथम साहित्यिक उपहार है। उत्तरोत्तर यह मंडल विभिन्न सुप्रसिद्ध लेखकों की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशित करने का सत्संकल्प लेकर मैदान में आया है। शीघ्र ही साहित्य- संसार इसका प्रकाश, प्रचार, एवम् प्रसार देखेगा। इस मंडल द्वारा लोकोपयोगी वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन का भी आयोजन हुआ है। इसका पूरा दायित्त्व मेरे आयुष्मान अनुज, बलवन्त राजपूत कालेज आगरा के प्रोफ़ेसर सुरेन्द्र सिंह पर है।

‘शम्पा’ की प्रमुख प्रेरक शक्ति ओयल के सुप्रसिद्ध लोक- सेवी नरेश, मेरे सतत निष्काम सहायक माननीय राजा श्री युवराजदत्त सिंह जी देव, मेम्बर कौन्सिल आफ स्टेट हैं। अपने जीवन के प्रति क्षण मैं उनके सौहार्द का आभारी हूँ।

‘शम्पा’ देश और जाति के जीवन में अपना नाम सार्थक करे।

चन्द्रप्रकाश सिंह

श्री विक्रमादित्य क्षत्रिय विद्यालय
सिधौली (सीतापुर)

ता० ३.१.१९४३

अनुक्रम

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	वन्दना	111
2.	मातृ-मूर्ति	113
3.	गीत	115
4.	गीत	116
5.	पाटलिपुत्र	117
6.	श्री प्रताप-स्मृति	121
7.	स्वागत गीत	122
8.	गीत	126
9.	गीत	127
10.	कांग्रेस	128
11.	डौंड़ियाखेरा	138
12.	हल्दी घाटी	140
13.	हल	142
14.	अयोध्या	144
15.	दीन देश	146
16.	अमीनाबाद	148
17.	भारतीय मुसलमानों के प्रति	152
18.	हिमालय	153
19.	अविभाज्य अखण्ड अनादि देश	159
20.	विजया	161
21.	गीत	165

22.	करबाल	166
23.	बीर-बाहु	168
24.	गीत	170
25.	श्री प्रताप-जयन्ती	171
26.	राणा वेनीमाधव	172
27.	बन्दा वैरागी	173
28.	गीत	175

वन्दना

नैमिष पुण्य-अरण्य पूत कण-कण यह धरणी,
युग-युग की सुप्रथित विश्व-सागर की तरणी।
यह पावन गोमती ज्ञान की तप की धात्री,
वेद-ऋचा-सी भुक्ति-मुक्ति की सहज विधात्री।
उसी तीर के हंस मुक्ति-मुक्ता-वरकारी,
जय महर्षि-श्री जयति जयति यतिवर व्रतधारी।
तर कर सप्तावरण तोड़ कर तम की कारा,
समुदित है हे देव, तपः- आलोक तुम्हारा।
काँप रहा है गगन ज्योति के भर-भर स्पन्दन,
बरस रहा है राशि- राशि सच्चिदानंद घन।
गूँजी दिशि-दिशि मन्द्र-घोष विद्युत-सी वाणी,
विश्व-हृदय में लसी देवसरि - सी कल्याणी।
पराभूत हो चली पापमय जग की सत्ता,
प्रतिपादित फिर हुई धर्म की प्रकृत महत्ता।
निस्तरंग गति मुक्त - पंख अम्बर- पथ धाये,
दिनमणि-से फिर लोक-कोक-दुख-हर बन छाये।
देखो श्रद्धा- विनत प्रकृति का यह अभिनन्दन,
निज धरती का हुलस हुलस पग-पग पद वन्दन।

यह कविता नैमिशारण्य के सुप्रसिद्ध सन्त महर्षि-कल्पयुगावतार महापुरुश श्री श्री १०८ स्वामी श्री नारदानंदजी सरस्वती महाराज के प्रति उनके समाधि से जागरण के उपलक्ष्य में निवेदित हुई।

व्यजन झल रहा पवन, चन्द्र किरणों का चामर,
झरते हैं प्रस्रवण प्रभा के नभ से निर्जर।
तीर्थीकृत यह महातीर्थ जागरण भरा है,
पुलक भरा है, मोद भरा है, गन्ध भरा है।
निज समाधि में योग-सिद्धि से प्रभु को पाकर,
ये अट्ठासी सहस सकल फिर जागे ऋषिवर।
खड़े हुये मुनि-वृन्द देव, उस ओर निहारो,
आये हैं श्री व्यासदेव इन की गति धारो।
ये हैं ये शुकदेव देव, देते तप का वर,
कहते-'कर दो देश, धर्म, संस्कृति को भास्वर'।
शौनक की तो प्राप्ति प्रथम ही प्रभु की स्थिति है,
निवसित मति में सप्त-महाऋषि-गण सम्प्रति है।
अप्रतिहत गति महासिद्धि यह योग-विधायक,
परमहंस, चिर रहो विश्व-जन-मन के नायक!

x x x x x x x x

यह सांस्कृतिक समृद्धि-वृद्धि का पावन उपक्रम,
यह स्वधर्म- उत्थान हेतु भवदीय महा श्रम!
सकल सफल हों, जिये देश फिर जीवन पाकर,
दो कवि को अभिलषित देव निज सेवा का वर!
करो मनोनभ - देश सतत दीपित हे गुरुवर,
रहूँ मत्त नित चरण-कमल का मधु पी पीकर!

यह कविता नैमिषारण्य के सुप्रसिद्ध सन्त महर्षि-कल्पयुगावतार महापुरुष श्री श्री १०८ स्वामी श्री नारदानंदजी सरस्वती महाराज के प्रति उनके समाधि से जागरण के उपलक्ष्य में निवेदित हुई।

मातृ-मूर्ति

बँध रही दृष्टि,
सम्मुख अलोक आलोक-सृष्टि।
यह नील गगन,
ले सूर्य, चन्द्र, तारा अगणन,
बरसता भावमय किरण-किरण,
आतप में, ज्योत्स्ना में क्षण-क्षण।
चुम्बित जिससे हिममय किरीट,
गिरि का स्मितिमय, प्रति शृंगार स्फीत,
हेमाभा में, रंग बदल बदल,
ये झलक रहे झरने अविरल।
बहतीं नदियाँ श्रुति-सुख कलकल,
फैला जीवन का कोलाहल।
धरती का पग-पग स-जल स-फल,
लहराता शस्य भरा अंचल।
मस्तक पर प्रिय काश्मीर हीर,
षड्- ॠतु- रंजित पावन शरीर,
गंगा, यमुना कल कंठ- हार,
श्रुति- प्रथित पंचनद छवि अपार।
युग बाहु - सिन्धु उन्मोदोद्दाम,
यह ब्रह्मपुत्र यौवन - प्रकाम,
बहु लड़ियों की मेखला विंध्य,

श्री, सुख, सुषमा, गरिमा अनिंद्य।
गर्ज्जित लहरों के शत-शत फन,
यह सिंधु शेष का सिंहासन।
आसीन सहज जिस पर अविचल,
माँ चरणों में लंका - शतदल।
जागी उर-उर शुचि मातृ-मूर्ति,
भर भक्ति-प्रीति-बल दीप्ति-स्फूर्ति।
पैंतीस कोटि कंठों के स्वर,
फूटे,- 'जय जन्म-भूमि भास्वर।'

गीत

जय देश,
भारत, सतत सत्य रत,
धर्म निःशेष!
पाया यहीं ज्ञान ने ज्ञेय आधार,
आकार में आ बँधा जो निराकार,
गूँजा महाशून्य में आदि ओंकार-
संसार में सार का पूर्ण निर्देश!
विस्मृत महत उपनिषद-वेद के बाद,
करुणा, दया, बुद्ध के शुद्ध संवाद,
आदर्श क्या राम के कृष्ण के याद,
कैसे हुये भ्रान्त, कैसे निरुद्देश?
गरजो गगन भेद फिर हे महाप्राण,
फूँको वही शंख, फूटें नये गान,
पावें पतित पद दलित विश्व के त्राण,
छाले धरा साम्य का कान्य सन्देश!

गीत

जय शस्य-श्यामा,
रत्न-प्रसू, पुण्य-भू पूर्ण-कामा!
शोभित हृदय-हार शत-शत-तरंगा-
यमुना, प्रथित पंचनद, शुभ्र गंगा,
विन्ध्या प्रकट मेखला कटि-भंगा,
कटि में सुपट ऊर्मिमाला ललामा!
लंका सरोज स्थिता, वेद-हस्ता,
आद्या-जया, विश्व-वाणी प्रशस्ता,
मातः, पुरा कीर्ति, गति, धीति ध्वस्ता,
जागो, करो जानि महिमाभिरामा!

पाटलिपुत्र

गंगा-तट, इतिहास-कथित पुर विश्रुत पटना,
यह अपना संघट्ट यहाँ -दबी सब घटना।
वह, जय जीवन और मरण-सीमा पर आकर,
कृति-विमूढ़ है जाति,आत्म-विस्मृत, हत जर्जर।
तिमिर-तिमिर सब ओर प्रबल प्लावन की धारा,
बहते हैं हम विवश, नहीं कुछ कूल किनारा,
इस असमय में हमें आज, सत्पथ दिखलाने,
हुये आप समवेत यहाँ मृत जाति जिलाने।
स्वागतार्थ उर खोल मार्ग में नयन बिछाता,
पटना सुनिये बन्धु! मौन सन्देश सुनाता।
भरता नव आलोक, जगा उल्का-सी स्मृतियाँ,
जीवित करता हुआ, भूत की शत-शत सृतियाँः -
वही देश, वह प्रान्त, वही यह नगर तुम्हारा,
वह सन्मुख बह रही वही गंगा की धारा,
किन्तु नहीं तुम वही, हाय! कैसे बतलायें,
तुम क्या थे क्या हुये आज, कैसे समझायें?
अनतिदूर भग्नावशेष दृग-पथ में आते,
क्षत्रिय, गौरव-कथा तुम्हारी विगत सुनाते,
थी सागर-मेखला धरा साम्राज्य तुम्हारा,
शत सुरेन्द्र-प्रार्थित बल वैभव भाग्य तुम्हारा।

अखिल भारतवर्षीय क्षत्रिय महासभा के ४१वें वार्षिक अधिवेशन के सुअवसर पर पटना में हिज हाइनेस महेन्द्र महाराजा श्री यादवेन्द्र सिंह यू देव बहादुर पन्ना-नरेश की अध्यक्षता में समवेत क्षत्रिय बन्धुओं के स्वागत और उद्बोधन में पठित।

सहज तुम्हारा शौर्य देख सूखे रत्नाकर,
रहा तुम्हारे रथश्चक्र से धर्पित अम्बर।
साम-दाम-युत न्याय-नीति लेकर निज कर में,
सदियों शासित किया धरा तुमने इस पुर में।
प्रबल यहाँ की नन्द-वाहिनी लख भय पाकर,
विफल-मनोरथ लौट गया जग-जयी सिकन्दर।
चन्द्रगुप्त का अतुल पराक्रम भूल न जाना,
ग्रीक शक्ति ने जिसे पराभव पा पहचाना।
निज अशोक के विश्व-विजय की अकथ कहानी,
कहता जिसको द्रवित नित्य गंगा का पानी।
अश्वमेध के कृती विश्वजय के व्रतधारी,
तुम थे, तुम थे, सतत शत्रु- श्री भोग्य तुम्हारी।
मण्डलिकों ने यहीं तुम्हें निज शीश झुकाया,
मणि-मुकुटों को चूम भूमि ने भूषण पाया।
उन तमारि-विक्रम शकारि की गरुड़-पताका,
यहीं उड़ी थी, विश्व-विदित है जिनका साका।
हूणों का दल प्रलय पयोनिधि- सा उफनाया,
बढ़कर जिसने निखिल रोम साम्राज्य डुबाया।
वह जब मद में विपथ, इधर भी चढ़कर आया,
गुप्तों का दुर्धर्ष यहाँ बाड़व-दव पाया।
भड़क उठी निज स्कन्दगुप्त के असि की ज्वाला,
क्षण में उसने क्षार हूण-वैभव कर डाला।
अगणित ये किस भाँति गिनायें कीर्ति-कथायें,
वही बन रहीं आज विषम विष-दंत व्यथायें।
वह गत, यह गति आज, हाय! फिर भी सोते हो,
हुआ सभी निःशेष, शेष वह भी खोते हो।

गया ताज, साम्राज्य गया, फिर भी तुम सोये,
गिरे शिवालय, ध्वस्त देव-मन्दिर तुम खोये।
हिन्दुस्तानी हुये हाय! तुम आर्य न रह कर,
पाकिस्तानी अभी बनोगे नींद न तज कर।
संकट है प्रत्यक्ष पुनः, जागो प्रिय जागो,
रक्षक हो निज देश,जाति, जन पर अनुरागो।
तुम्हें जगाते श्री प्रताप स्वातन्त्र्य-विलासी,
तुम्हें जगाते छत्रसाल चिरजय अभिलाषी।
तुम्हें जगाती अनल-दग्ध सतियों की ज्वाला,
रक्खी कुल की आन पहन लपटों की माला।
तुम्हें जगाती आज पद्मिनी रण की रानी,
शेष नसों में रक्त, बन्धु अथवा वह पानी।
उस जौहर की आन तुम्हें, जागो, फिर जागो,
तुम्हें जगाता आज कौन, देखो तो जागो?"

x x x x

यह इतिहास- प्रसिद्ध सिद्ध वर- वंश बुंदेला,
फिर-फिर जिसको अमर समर की रुचिकर खेला।
जिसमें मधुकरशाह हुये जिनका लख टीका,
खो सब साहस हुआ शाह अकबर मुख फीका।
शत्रु-काल थे छत्रसाल[१] जिस कुल में मानी,
कवि भूषण वन्दिता चल रही यशः कहानी।
उसी वंश के कमल अमल, निज जाति दिवाकर,
आये भूप महेन्द्र[२] यहाँ हो प्रीति कृपा कर।
संकट लख जातीय स्वयम् खिंचकर वे आये,
यदि भूषण की शक्ति मिले, कवि स्वागत गाये।

x x x x

पन्ना- पति, बुन्देल- हंस, हीरों के राजा,
स्वागत, स्वागत, खुले हृदय के दल, किरणें पा!
आये आये आप , जाति ने गौरव पाया,
यह काँटों का ताज, तभी महाराज पिन्हाया।
अब आगे बढ़ चलें जाति- पतवार उठायें,
यदि शोणित का सिन्धु मिले, वह भी तर जायें।
छत्रसाल-वाहिता विदित मुगलों की काशी,
वही आप की खंग आज नव यश की प्यासी।
सक्खरादि में लुटीं अबल अपनी ललनायें,
उसका क्या प्रतिकार करें हम, पथ, बतलायें।
जिये-जिये यह जाति आपसे जीवन पाकर,
जागें हम सुन आज आपके पांचजन्य-स्वर।
पायें क्षत्रिय आज, आपसे गौरव पायें,
वर्तमान में भूतिमान निज विगत जगायें।
फिर क्षत्रिय-साम्राज्य जगा अपने सपनों में,
भर दें, भर दें, देव शक्ति साहस अपनों में।
भर दें यह विश्वास हमारी जाति अजय है,
जय-जय क्षत्रिय जाति, सदा क्षत्रिय की जय है।
हर कलुष-प्रमाद जगा दें जीवन-ज्वाला,
पहने भारतवर्ष मुक्ति- मुक्ता की माला।
अधिक कहें क्या, छत्रसाल-सा ही यश पावें,
कवि भूषण नव नित्य आपका सुयश सुनावें।

१. ओरछा के एक इतिहास-प्रसिद्ध नरेश।

२. पन्ना के वर्त्तमान, लोक-प्रिय, देशप्रेमी, उदार शासक हिज़ हाईनेस महेन्द्र महाराजा श्री यादवेन्द्र सिंह जू देव बहादुर।

श्री प्रताप-स्मृति

सदियों का तम भेद, छेद प्रति स्तर जड़ जीवन,
गरज उठा फिर वह अरावली का पंचानन।
उल्का सी जल उठी, वही-वह असि पहचानी,
वह बरछी-उस विद्यु-लता की रक्त-कहानी।
कँपा रही हैं मनोदेश चेतक की टापें,
पड़ती हों ज्यों विजय-गीत-लय पर गुरु थापें।
टूटे बन्धन भीति-अन्ध उर ने गति पाई-
'दृढ़- स्वातंत्र्य- व्रती महाराणा जय' छाई।
कर शत-शत मार्तण्ड मन्द नव पथ दिखलाता,
श्री प्रताप का तपःपुंज दुःख-ताप नसाता।
ये किरणें आलोक यही उतरे उर-उर में,
जागे, जागे जाति, मुक्ति- निष्ठा हो स्वर में।
हँस हँस दें दें शीश, करें शोणित का तर्पण,
हो अपना सर्वस्व, देश-हित-हेतु समर्पण।
हम प्रत्येक प्रताप बनें मृत जाति जिलायें,
मर कर भी हों अमर, विमल क्षत्रिय-यश पायें।

स्वागत

घिरी हुई हैं गहन चतुर्दिक श्याम घटायें,
तिमिर-लीन है गगन, दृष्टि धरतीं उल्कायें।
महानाश सब ओर, मरण विध्वंस भयंकर,
प्रलय-पूर्ण है सृष्टि, क्रुद्ध ताण्डव-पर शंकर।
नष्ट हो रही नित्य दीन दुर्बल की सत्ता,
है बल का व्यभिचार ही नियम गत नैतिकता।
युद्ध-प्रपीड़ित विश्व, देश विद्वेष-विकल है,
और हमारा धर्म आज धर्षित प्रतिपल है।
इस कुसमय में बन्धु, यहाँ सदया तुम आये,
क्या गाये कवि, कौन आज वह स्वागत गाये?
फिर भी जो ये शब्द-सुमन अर्पित करना है,
जय के पथ पर बन्धु, तुम्हें निश्चय वरना है।
तो देखो फिर आज गये गौरव की झाँकी,
यह छवि तुमने जो अतीत के पट पर आँकी।
सूर्य चन्द्र का छत्र, हिमांचल का सिंहासन,
पाद-पीठ यह महा-सिन्धु, नत गर्ज्जितशत फन।
ऐसे सहजासीन विश्व-साम्राज्य विधायक,
तुम थे सगर, दिलीप, भगीरथ, रघु धृत-शायक।
भव क्या-दिव ही नहीं, त्रिदिव था तुमसे पालित,
चरण तुम्हारे विविध देश-पतियों से लालित।

सीतापुर जिला क्षत्रिय-सभा के वार्षिक सिधौली-अधिवेशन में प्रजा-प्रिय, साधु-शील, महान जाति-सेवी माननीय राजा श्री युवराजदत्त सिंह जू देव ओयल-कैमहरा-नरेश तथा अन्य आगत बन्धुओं के स्वागत में पठित।

राम-राज्य का स्वप्न तुम्हीं ने सत्य बनाया,
वानर को भी था नरत्त्व का पाठ पढ़ाया।
अश्वमेध के व्रती, तुम्हारी विक्रम- धारा,
प्लावित करती रही जगत का जल-थल सारा।
यही तुम्हारी कीर्ति-कथा कहती हैं गंगा,
तारा-हारावली-विभूषित पुण्य- तरंगा।
वही तुम्हारी कीर्ति शैल शिखरों पर शोभन,
करतीं हैं नव नित्य अरुण किरणें अनुरंजन।
वही तुम्हारी कीर्ति पवन गुन-गुन गाता है,
गाता क्षण-क्षण तोष नहीं फिर भी पाता है।
वही तुम्हारी कीर्ति-कौमुदी धारण करती,
देती सबको शान्ति, लोक-लोचन-मन हरती।
वही तुम्हारी कीर्ति सिन्धु के उर पथ अंकित,
करते ये नक्षत्र नैश-तम में नित बिम्बित।
उसी कीर्ति के दूत, तनिक नभ ओर निहारो,
खड़े हुये हैं, चन्द्रगुप्त, आरती उतारो।
ग्रीक-शक्ति को ध्वस्त किया, साम्राज्य बनाया,
देश -धर्म को त्राण दिया, नव सुयश कमाया।
वे अशोक हैं जगत-विदित करुणा-करुणालय,
बोलो इन सम्राट दया दानी की जय जय।
वे हैं, वे विक्रमादित्य शक-अरि महाभट मानी,
कालिदास-वन्दिता अमर है यशः-कहानी।
पुष्यमित्र, श्रीहर्ष, भोज दृग-पथ में आते,
देते हैं सन्देश, तुम्हें सब बन्धु जगाते।

पृथ्वीराज हैं उधर शौर्य के सूर्य तुम्हारे,
मलिन-वदन कुछ क्रुद्ध-नयन स्वर-शर कर धारे।
यवनों ने विश्वासघात से छल से मारा,
हरा देश, प्रतिशोध बन्धु है शेष तुम्हारा।
उठो, करो अब करो, रक्त-अंजलि मिल अर्पण,
चौहानों है शेष, तुम्हारे शीश पितृ-ऋण।
वह देखो वह देश जहाँ जलती ज्वालाएँ,
पहने हैं जो प्रलय-वह्नि-वाड़व-मालाएँ।
पहचानों चित्तौर वही, वह तीर्थ तुम्हारा,
ज्वलित चितायें जहाँ तोड़ती तम की कारा।
देखो वे पद्मिनी अनल-आसन-आसीना,
ये असंख्य सतियाँ अनन्त आलोक-प्रलीना।
इन्हें प्रणित दो बन्धु, तुम्हारी ये दुर्गायें,
जलीं विमल ही रहीं वंश की सकल कलायें।
शत-क्षत-विक्षत इन साँगा की ओर निहारो,
भीष्म भीष्म-बल-विपुल-पराक्रम इन पर वारो।
और उधर हैं श्री प्रताप तप पुंज तुम्हारे,
नर क्या, सुर भी सहज त्याग पर जिनके वारे।
वह हय, वह असि, वह कृतान्त-अंगीवर बरछी,
मानसिंह प्रति उठी दृष्टि देखो वह तिरछी।
छत्रसाल, ये राजसिंह गौरव- गिरिधारी,
उधर छत्रपति शिवा सतत रण-अजिर बिहारी।
इनके असि के वेग मुगल-बल-वैभव सारा,
जल बुदबुद सा मिटा प्रहत औरंग बेचारा।
ये कहते सब बन्धु, मोह-निद्रा निज त्यागो,
नव वसन्त से उठो, भीष्म ऊष्मा से जागो।
धूमकेतु से प्रलय-भीम आलोक पसारो,
महाकाश तर चलो, देश को जग को तारो।

अप्रतिहत उच्छ्वसित मरुत की गति तुम धारो,
क्षुब्ध सिन्धु से अमित ओज पौरुष विस्तारो।
अरि-असुरों पर रुद्र-नयन-ज्वाला से छूटो,
धर्म-द्विषों पर बन्धु, इन्द्र-पवि से झट टूटो।
क्या भूले हो निखिल सृष्टि के भाग्य-विधायक,
तुम हो, तुम हो बन्धु, अमर गीता के गायक।
तुम्हें आज मिल गया, योग्य नेतृत्व तुम्हारा,
कैमहरा-पति तुम्हें बताते ध्येय तुम्हारा।
राजन् ओयल-नरेश, आप जागृति-पथ आयें,
स्वागत में कवि पलक-पुलक पाँवड़े बिछाये।
देंगे जो सन्देश आप हम उसे वरेंगे,
आप चलें हम साथ रक्त के सिन्धु तरेंगे।
हाँ, पर हमको मिले, देव, अपनी वह भावी,
जिसमें जय हो सदा विजय, नायक मेधावी।
मिले, मिले फिर मिले हमें साम्राज्य हमारा,
जल, थल, नभ में बहे अबाधित शासन-धारा।
हम देखें वह दिवस मोद-प्रद मंगल-दाता,
सार्वभौम हम बनें नृपति जग- भाग्य विधाता।
होंगे, होंगे सत्य स्वप्न सब देव हमारे,
नेता रहें, महीप आप नित साहस धारे।
किन्तु आप हैं पूज्य अतिथि होकर जो आये,
क्या देंगे, हम भाव-सुरभिमय शब्द चढ़ाये!
और चढ़ेगा देव, एक शोणित का टीका,
जब स्वतन्त्र हो देश वरेगा जय पृथ्वी का।

गीत

जय हिन्दी, जय हिन्दी!
चिर-अभिनव भारतमाता के,
भव्य भाल की बिन्दी!
इसके वर्ण, रूप, रस के वश,
सूर-उदधि, तुलसी का मानस,
सन्त कबीर और मीरा की,
वाणी शुचि - जय हिन्दी!
छन्द, भाव, भाषा, रस-वैभव,
करते वृद्धि-सिद्धि कवि नित नव,
गुणागरी नागरी हमारी,
लिपि निरुपम-जय हिन्दी!
नंददास, रसखान, देव कवि,
घनानंद, भूषण अमंद छवि,
खुले, खिले अंचल-छाया में,
धन्य हमारी हिन्दी!
फैला देश-विदेश उजाला,
सुविदित पंत, प्रसाद, निराला,
प्रेमचंद ने जीवन डाला,
अमर हमारी हिन्दी!

गीत

जय-जय नयनाभिराम,
भारत, जय पूर्णकाम!
हिम-गिरि-शिर-किरणोज्ज्वल,
भाव- नत जलधि पद- तल,
गंगा - जल - धौत अमल,
पावन तन पुण्य धाम!
बहु सुवर्ण - शस्य - हसित,
रवि- शशि-शत-उडु-दीपित,
हास - लास - उत्सव नित,
श्री -सुख-सुषमा ललाम!
निखिल-विश्व-जन-संस्तुत,
आदिगन्त कीर्ति - श्रुत,
पावो नव - जीवन द्रुत,
जागो गौरव - प्रकाम!

कांग्रेस

(स्वर्ण-जयन्ती के सुअवसर पर)

नत पारतन्त्र्य-हत जीवन की,
बीती - वह बीती अंध रात।
कांग्रेस देश के प्राणों पर,
उतरी जागृति-गति नव प्रभात।
आशा, विश्वास, शक्ति, साहस,
के स्वर, उर उर गूँजी पुकार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

उन्नत हिमाद्रि के शृंगों पर,
शोभित ऊषा का मुकुट आज,
विन्ध्या की बन्ध्या घाटी में,
जीवन के, जय के नव समाज।
पूर्वांचल और पश्चिमांचल तक,
इस खरतर स्वर का प्रसार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

गंगा-यमुना के कूलों पर,
गूँजा अभीत यह गीत जाग,
विक्षुब्ध सिन्धु के अधरों से,
फूटा-फूटा बन सिन्धु राग।
वह रेवा की चल लहरों का,
गायन, कल-कल कल्मषोत्सार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

आलोड़ित जन-मन अनिलवाह में,
ध्वनित क्रान्ति- अविराम क्रान्ति,
आन्दोलित पुर-पुर प्रान्त-प्रान्त,
स्वातन्त्र्यहीन कब कहाँ शान्ति।
दुःसह्य भंग वह, बंग-वीर,
वन्देमातरम् उठा पुकार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

वे महाराष्ट्र के महाप्राण,
ब्रह्मर्षि, मूर्त्त ज्यों परम ज्ञान,
श्रीमान तिलक अवतीर्ण हुये,
ले गीता की कर में कृपाण।
मिट चले, कट चले भारत के,
मानसिक-दास्य के कुसंस्कार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

सुन पड़ा पंचनद कूलों पर,
पंजाब-केसरी का गर्जन,
आये अभिमान-मान लाये,
अरविन्द, सुरेन्द्र, चित्तरंजन।
जंगम प्रयाग श्री मालवीय,
कह पांचजन्य वाणी उदार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

कम्पित दिगन्त, पौरुष अनन्त,
तारुण्य देश का महाभाग,
गरजा, अशेष सीमाओं में,
सर्वस्व-त्याग की लगी आग।
यम की सहोदरा फाँसी की,
रस्सी तक बोली बार-बार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

वह उन दीवानों की टोली,
कफनी की शिर पर कसे पाग,
बढ़ चली-बढ़ चली, सीने पर,
गोली के शत-शत झिले दाग।
माताओं के लुट गये लाल,
विधवाओं का श्रुत चीत्कार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

उत्तप्त रक्त से युवकों के,
जननी का अंचल हुआ लाल,
हर्षोद्धत काल-कपाली ने,
पहनी मुण्डों की सुमन-माल।
दिव में सुरांगनायें गातीं,
इस महात्याग पर हृदय वार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

पर, तपोराशि प्रिय भारत के,
प्राणों की पावन-निधि शोभन,
सह सके न हिंसा दुःसाहस,
वे विश्व-वन्द्य मानव मोहन।
बोले - इन अत्याचारों का,
प्रतिकार हमारे पास प्यार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

सहयोग न हो अन्यायी से,
यह असहयोग का मूल मन्त्र,
सुनकर परिचालित भारत में,
स्थिर शान्त क्रान्ति का वृहत् तन्त्र।
शुचि सत्य, अहिंसा, संयम के,
बढ़ चली कांग्रेस अस्त्र धार–
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

सत्याग्रह का ग्रह प्रबल हुआ,
मोहन का सम्मोहन छाया,
खद्दर की चद्दर में विलसी,
माँ की अनवद्य वन्द्य काया।
दुर्दैत्य दमन, यह दुःशासन,
जिसके कर्षण में रहा हार–
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

अनियन्त्रित धारायें निकलीं,
फिर कारायें आबाद हुईं,
उस क्रूर कंस के शासन की,
बीती बातें सब याद हुईं।
हथकड़ी बेड़ियों की तीखी-
झंकार, कर गई सिन्धु पार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

इस महायज्ञ में आहुति का,
जिनका था सर्वोत्तम विधान,
उन पिता-पुत्र नेहरू-द्वय का,
किसको न देश में गर्व-मान।
जिनके आनन्द-भवन में स्थित,
थी कमला निज सर्वस्व वार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

नाहर, वर वीर जवाहर जो,
भारत का ज्योतित शिरो-रत्न,
उसकी अमंद द्युति हर न सकी,
सरकार, थके बन्धन-प्रयत्न।
जन कर जननी भी धन्य हुई,
बलिदान स्वयं बलि बार-बार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

सेनप पटेल ने खेल- खेल,
ली जीत अजीत बारडोली,
लो, सरोजनी योगिनी बनी,
आया वसन्त कोकिल बोली।
भारत- माँ पर माताओं का,
बहनों का तन, मन, धन निसार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

इस तरह काँग्रेस की देवी,
परिवर्तन का भर सुख- प्रवाह,
वह खड़ी सहास, पचास वर्ष,
बीते, पर आगे पड़ी राह।
कहती, है मंजिल अभी दूर,
बढ़ चलो, बढ़ चलो दुर्निवार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

है पुण्य-पर्व, भर विजय-गर्व,
खेलो, खेलो रण की क्रीड़ा,
लौटे प्रगीत, वैभव अतीत,
मिट जाँय कलंक, ग्लानि पीड़ा।
संदेश अशेष देश को यह,
काँग्रेस दे रही बार-बार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

हे बन्धु, उड़ाया जो तुमने,
निःसीम व्योम में कीर्ति- काय,
झंडा अपना- अपना गौरव,
चिर सजग रहो फिर झुक न जाय।
देखो, गिन-गिन तुम पर प्रतिदिन,
है कूटनीति करती प्रहार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार।

पैंतीस कोटि कंठों की द्रुत-
हुंकृति अखेद यह कल्याणी,
फूटे आशायें घोषित कर,
प्लुत अभ्र-भेद शाश्वत वाणी।
जय, मातृ भूमि भारत की जय,
गान्धी जय जागृति-कर्णधार-
जागो स्वदेश, जागो भारत,
उन्मुक्त तुम्हारे रुद्ध द्वार!

(काँग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के सुअवसर पर रचित)

डौंड़ियाखेरा

श्यामल पुण्य-अरण्य-गहन गंगा का तट है,
सम्मुख गत इतिहास और गौरव का पट है।
कण-कण में अभिमान और बलिदान भरा है,
रँगी शहीदों के शोणित से यहाँ धरा है।
रामबख्श ने इसी भूमि पर निज बलि देकर,
किया प्रतिष्ठित स्वतंत्रता जन-जन में उर-उर।
और यहीं, हाँ, यहीं वीरवर बेनीमाधव,
जगा गये हैं शक्ति, स्फूर्ति, साहस, बल अभिनव।
पहने जिनके रक्त-अरुण गौरव की माला,
भरती है यह भूमि भुवन में दिव्य उजाला।
मरण-तीर्थ है विदित अवध की हल्दीघाटी,
बैसों ने दे देह धरा यह पग-पग पाटी।
उस शोणित-उस तप्त रक्त की स्मृति अविनश्वर,
जाग रही है बन्धु, अनल-सी इस धरती पर।
अनतिदूर शोभित मनोज्ञ यह पावन बक्सर,
है जो निर्भय सिंह-कीर्ति का स्तंभ सुदृढ़तर।
त्यागे तृण-से प्राण, बचा अर्गल की रानी,
उनके असि की आज चल रही अमर कहानी।
स्थित हैं यहाँ प्रसिद्ध चंडिका जय की देवी,
थे रण सिद्ध नरेन्द्र सदा जिनके पद सेवी।
निज कुल-तिलक तिलोक चन्द भूपति भट मानी,

यवनों ने नित पिया खंग का जिनके पानी।

ऐसे अन्य अनेक वीर, किस भाँति गिनायें,

ये गंगा बह रहीं, कह रहीं यशः-कथायें।

x x x x x x x

झारखंड इस नर-केहरियों के प्रांगण में,

आओ, आओ, बन्धु, शक्ति-साहस भर मन में।

स्वागत में चिर-शूर-रक्त-सिंचित यह धरती-

अपने गत का भाव-विभव ही प्रस्तुत करती।

पियो, पियो, फिर पियो, विगत गौरव का प्याला,

सिंह-सुवन हो, जाग जगा दो जीवन-ज्वाला।

होकर सहज अभीत, बंधनों पर जय पाकर,

वर लो कीर्ति अशेष देश निज मुक्त बनाकर।।

उन्नाव जिले में गंगा तट पर डौड़ियाखेरा दुर्ग के भग्नावशेष वर्त्तमान हैं। यह क्षत्रियों की एक सुप्रसिद्ध वीर भूमि है। यह बहुत काल तक बैस क्षत्रियों की राजधानी रहा है। १८५७ के ग़दर में कदाचित यह भारतवर्ष का अन्तिम भूमि-भाग था, जहाँ राजा राम बख्श सिंह और राणा बेनीमाधव के नेतृत्व में अँग्रेज़ों से घोर युद्ध हुआ, तभी यह साम्राज्य में मिलाया जा सका।

हल्दी घाटी

ध्वस्त सकल साहित्य, कला, कौशल के भूषण,
त्रस्त देश, उपरक्त धर्म-संस्कृति के पूषण।
अकबर ने साम्राज्यवाद का जाल बिछाया,
जन-जन में स्थिर पारतंत्र्य का भाव समाया।

नष्ट स्वीय साम्राज्य, हुआ अपहृत सिंहासन,
गया सभी, बस रहा एक निज गौरव का धन।
संचित था जो सतत शूर-शोणित से सिंचित,
आभा अकलुष, रहे सूर्य शत जिस से वंचित।

रक्षित था वह अनल-दग्ध सतियों के द्वारा,
जल जल अविरल बनी धर्म की जो ध्रुव तारा।
उसके ही रक्षार्थ हठी जौहर- व्रत-धारी,
लेकर क्रुद्ध कृपाण, हुए रिपु-कानन-चारी।

उसके ही रक्षार्थ हुए क्षत- विक्षत सांगा,
जयमल बलि हो गये किन्तु चित्तौड़ न त्यागा।
वह गौरव भी गया, हाय! तम ही तम छाया,
वही शेष था, मानसिंह ने उसे गँवाया।

तभी-तभी ओ प्रलयमयी तू हल्दीघाटी,
अनलमुखी जल उठी विजय की विधि उद्घाटी।
एक चित्र उस ओर मुगल सेना घिर आई,
नायक स्वयं सलीम, प्रलय रजनी ज्यों छाई।

मानसिंह का क्षोभ अशनि-सा जिसमें जल जल,
करता दुर्दिन सृष्टि-क्रूर उत्पात अमंगल।

और इधर, कुछ चुने हुए क्षत्रिय-भट बाँके,
परिमित भी, सब रुद्र-रोष नयनों में आँके।
काल- सर्पिणी खंग , केतु सा कर में भाला,
प्रति जन प्रति-मन ज्वलित-हुताशन-सा मतवाला।
आगे क्रुद्ध प्रताप, 'महाराणा जय' छाई,
चेतक की गुरु टाप, यवन - दल बीच समाई।
मार्तण्ड-निभ छत्र शिरोपरि शोभित सुन्दर,
उच्चैश्रव- आरूढ़ यथा हों स्वतः पुरन्दर।
हर हर ध्वनि हुई कालिका ने बलि माँगी,
हल्दीघाटी अयुत निशित, असियों में जागी।
अकबर का अभिमान हुआ क्षण में क्षय सारा,
मग्न यवन साम्राज्य, बही शोणित की धारा।
मानसिंह को मिली यदपि जीवन की भिक्षा,
पाई उसने राजपूत- गौरव की शिक्षा।
हल्दीघाटी राजपूत शोणित से रंजित,
पुण्य तीर्थ बन गई अमरता की निधि वन्दित।
झाला की बलिदान-भूमि ओ हल्दीघाटी,
जगा, जगा फिर क्षात्रधर्म की नव परिपाटी।
तू है गत की कीर्ति और भावी की आशा,
वर्तमान में सहज शक्ति, साहस की भाषा।
कहती रह तू सतत ज्वलित बलिदान-कहानी,
गूँजे तेरी सदा सांस्कृतिक-जय की वाणी।
तेरी रज में बचा रहा हिन्दुत्व हमारा,
उठे, उठे वह -देश- धर्म को मिले किनारा!

हल

रे, जग के जीवन का सम्बल,
दो दुबले-से बैलों का हल!

यह किसका आविष्कार प्रथम,
मानवता का चिर-स्रोत सुषम,
जिसने वन-देश किये उर्वर,
धरती सब स-फल शस्य-सुन्दर?

फैले विज्ञान, ज्ञान, कौशल,
बहु, कला, काव्य, शासन के छल;
सच्छास्त्र, धर्म, धन-धान्य विपुल,
धनिकों के हर्म्याराम अतुल;

ये प्रजातंत्र, साम्राज्यवाद,
राज्य की क्रान्ति, आतंक-नाद,
संस्कृतियों के संघर्ष अमर,
शस्त्रास्त्र-प्रखर दुर्धर्ष समर;

सब का परिचालक जो, केवल,
वह छोटा-सा बैलों का हल!

हाँ इसका वाहक जो किसान,
उसने निज शोणित किया दान,
इस जड़ में स्थापित किये प्राण,
इस भाँति विश्व को दिया त्राण!

भूखे थे उनके भरे उदर,
पा अन्न, सदय जन हिंसा-पर;
पाकर कारुण्य, दया ममता,
सीखी वन्यों ने मनुष्यता।

बल्कल को छोड़ बसन सुन्दर,
पहने सुन्दरियों ने तन पर;
कुटियों के उठे धाम सुखकर,
वैभव, विलास, आमोद प्रचुर!

पर, अब तक वैसा ही अविचल,
दो बैलों का छोटा यह हल,
इस में हो सका न परिवर्तन,
देखे पर इसने आवर्त्तन,

जग के, जीवन के, जन-जन के,
सृति के, संस्कृति के, शासन के,

साम्राज्यों के उत्थान-पतन,
विध्वंस, विकास, विनाश-मरण।
इसके कर्षक ने भी अगणन,
पाये प्रहार मृत्यु के-दशन;

वह रुका न किन्तु एक भी क्षण,
स्थिर शक्ति केन्द्र जो, उत्पादन,

चलता है, चला रहा किसान,
उसको न कभी कुछ और ध्यान;
यह चलता ही जाता अविरल,
दो बैलों का छोटा-सा हल!

अयोध्या

असुर-त्रास से धरा शीर्ण चल-दल सी काँपी,
धर्म-ह्रासमय महानिशा अग-जग में व्यापी।
क्रूर प्रपीड़न - जनित आर्ति से पूरित अम्बर,
दलित धेनु, सुर, नाग, यक्ष, किन्नर, भूसुर, नर।
मानव-संस्कृति ध्वस्त, प्रकृति की स्थिति गति बाधी,
रुद्र रोष-सी उठी प्रलय की क्षय की आँधी।
तभी-तभी इस पुण्य-भूमि का भर आकर्षण,
बरसा जीवन राशि-राशि सच्चिदानन्द घन।
वही भूमि यह अवध, वही सरयू तट पावन,
जहाँ उदित रवि हुये राम, अस्तगंत रावण।
मुदित दिशायें हँसी कमल-कलि-सी, अलि भूले,
मिटी भीति, दुर्नीति, प्रीति के कानन फूले।
वेद बचे, चल पड़ीं लुप्त सब मर्यादायें,
हुआ प्रतिष्ठित राम-राज्य विनसीं बाधायें।
राम-राज्य का केतु दिवाकर वह फहराया,
राम-राज्य का धर्म-सेतु सागर पर छाया।
राम-राज्य का यशः-पुंज वह खड़ा हिमांचल,
ज्योतित करते जिसे चन्द्र-तारक-दल अविरल।
राम-राज्य के केन्द्र, धन्य इस पुण्य-धरा पर,
आये हो यदि बन्धु, आज श्रद्धा के पग धर!
तो स्थिर गौरव-पुंज राम का नाम न भूलो,
अपने कुल की कला और अभिमान न भूलो!

अपना पैत्रिक राम-राज्य का दाय सम्हालो,
नष्ट हो रहे देश, धर्म, संस्कृति को पालो।
मिटती है जो नित्य दीन-दुर्बल की सत्ता,
अबलायें लुट रहीं, प्रपीड़न की न इयत्ता।
वही वेदना लिये बन्धु, सरयू की धारा,
स्वागत में है साश्रु, बनी करुणा की कारा !
रोता है नभ और विकल रोती है धरणी,
डूब रही है आज लाज-गौरव की तरणी।
जागो, जागो बन्धु और रामत्व जगाओ,
लक्ष्मण का तप त्याग भरत-अनुराग निभाओ!
रघु, दिलीप का ओज, तेज, पौरुष उठ धारो,
अचल भगीरथ-कीर्ति धरा पर फिर विस्तारो!
उठो, बढ़ चलो तूर्ण-चरण जीवन के रण में,
सिंह-सुवन क्यों रहें श्रृंगालों के बन्धन में?

x x x x x x

सानुकूल श्रीराम, उसी की जय निश्चय है,
उसकी विजय, विभूति, कीर्ति, श्री, सुख अक्षय है।

क्षत्रिय महासभा के ४२वें अधिवेशन में श्री अयोध्यापुरी में पठित।

दीन देश

दीन, दुखियों, दुर्बलों का हाय! देश।
अभ्र-चूड़ किरीट हिमगिरि का मलिन,
छिन्न तारक-हार, रवि-शशि ज्योति-दीन।
सिंधु-गर्जन शान्त, जीवन क्लान्त क्षीण,
राजराजेश्वर रहा यह हाय! देश।

\+ \+ \+ \+

आज वैभव की समाधि बनी यहाँ,
विकल हैं कंकाल ये फिरते जहाँ,
वसन- हीन विपन्न देखा है न अन्न,
मनुज का यह दनुज-ग्रासित कौन वेश?

शिशिर के पाषाण-शर स्वर प्राणहर,
भिन्न करते देह थे वह खिन्नतर,
आज फिर मार्तण्ड-चण्ड-करावली
कर रही निःशेष उनका रक्त शेष!

भूत भावी बन सदा ही साथ है,
नियति के पैरों तले यह माथ है,
है प्रतीक्षा में खड़ी भादों झड़ी-,
वर्ष भर लौटा करेंगे पूर्व क्लेश।

देश की ये विविध छाया-मूर्तियाँ,
मृण्मरण जो प्राण उनकी स्फूर्तियाँ,
दुर्दलित पीड़ित यही अपने किसान,
दीन हैं ये, और इनका दीन देश।

खण्डहर या गृह कि भूतावास है।
दैन्य के आक्रीड़, पीड़न- हास हैं
शीर्ण थूनी, जीर्ण छप्पर,दीर्ण छत,
मच्छरों के, मूषकों के ये निवेश।

और, गृहिणी छिन्न मोती की लड़ी,
चीथड़ों से झाँकती लज्जा खड़ी,
शुष्क, कम्पित अधर, कृश, अति रुग्ण तन,
दैन्य - दुःशासन विकर्षित रुक्ष केस।

स्तनों से कीट से चिपटे अटल,
चूसते शोणित, गया है दूध जल,
अस्थियों के ढेर, शिशु शव मात्र हैं,
देश को आशा, न अब अवलम्ब लेश।

वह बुभुक्षित बालकों की मण्डली,
एक रोटी के लिए क्या खलबली,
ताकती हैं चील, कौए भी चपल,
शोक! टुकड़ों के लिये यह घोर द्वेष!

दीन का यह छीनता है अन्न कौन?
कौन?- उत्तर है, रहेंगे किन्तु मौन,
न्याय होगा? न्याय वह अन्याय है,
एक बस विश्वेश पर विश्वास शेष।

अमीनाबाद
(मुक्त-छन्द)

विस्तृत, प्रशस्त राजहाट लखनऊ का,
जीवन नगर का,
शोभित अमीनाबाद-
संघटित घन-अट्टमालिका जहाँ की
दिव्य, वैभव के स्वप्न में
ऊर्ध्व-दृग हैं खड़ी।
फैली हैं बड़ी-बड़ी दुकानें
भिन्न वर्ग की,
भोग के, विलास के, साधन प्रसाधन के
जकड़े पड़े हैं जहाँ;
विविध प्रकार के फल,
स्वादु भोज्य अन्न, मीठे और चाट के प्रसार बहु-
तृप्त कर घ्राण,
खींच लेते, मन-प्राण को।
होटल बड़े-बड़े, बैंकें भी साथ-साथ,
अन्य धनिकों की, वणिकों की बड़ी कोठियाँ,
समवेत खींचती हैं नेत्र नव आगतों के।
शाम होते
खुल बिजली की बत्तियों की अवली में
रम्य भाग वह,
मन्द करता है नित्य

उडु–दीप्त नभ की प्रिय–प्रभा।
आती हैं घूमने इसी समय,
मुसकाती रँगे हुये होंठों में,
साड़ियों में भड़कीली,
खुशबू उड़ाती हुई सेन्ट की
पेन्ट की अप्सरायें,
दायें–बायें युवक
सजग, परछाईं ज्यों,
क्षण–क्षण टाई और बालों को सँभालते।
घूरते हैं गुण्डे खूब,
कुत्सित उस क्रूर दृष्टि वाले
काले मुख पर,
डोलती हैं काली–काली जुल्फें
डूबी तेल में,
झाँकते हैं काले–काले मोटे तन
धुली मखमल से।
झलक दिखाते हैं, मोटरों में
प्रोफेसर, डाक्टर, अन्य भी धुरंधर समाज के
सज्जिता निज–निज पत्नियों के साथ में–,
साड़ियाँ क़ीमती ख़रीदतीं वे,
सामग्रियाँ फैशन की दूसरी।
ग्रामोफोन और रेडियों का स्वर–समारोह
गूँजता है ऊहापोह
सब ओर वायु में,

मिलकर दौड़ती मोटरों, सवारियों के
तुमुल कोलाहल में
बनता बड़ा विचित्र घर्प-कर्प।
और आते-जाते यहाँ
बड़े बड़े राजा, महाराजा,
सरदार, अफसर सरकार के-
मंत्री, महामंत्री, उच्च न्यायाधीश,
धर्मवीर, दानी लक्ष-लक्ष के,
महामान्य नेता भी,
दीन-दुखियों के, दलितों के ख़्यात त्राता भी।
यहीं, मुख्य पथ पर
मेवे और फलों के ढेर हैं लगे जहाँ,
और महावीर जी के मन्दिर के पास में,
मनों है प्रसाद जहाँ मंगल को चढ़ता,
जाड़ों की रात में, ग्रीष्म के दिवस में,
सिकुड़े रहते हैं खड़े
पड़े, कुछ बैठे भी
नग्न-काय, शीर्ण-काय, नेत्र-हीन,
पद-हीन, छिन्न-बाहु,
चल सकते नहीं, देख सकते नहीं,
खिसट रहे हैं खुली भूमि पर
कीट जैसे
किम्वा राह नापते हैं,
कम उम्र वाले किसी लड़के की

लकड़ी के सहारे से–
भिक्षुक बहुत से;
पास बस
मिट्टी या टीन का टूटा हुआ प्याला एक।
पेट पर हाथ रख, कहते पुकार–
'बाबू जी सरकार,
पैसा दो, धेला दो,
भूखे हैं दीन हम,
रुतबा बढ़े आपका,
मालिक हैं अन्नदाता!'
सूखी हुई छातियों में,
हड्डियों के सूखे लघु ढेर एक
बच्चे को चिपटाये
कहती है अर्ध–नग्न नारी–
''जिला लो इस बच्चे को बाबू जी।
लीन होता क्षीण पर स्वर यह
दीनों का
दृप्त अट्टहास, सुख–दृप्त जन रव में,
ऊँचे उठता नहीं।
भाग्य जगा
टूटा भी बतासा यदि पा गये,
महावीर स्वामी के प्रसाद का,
परम दयालु बड़े सेठ जी के दान में।

भारतीय मुसलमानों के प्रति

श्रेष्ठ दीन के दीवानों, ओ मुसल्लिमे ईमान!
आजादी के अभिमानी, ओ कुर्बानी की शान!
भारत-जननी ने तुमको निज स्तन्य कराया पान,
जल, फल, अन्न दिये तुमको भी सब के सदा समान।
सहज तुम्हारे ओज, तेज, पौरुष पर था अभिमान,
चिर-स्वतंत्र तुम सह न सकोगे बंधन था यह ध्यान।
आज आततायी ने माँ का किया पुनः अपमान,
देश धर्म के बलिदानी जो उनका है आह्वान।
चलो, बढ़ चलो, आज तोड़ दें बन्धु दासता-पाश,
कभी परस्पर निपटारे का होगा ही अवकाश!

\+ \+ \+ \+

किन्तु हाय ! सुना आज विश्वस्त न उस पर कान,
मातृभूमि का भेद बनाओगे तुम पाकिस्तान?
कैसा पाकिस्तान? प्रकट यह पशुता का उच्छ्वास,
जहाँ बन्धु से बन्धु भिन्न हो, वह ध्रुव नरक-निवास।
यह कुसमय है अभी न छेड़ो यार बेसुरा राग,
सावधान तुम, लग न जाय माँ की अस्मत में दाग।
कभी तुम्हारे हो न सकेंगे अरब और ईरान,
तुम इसके हो, और तुम्हारा प्यारा हिन्दुस्तान।
यही ईद है, यह होली है, मचे प्रेम का फाग,
जगे करोड़-करोड़ दिलों में आजादी की आग।

हिमालय

अनस्तित्व की महानिशा में
सृष्टि-स्वप्न से हे द्युतिमान,
किन महिमामय की पलकों पर,
सहसा तुम खुल पड़े अजान?

किस अज्ञात देश में विकसित,
पावन तन असीम अभिराम,
प्रलय-पयोनिधि की लहरों पर,
रजत-पोत सा तिरा प्रकाम?

तुम्हें देखकर दिशा-दिशा में,
द्रुततर हुआ तिमिर-अपसार,
सुप्त प्रकृति में चेतनता का,
क्रमशः सहज-सरल संचार।

प्राची के नभ में सुवर्ण-छवि,
रवि के शत-शत कर अवदात,
हिममय शृंगों पर भृंगों -से,
वे गा उठे प्राथमिक प्रात!

तुम्हें पिन्हा कर स्वीय करों से,
सोने का मुकुटालंकार,
जगती के पहले आतप ने-
खोले संसृति के बहु द्वार।

जीवन के नव हृतकम्पन-सा,
डोला शून्य चीर पवमान,
पूरित था अणु-अणु कण-कण में,
किस का जागृति का आह्वान?

जाग गये सब व्योम-अंक पर,
ग्रह, उपग्रह, शशांक, तारा,
उदधि-हृदय पर बिछल पड़ा फिर,
ज्योत्स्ना का चुम्बन प्यारा।

मधुर तुम्हारा अवलम्बन ले,
सिन्धु-सेज पर फिर धरती,
नव परिणीता-सी ब्रीड़ा-वश,
जागी सुप्ति-श्रान्ति हरती।

विशद तुम्हारे ही प्रांगण के,
एकाकीपन को कर भंग ,
चिन्ताकुल पहले मानव की,
फैली प्रबल विचार-तरंग।

उन्हीं विचारों की कृति-प्रतिकृति,
निखिल संसरण की धारा,
फूटी इच्छा - क्रिया- ज्ञानमय,
मुखरित हुआ शून्य सारा।

अखिल ज्ञानमय आदिनाद जा,
शाश्वत ब्रह्म- प्रतीक-महा,
गूँज उठी उस पुण्य-प्रणव से,
गिरे, तुम्हारी गहन गुहा!

महर्षियों की तप-समृद्धि-सी
अगणित यज्ञों की ज्वाला,
पहन अजस्र प्रकाशमयी थी,
यह उत्तुंग श्रृंग- माला।

चिर सच्चिदानन्द-घन के
वर्षण से ये वन रहे हरे,
ज्ञानामृत-सरितायें निकलीं
जीवन के युग-कूल भरे।

वेद, उपनिषद, आरण्यक,
मुनियों के मनन, गहन संवाद,
अविनश्वर-श्री आत्म-ज्योति,
फूटी थी यहाँ, रहा कुछ याद?

ज्योतिर्मय उर के उत्सों से,
उत्सवपूरित पुण्य-जला,
फूटीं सिन्धु, जाह्नवी, यमुना,
प्रति-गति बनी भूमि कमला।

उसी शस्य-श्यामल धरती पर,
संस्कृति का उत्कर्ष महान,
देखा है तुमने श्रुति-सेवित,
आर्य- धर्म का अभ्युत्थान।

अचल तुम्हारे सानुदेश पर,
अरुणकेतु वह लहराया,
जिसकी छाया में धरणी ने,
अविचल राम-राज्य पाया।

जिसकी छाया में आर्यों ने,
बाँधा गोपद - सा सागर,
पवन-मार्ग पर चढ़, सवेग बढ़,
धर्षित किया नील अम्बर!

यहीं तुम्हारे पाद- प्रान्त में,
उमड़ी गौतम की करुणा,
निज मानवता की विभूति वह,
तापित जीवन की वरुणा!

अश्वमेध-विक्रम विक्रम-से,
नरपालों की कीर्ति धवल,
इन तुषार - शोभी शृंगों पर,
लिखी हुई है आज अटल!

इन दरियों में किन्नरियों की,
बरस रही थी गीति-सुधा,
वही तुम्हारी गौरव- गाथा,
प्लावित थी जिससे वसुधा!

वही देव- बधुओं के कूजित,
कंठों का था स्वर- शृंगार,
जिसकी लय पर अप्सरियों के-
बजते थे नूपुर पद-चार!

वही समीरण की वीणा पर,
सजा चन्द्र-किरणों के तार,
दिक्कुमारिकायें मृदु-स्वर भर,
तुम्हें सुनातीं बारम्बार!

किन्तु अचानक कहाँ खो गया,
मणि-रत्नों का विगत महान,
अपने वैभव की समाधि- से,
गिरि, तुम भी मृतवत् हतज्ञान।

तन्द्रा के इस तिमिर- लोक में,
उस अतीत का स्वप्निल ध्यान,
क्या न कभी फिर कर पायेगा,
तुमको जागृत, हे म्रियमाण ?

सती उमा के तपः - पुंज से,
व्याप्त हुआ जल, थल, आकाश,
यही तुम्हारा कान्त - क्रोड़,
उन दयामयी का था आवास!

उस तप की पावन-ज्वाला की,
स्मृतियों का ले ज्वलित समाज,
भर लो, भर लो निज प्राणों में,
जीवन-जागृति हे गिरि आज!

भूप भगीरथ का दृढ़ निश्चय,
नियति-विजय, वह अमर प्रयास,
वह गंगा-आनयन, नयन में मनमें
भर लो वह उल्लास ।

अर्जुन का अपराजित तप-श्रम,
वह किरात-जय का उत्साह-
उस स्मृति की आग्नेय-शिखा ले
कर दो तन्द्रा- कानन दाह !

निखिल तपाश्रय, हे महिमामय,
हे जग के गुरु, हे गिरिराज,
टूटो द्रुत जग की जड़ता पर,
रख लो अपने गत की लाज!

उन्नत ज्योति-स्तम्भ धर्म के,
भारत के प्रहरी विख्यात;
छोड़ो तम-संकुल निद्रा यह,
आने दो आलोक प्रभात!

अविभाज्य अखण्ड अनादि देश

यह हिन्दु-जनों का जीवन-धन,
सब इस पर न्यौछावर तन-मन!
यह हिन्दु-रक्त-सिंचित कण कण,
पावन रे, इसका प्रति रज-कण!
आराध्य यही, यह आराधन,
चिर साध्य और अविचल साधन!
षड्ऋतुएँ करती हैं रंजन,
सागर करता है पद - वन्दन;
नहलाते हैं उठ नभ के घन,
शशि-किरणों का चढ़ता चन्दन!
यह हिन्दु-जनों का आदि-देश,
अविभाज्य अखंड अनादि देश!
यह हिन्दु-धर्म का धाम प्रथम,
यह आर्य-सभ्यता का उद्गम,
यह वेदों का संगीत चरम,
उपनिषदों का वाणी-विभ्रम,
ऋषि-मुनियों का संचित तप-श्रम,
संसृति का मंगलमय उपक्रम!
यह निखिल धरा का तीर्थ परम,
अपहृत इससे जग का भ्रम-तम!
इसमें प्रभु स्वयं रहे हैं रम,

यह विश्व-विजय को सहज क्षम!
इसकी महिमा- गरिमा अशेष,
अविभाज्य अखंड अनादि देश!
यह ज्योतिर्मय, यह अविनश्वर,
नत स्तव में नित सब सचराचर!
इसके नयनों के इंगित पर,
खस-खस पड़ते उड़, शशि, दिनकर!
कम्पित था निखिल भुवन थर- थर,
शरणोत्सुक रहते थे सुरवर !
पौरुष अनन्त, विक्रम अशेष,
अविभाज्य, अखंड, अनादि देश!
यह हिन्दु-जाति की कृति सुन्दर,
यह हिन्दु-जाति की कीर्ति अमर!
यह हिन्दु-कंठ का गर्ज्जित स्वर,
मुखरित जिससे अवनी-अम्बर!

विजया

इन ज्वलित क्षणों में जीवन के, ओ अनलमयी तेरा स्वागत!
शत धूमकेतु-सी स्मृतियों का संसार लिये तेरा स्वागत!

वह प्रलय-पुंज-सी जागी थी छवि तेरी ही सागर तट पर,
घन-सा अजस्र शायक-वर्षण, नाराचों का ज्या-स्वन दुर्धर,

सुभटों की वज्र-घोर-हुंकृति,जिसमें जग की धृति दीन हुई,
उस ज्वाला में जल-गल प्रति-पल लंका सोने की क्षीण हुई।

वह राम-बाण की शिखा प्रबल, जिसमें रावण खल शलभ बना,
अविनश्वर की उसकी आभा में अपसृत संसृति का तिमिर घना!

तब तेरी ही मधु-स्मिति फूटी उस शोकमयी के आनन में,
उपरक्त रही शशि-रेखा सी जो तपस्विनी अशोक वन में।

फिर आर्य-जाति का शौर्य-सूर्य समुदित जग में सब ने देखा,
विजये, इन सिन्धु तरंगों पर अंकित है अपनी जय-लेखा!

फिर तेरी ही मधु-छाया में वर लिया ग्रीक-लक्ष्मी* का कर,
उस चन्द्रगुप्त ने निज असि से सेल्यूकस का मद-गौरव हर।

'चाणक्यनीति जय मौर्य्य-रीति', यह आर्य्य जाति की गीति अमर,
अम्बर के निभृत निलय में सुन, काँपा मृत अलक्षेन्द्र* थर-थर।

पश्चिमी एशिया के सिकन्दर के उत्तराधिकारी सुप्रसिद्ध ग्रीक नरेश सेक्यूकस की कन्या हेलेना। भारतीय महासम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से पराजित होकर सेल्यूकस ने अपनी सुन्दर कन्या उन्हें आधे साम्राज्य के साथ प्रदान की थी।

• सिकन्दर

फिर धरती पर गो-द्विज-पीड़क शक-शोणित-अम्बु अथाह बहा,
विक्रमादित्य का पौरुष वह, विजये तेरा उल्लास अहा!

अम्बर-चुम्बी हिम शृंगों से "जय हिन्दु धर्म की जय" छाई,
कवि-कुल-गुरु[१] की वर-वीणा ले, वाणी ने ध्वनि यह दुहराई

चलता है जल-थल अम्बर में शक-अरि के विक्रम का शाका,
जग-जयिनी उस उज्जयिनी में फैली जिसके यश की राका।

वह स्कन्दगुप्त की विजय-कथा, दर्पित हूणों का उन्मूलन,
प्रतिपल प्रवृद्ध दावाग्नि यथा प्रशमित कर देता है उठ घन!

हूणों का महा-मिहिर[२] डूबा आर्यों के बल के प्लावन में,
निज पुण्य -प्रभाकर[३] उदय हुआ थानेश्वर के प्रिय प्रांगण में।

सम्राट हर्ष के शासन में इस धर्म-धरा के भाग जगे,
विजये, तेरी मधु-मदिरा पी जन-जन के उर के राग जगे!

रच मेद मांस से अरबों के बाप्पा[४] ने विजय-स्तम्भ निर्जर,
चित्तौड़ चरण में झुका दिया इस्लामी प्रथम प्रवाह प्रखर।

पर पृथ्वीराज के साथ तुम्हें, हा ! विजये अन्तर्हित पाया,
हा! हा! कैसी दुर्भाग्य-निशा, कैसा यह दारुण तम छाया!

१ महाकवि कालीदास

२ हूणों का दुर्धर्ष नेता मिहिरगुल अथवा मिहिर कुल। इसके अत्याचारों से उत्तर भारत पीड़ित हो उठा था। अन्त में सुप्रसिद्ध नरेश यशोधर्म ने उसे पराजित किया और भारत से हूणों की जड़ उखाड़ दी।

३ बैस-साम्राज्य का संस्थापक थानेश्वर का सुप्रसिद्ध नरेश प्रभाकर वर्द्धन।

४ चित्तौड़ राज्य का संस्थापक और शीशोदिया वंश का मूल पुरुष जिसने अरब के मुसलमानों के प्राथमिक आक्रमणों को भारत की सीमाओं से बाहर रक्खा। यह भी कहा जाता है कि इसने एक प्रसिद्ध मुसलमान नरेश को पराजित करके उसकी कन्या का पाणिग्रहण किया था।

वह तिमिर मिटा, तू जागी फिर पद्मिनी की चिता ज्वाला ले,
गोरा, बादल, जगमल, पत्ता के मुंडों की जयमाला ले।

साँगा के शोणित- उत्सों से रक्ताक्त-कलेवर तू जागी,
राणा प्रताप से तूने ही स्वातंत्र्य-यज्ञ की बलि माँगी।

मेवाड़-केशरी के कर की बरछी मुगलों का काल बनी,
असि मान सिंह के मुँह-मसि-सी-हतहिंदु-जाति की ढाल बनी

छत्रपति शिवा का गैरिक-ध्वज नव उपालोक-सा अमल उआ,
औरंगजेब-निष्फल, छल-बल-लख, दिवस कोक-सा विकल हुआ

उस महाबली के उद्भव के दव से देहली का दिल दहला,
झंझानिल-सा उसमें भीषण गोविन्दसिंह का रोष मिला।

फिर राजसिंह की राजनीति, श्री छत्रसाल की युद्ध कला,
इन आवर्तों में मूर्छित हो तिल-तिल मुस्लिम साम्राज्य जला।

बाजी चढ़ बाजीराव बढ़ा, उसको अन्तिम आघात दिया,
अवशेष मुगल बल-वैभव भी कर भस्म-शेष निःशेष किया।

वह हिन्दु-धर्म का विजय-पर्व, वह पुनः हिन्दु साम्राज्य उदय,
वह अभिनव हिन्दु-राष्ट्र-रचना, आंग्रे[१] का आंग्ल-दलन निर्भय।

विजया वह तेरी माया थी, नवयुग का स्वप्न स्वर्ण सुन्दर,
आकर धीरे से चला गया, विद्युत-गति जन-मन कर भास्वर!

१ मराठों के सुप्रसिद्ध जल-सेनापति कान्दोजी आंग्रे ने अंग्रेजों और पुर्तगालों की सम्मिलित जल-शक्ति का सर्वनाश कर दिया था।

झाँसी की रानी ने यद्यपि असि-धारा में फिर नहलाया,
पर सत्तावन में शूरों ने तुमको तो रूठी ही पाया।

अब भी रूठी हो हम विजये, शोणित का अर्घ्य सजायेंगे,
प्राणों की पावन बलि देकर, अपने शिर-सुमन चढ़ायेंगे।

बढ़ चरणों में चढ़ जायेगा अपना अभिलाषाकुल जीवन,
वरदे, हम कर देंगे अर्पित तव सेवा में तृण-सा यह तन।

जागो जन-जन में, तन-मन में, नयनों में उल्का-सी जागो,
उर-उर का विजड़ित तन्द्रा में भैरव-गर्जन भरती जागो।

इन ज्वलित क्षणों में जीवन के, ओ अनलमयी तेरा स्वागत,
शत-धूमकेतु-सी स्मृतियों का संसार लिये तेरा स्वागत।

गीत

रक्त-रंजित हाथ तेरे!
सोच तो ओ हिंस्र-पशु,
ओ नाश के निष्ठुर चितेरे!

तू मनुष्य-मनुष्यता के नाम को तूने लजाया,
दीन के अस्तित्व को भी हाय ! संकटमय बनाया,
अन्न छीन विपन्न का नव नित्य-नित्य सुयश कमाया,
और फिर भी दानवी-लिप्सा तुझे दिन-रात घेरे!

हो रहा है प्रलय पल-पल आज जल-थल-गगन-चारी,
उगलता है गरल, पावक-पुंज, नभ ज्योत्स्ना-बिहारी।
ताण्डयित उन्माद, थर-थर काँपती है, सृष्टि सारी,
विगलिता करुणा, तथापि न आर्द्र निर्मम प्राण तेरे!

शक्ति हो तेरी, परन्तु अनन्त तेरी है न सत्ता,
विश्व में प्रति बात की प्रतिघात की निश्चित इयत्ता,
जो नियामक निखिल का, पहचान तेरा भी नियन्ता,
नियति का नेता-उसी के जन्म, जीवन, मरण चेरे!

करबाल

अयुत अर्क-कर-अमल, मरुत-गति-मुक्त-विलासिनि,
धूमकेतु - सी भीतिकरी, दुर्गा - कर - वासिनि।
बाड़व-दव-सी अधम-असुर- शोणित की प्यासी,
जय काली - करवाल, अनल - उल्का- उल्लासी।
चर्म चारु वर - वसन मेद- मज्जादिक - अशना,
मृगपति- दंष्ट्रोज्ज्वला प्रलय-सी क्षय - सी रसना।
भुज-भुजंग-अंगना, समर - कानन की ब्याली,
शौर्य्य-सुरा पी दृप्त, मृत्यु - भीषण मतवाली।
हर - शिर-मंडन- चन्द्रकला- विमला वरदात्री,
धर्म, धरा, धन, धाम, देश, संस्कृति की धात्री।
श्री नृसिंह-नख-सिखा-रुचिर, सुर-अरि-उर तक्षक,
विष्णु-चक्र-सी प्रभापूर्ण अति - संसृति - रक्षक।
शिव -त्रिशूल- विकराल, काल-विद्युत-द्युतिशाली,
रुधिर-स्राव-संभवा शिवा - सर - शोण मराली।
रण-भू-भूषण, तिमिर-हरण नित उदित उषा-सी,
शूर- सुभट- हित महातीर्थ वरदा - वर काशी।
वीर- बाहु आश्रिता असि-लता जन-मन-हारी,
तेरी ही शिर- सुमन- माल पहने त्रिपुरारी!
तू ज्वलन्त बलिदान-वलित, इतिहास-विधायक,
क्रान्ति-व्रती, चिर-शान्ति-कृति, अमर-कथा तू,

कायर, क्रूर, कपूत, अनय-रत-हृदय- व्यथा तू!
ये मशीनगन, बम्ब, टैंक, आयुध वैज्ञानिक,
सब अधर्म की सृष्टि, ध्वंस की छलना मायिक!
खड्ग किन्तु तू सतत नीति-रक्षण में तत्पर,
बल-पौरुष की माप, दीन-दलितों की दुख-हर।
लख कर तेरा रूप काँपते भूप प्रजाशन,
खस पड़ते हैं मुकुट, उलट पड़ते सिंहासन।
तेरी प्रतिभा-प्रभा देख प्रतिभात धरा पर,
हो जाते भय-भ्रान्त अनिल, गिरि, सागर, अम्बर।
वन्दनीय अभिनन्दनीय आराध्य सदा तू,
ऐ त्रिनयन की नयन-वह्नि, है साध्य सदा तू।

वीर-बाहु

ये कुलिश-कठिन, यमदण्ड-चण्ड, हैं परिघ-घोर तेरी बाहें!
ये खोल चुकीं रे, जीवन की जय की जग में अगणित राहें!

ये तोल चुकी हैं कन्दुक-से, सब विन्ध्य, त्रिकूट, मेरु, मन्दर,
ये सुखा चुकी हैं, प्रलय-क्षुब्ध, आलोड़ित, उन्नत शत सागर!

ये ध्वस्त कर चुकीं बारबार रवि-शशि-उडु-गहन व्योम-कानन,
हे वीर, अतल तक अंकित है इनके बल-पौरुष का घर्षण।

ये तोड़ चुकीं हैं अमित-ओज दिङ्नागों के मद-पूर्ण हृदय,
ये फोड़ चुकीं लघु-भाण्ड-सदृश ब्रह्माण्ड अनेक असीम अजय।

इनके संघर्षण में जगते पावक, पवमान, वज्र - गर्जन,
वृन्तच्युत से चू पड़ते हैं कर्षण में अशनि, केतु, बहु घन।

इनकी छाया में पलता है गत-त्रास शक्र का सिंहासन,
मन्दार-सुमन ले करती हैं सुर-सुन्दरियाँ इनका अर्चन।

ये भार-धारिणी धरणी की, ये शौर्य्य-सिन्धु की शक्ति-तरी,
दुख-दग्ध, दलित की, पीड़ित की, हैं शोकित की सन्ताप हरी।

ये धर्म-वर्म-सी गो-द्विज की, श्रुति के पथ की करतीं रक्षा,
दानव-कुल-दव सी, माधव-सी, अरि के उर को नय की शिक्षा।

ये शूल, परश्वध, पट्टिश, असि, धनु-शायक की आश्रय-दात्री,
साहस अनन्त, पौरुष अशेष ले विश्व-विजय-पथ की यात्री।

इन बाहों का जब पाती हैं दिग्बधुयें पुलकित आलिंगन,
उस मधु-क्षण में ही होता है जग में समर्थ साम्राज्य-सृजन।

ये मिटा चुकी श्री सीता के जीवन का राक्षस-त्रास महा,
ये रचा चुकी है कृष्णा के केशों का शोणित-स्नान अहा।

ये उग्रसेन को तोड़ चुकीं वह कंस-कठोर क्रूर कारा,
ये सुधा-सलिल से सींच चुकीं कुंती के उर का मरु सारा।

मेवाड़-भूमि के प्रति-कण में जागृत है इनकी अमर कथा,
शिवराज-केसरी की धृति ये, औरंगजेब की हृदय-व्यथा।

ये धर्म-धरा का अवलम्बन, ये मातृभूमि की हैं आशा,
लिखती हैं अपने विक्रम की, यश की नित महिमामय भाषा।

फूँकेगी पांचजन्य ले ये जब जागृति का आह्वान प्रखर,
प्रतिजन में, मन में, जीवन में कर देंगी गीता-स्वर भास्वर।

इस धर्म-क्षेत्र के, भारत के सौभाग्य-सूर्य्य का पुण्य-उदय,
होगा वह, जिसमें क्षय होंगे सब दुरित-दोष-दुख-दास्य-अनय।

ये शार्ंग-समर्थ, पिनाक-उग्र, गाण्डीव-प्रबल तेरी बाहें,
हे वीर मिटा दे अग-जग की चिर-संचित वंचित की आहें।

*यह कविता मेरे बहु-विध परम पूज्य लाल साहब श्री महेश्वर बख्श सिंह जी रेवान (राज्य) को सादर समर्पित है।

गीत

भारत जय जय जय हे!
हिम-गिरि -उन्नत उदार,
सागर- वलयित अपार,
श्रुति-स्मृति-ओंकार-सार,
भारत जय जय जय हे!

हिन्दू-जन-सुकृति-कीर्ति,
हिन्दू -जीवन - स्फूर्ति,
हिन्दू - उर- मधुर-मूर्ति,
भारत जय जय जय हे!

श्री प्रताप जयन्ती

अर्यमा ने अंशु, पुरहून ने प्रताप-पुंज,
मुदित महान हो निछावर चढ़ाया था।
मंगल मनाया था स्वतंत्रता ने मोद-युत,
वीरता ने कष्ट-पालने में दुलराया था।
शक्ति ने कृपाण-संगिनी का था विधान किया,
सिंह-शावकों ने उन्हें खेलना सिखाया था।
प्रकृति-प्रिया ने अभिनन्दन किया था, जब
भारत-धरित्री ने प्रताप-पुत्र जाया था।

राना वेनीमाधव

बैस - वंश - अवतंस, बैसवारे का भूषण,
सत्तावन का ग्रीष्म - चंड वृष - दुःसह पूषण।
बेनीमाधवसिंह वीरता का गर्ज्जित - घन,
बरस गया रे, देश जाति पर जीवन-जीवन।
शंकरपुर से उठा, उमड़ सेमरी तक आया,
घेर डौड़ियाखेर, बढ़ा बकसर पर छाया।
ले कराल करवाल काल- विद्युत- सी कर में,
रिपु-शोणित का सिन्धु किया प्लावित पल भर में।
बेगम की निज प्रबल बाहुओं से कर रक्षा,
निःशरण को दिया त्राण- प्राणों की भिक्षा।
अन्य अनेक विपन्न पराजित जन दिशि-दिशिके,
पहुँचे सब नेपाल सुरक्षित उस की असि के।
दे सहर्ष स्वातंत्र्य-यज्ञ में निज बलि पावन,
चुका दिया सब जाति-धर्म का, धरती का ऋण।
उसकी कूँजित-कीर्ति- सदृश प्रवाहित हैं गंगा,
कहतीं कृति की अमर कथा नित पुण्य-तरंगा।
पाकर निरवधि उसे राष्ट्र ने गौरव पाया,
वह प्रताप था, अवध अपर मेवाड़ बनाया।
बेनीमाधव ! वीर ! रहो प्रति जन, प्रति मनमें,
ध्रुव-तारक-से उदित जाति के जीवन-रणमें।

• अवध के अन्तिम बादशाह वाजिदअली शाह की बेगम हज़रतमहल और पुत्र बिरजिसक़दर जो गदर में पराजित होकर नेपाल भाग गये थे। इस विपन्नावस्था में इनके प्रमुख रक्षक राणा बेनी माधव ही थे।

बन्दा वैरागी[१]

गोविन्द सिंह का रोषानल,
जल उठा प्रलय-भैरव वन्दा।
रे, क्षार मुगल दल-वैभव-बल-
इस्लामी-शासन का फन्दा।
गुरु-पुत्र-वधिक का हृदय-रक्त,
हो भीम-भयावह पान किया,
पंजाब-भूमि-पांचाली ने,
उसमें ही अवभृथ-स्नान किया।
भीषण उसकी असि ने छीना,
सूबा सरहिन्द शीश क्षण में।
गुरु -पत्नी का हिय-घाव भरा,
गरजा नृसिंह-सा रण-वन में।
देहली के अन्तःपुर में सुन
वह गर्जन हरम अनाथ हुये,
खग-पोतों-से नभ के तरु से
तारागण-तरणि अनेक चुये।
जो ध्वस्त हुये थे देवालय,
मन्दिर असंख्य, मूर्तियाँ विपुल,
थे भस्मीकृत श्रुति, स्मृति, पुराण सब
धार्मिकग्रन्थ - धरा आकुल।
विप्रों का वध, नारी-धर्षण,
रक्षित थी किस की लाज कहाँ,

१ गुरु गोविन्द सिंह के शिष्य पंजाबी वैरागी माधोदास। मृत्यु से पहले गोदावरी के तट पर गुरुजी की उससे भेंट हुई थी। गुरुजी ने उसे अपने अधूरे काम को आगे बढ़ाने के लिये अपनी तलवार दे कर पंजाब भेजा। माधोदास गुरु का 'बन्दा' बना। पूरबी पंजाब पहुँच कर बन्दा ने एक फौज जमा की और सरहिन्द पर धावा बोल दिया। फौजदार वजीरखाँ को मारकर उसने गुरु गोविन्द सिंह के पुत्रों के कत्ल का जी खोल कर बदला लिया।

यवनों के क्रूर निपीड़न से
आतंकित कण-कण देश रहा।
पैशाचिक उन आघातों से
हिन्दू-जन- जीवन मुरझाया,
वह हँसा, कमल-सा विकसा,
जब बन्दा का शौर्य-सूर्य पाया।
मस्जिद कुरान पर फिर उसका
प्रतिशोध वज्र बन कर टूटा,
वह क्रुद्ध केसरी मुस्लिम-छल-
बल पर कृतान्त होकर छूटा।
उसने स्वजाति के 'कण्टक को
बढ़कर कण्टक सा; काढ़ लिया,
दुर्दलित प्रपीड़ित दीनों ने
उसकी बाहों की आड़ लिया।
इस्लाम-हृदय अंकित है
उसके पौरुष का अंक विषम,
'वैरागी बन्दा आया' सुन
सो जाते मुस्लिम-शिशु शव-सम।
बन्दा वैरागी ! जागो फिर,
हत हिन्दू-जीवन में जागो,
उठ देश-धर्म के अरियों से,
माँगो प्रतिशोध-रक्त माँगो।

• गुरु गोविन्द सिंह के दो पुत्र फ़तह सिंह और जोरावर सिंह सर हिन्द के सूबेदार वज़ीर खाँ द्वारा इस्लाम न ग्रहण करने के कारण निर्दयता-पूर्वक दीवाल में चुनवा दिये गये थे।

गीत

भारत हिन्दुओं का देश,
वेद की धात्री धरा पंजाब की सविशेष।
गंड शुचि काश्मीर - मंडल,
पाद - पद्म पुनीत सिंहल,
उदधि - हिमगिरि–गहन अविकल,
आर्य राष्ट्र अशेष।
बंग, अंग, कलिंग, उत्कल,
मगध, चेदि दशार्ण -, कौशल,
सिंध, राजस्थान, गुर्जर,
महाराष्ट्र प्रदेश।
आन्ध्र, तमिलनाडु, केरल,
कपिश -, कर्णाटक महाबल,
हिन्दुओं की कीर्ति–कृति सब,
अमल अचल सुदेश।

प्रतिपदा

काव्य संग्रह

कवि
कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
बड़ौदा विश्वविद्यालय, बड़ौदा

वितरक : बंसल एण्ड कं०
२४, दरियागंज, दिल्ली

प्रकाशक :
रघुवीरशरण बंसल
संचालक,
साहित्य संस्थान, दिल्ली

© कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

मूल्य
४.०० रुपये

फरवरी १९६०

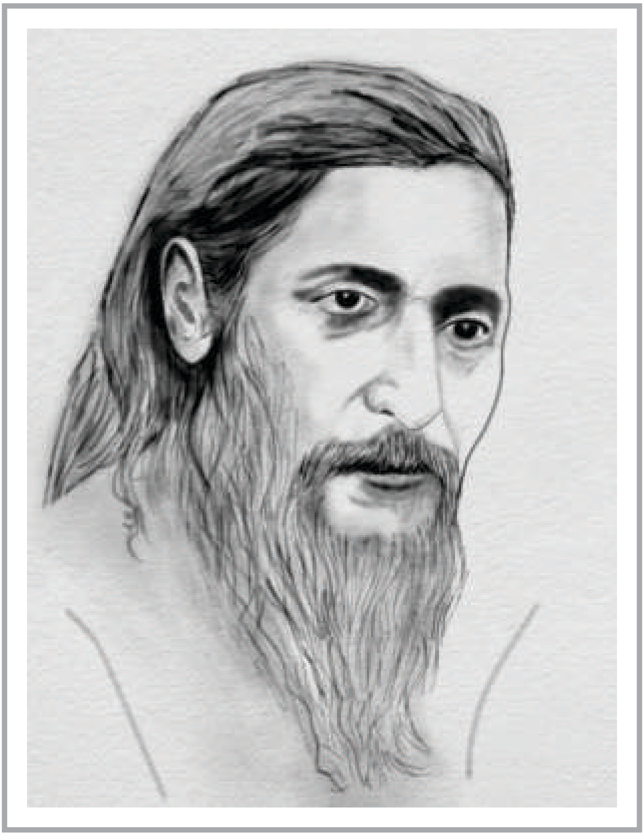

संत महाकवि निराला

समर्पण

जिनका प्रतिपद क्रान्ति की सृष्टि
और
संस्कृति की पुष्टि करता रहा है,
उन्हीं संत–महाकवि निराला को
उनकी
बासठवीं वर्षगाँठ के अवसर पर मेरी यह
'प्रतिपदा'

उपोद्घात

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के नवीन काव्य पुस्तक की ''प्रतिपदा'' के लिए ये आरम्भिक शब्द लिखते हुए हमें अतिशय प्रसन्नता है। चन्द्रप्रकाशजी ने १६३६-३७ से ही काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी, और अन्य आनुषंगिक कार्यों में व्यस्त रहकर भी निरन्तर काव्य सृष्टि करते रहे हैं। विचारात्मक और खोज सम्बन्धी निबंधों के अतिरिक्त उन्होंने कुछ एकांकी नाटक और दो एक सम्पूर्ण नाटक भी लिखे हैं। इसके पूर्व उनकी तीन कविता-पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। अध्यापन-कार्य से अवकाश मिलने पर इतनी रचनात्मक सामग्री प्रस्तुत करने का सुनिश्चित अर्थ है कि चन्द्रप्रकाशजी में विशिष्ट कोटि की कारयित्री प्रतिभा है। व्यावहारिक जीवन की व्यस्तता और बाधा उस प्रतिभा को दबा सकने में असमर्थ रही है।

कुँवर चन्द्रप्रकाशजी के काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी परिष्कृत और प्रांजल पदावली है जो भाषा पर उनके अधिकार की ही नहीं उसकी गहरी पहचान की भी परिचायक है। हिंदी काव्य में निराला की पद-रचना अपनी सामासिक शैली के लिए प्रख्यात है। थोड़े से चुने हुए शब्दों में गंभीर और प्रशस्त आशय की अभिव्यक्ति उनकी काव्य-भाषा का गुण है। दूसरे कवियों में भाषा-सम्बन्धी दूसरे गुण पाये जाते हैं, किन्तु अर्थगर्भ भाषा का गुण निराला में अप्रतिम है। शब्दों का जैसा संकुलित चयन और प्रयोग निराला करते हैं, उसे देखकर कवि बिहारी की भाषा के लिए प्रयुक्त ''नाविक के तीर' की उक्ति स्मरण हो आती है। कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के शब्द प्रयोग निराला-शैली के हैं, यह कहने में कुछ भी अत्युक्ति नहीं।

शब्दों के चयन में केवल अर्थ-प्रवणता ही एकमात्र विशिष्टता नहीं होती। उच्चारण संगति, भाव संगति, प्रवहमानता आदि गुण भी अपेक्षित होते

हैं। केवल कोमल-कांत-पदावली भाषा प्रयोग की एकमात्र साधना नहीं है ऋजु, कुटिल नाना पथों से चलकर काव्य की पदावली अपनी भास्वरता, प्राप्त करती है। परन्तु साथ ही उसमें एक अन्तर्निहित सन्तुलन भी होना ही चाहिए, अन्यथा वह एक बिखरी हुई वस्तु बन जाएगी। यहाँ भी कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह निराला की ही भाँति अपनी प्रयुक्त पदावली में एक स्पष्ट तराश का प्रमाण देते हैं। वह तराश जो भाषागत विविधता में एक कलात्मक समरूपता लाती है।

चन्द्रप्रकाशजी ने छन्दों के चयन में भी पर्याप्त प्रगल्भता प्रदर्शित की हैं। यह कम लोगों को ज्ञात है कि ये एक अच्छे गायक और लयमर्मज्ञ व्यक्ति हैं। छन्द-प्रयोग की यह निपुणता कविता में जिस विशेष प्रकार के चमत्कार की सृष्टि करती है, उसका परिचय सहृदय जनों को अनायास ही मिल जाता है। कभी-कभी श्रेष्ठ कवियों की काव्य-रचना में भी छन्दों की एकरूपता खटकने लगती है। परन्तु छंद-रचना में सार्थक वैविध्य की सूचना देने वाले कवि कभी जी नहीं उबाते। यदा-कदा भावों की पुनरावृत्ति भी छन्दों के अनेकान्त प्रयोग से सहृदयों द्वारा स्वीकृति हो जाती है। चन्द्रप्रकाशजी के छन्द प्रयोग में ऐसी ही सार्थक बहुलता है।

चन्द्रप्रकाशजी की काव्य-वस्तु सांस्कृतिक भूमिका से गृहीत है। वे स्वतः भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूपों से प्रेरित और प्रभावित हैं। अतएव उनकी कविता में हिंदी के पाठकों को अपनी अभीष्ट भूमिका प्राप्त हो जाती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी भावधारा परम्परा-पोषित है। वह पर्याप्त नवीन है और नए अलंकारों से सज्जित भी। उनकी कविता में भारतीय दार्शनिक भावधारा की एक अभिनव परिकल्पना प्राप्त होती है।

कवि की एक अन्य विशेषता सहज प्राकृतिक सौंदर्य और सम्पन्नता के प्रति उसका गूढ़ अनुराग है। न केवल प्रकृति के रम्य दृश्यों के प्रति उसके सरल सहज रूपों में भी कवि की वृत्ति रमी है। चन्द्रप्रकाशजी नगरों की अपेक्षा ग्रामों

की निसर्ग सुषमा से अधिक प्रभावित हुए हैं। इसके अतिरिक्त छायावादी कवियों की भाँति मेघ और सौदामिनी, अरुणोदय और नक्षत्रमालिका उनके सौंदर्य-चित्रण के अंग हैं।

इन रचनाओं में चन्द्रप्रकाशजी जी वैयक्तिक अनुभूति भी स्थान-स्थान पर अपनी झलक दिखाती है। जहाँ एक ओर सांस्कृतिक उदात्तता है, वहाँ दूसरी ओर वैयक्तिक विषाद और वेदना की छाया भी पड़ी हुई है। इस प्रकार यह कवि बाह्य और अंतरंग जीवन के दोनों स्वरूपों की अभिव्यंजना कर सका है।

चन्द्रप्रकाशजी कवि होते हुए भी कवि-कर्म-साधना में यथेष्ट समय नहीं दे पाते। अन्यथा उनका काव्य स्तर ऐसा है कि वे सहज ही हिंदी के प्रथम पंक्ति के कवियों में अपना स्थान बना सकते हैं। इस समय उनका कवि स्वरूप उनकी सम्पूर्ण क्षमता का प्रदेय नहीं पा रहा है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जो कुछ वे लिखते हैं, वह अपनी विशिष्टता में किसी प्रकार की त्रुटि रखता है। वे थोड़ा लिखते हैं, पर जो कुछ लिखते हैं, अच्छा लिखते हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्य में वे अबकी अपेक्षा अधिक समय काव्यरचना के लिए दे सकेंगे। उनकी इस ''प्रतिपदा'' संज्ञक काव्य-चतुर्थी का हम हिन्दी साहित्य जगत में हार्दिक स्वागत करते हैं।

होलिकोत्सव **- नन्ददुलारे वाजपेयी**

१८८१ शाके

निवेदन

मेरा चौथा काव्य संग्रह 'प्रतिपदा' माँ भारती के देहली-द्वार पर नत-शिर अर्पित है। इन रचनाओं में किसी वाद-विशेष का आग्रह नहीं। कवि कर्म का संपादन करते हुए इतनी चेतना मुझे अवश्य रही है कि कवि केवल अपने युग का व्याख्याता ही नहीं, संस्कृति का निर्माता भी है। इसलिए आवेग के साथ-साथ संयम भी उसका जीवन-धर्म हैं इस संग्रह के विषय में मेरा यही मुख्य निवेदन है।

इस संग्रह में मेरे द्वारा समय-समय पर लिखी हुईं विभिन्न प्रकार की रचनाओं में से कुछ चुनकर छापी गई हैं। चयन का कार्य मैंने नहीं मेरे स्नेहशील मित्रों ने किया है और उन्हीं के कारण यह संग्रह प्रकाश में आ रहा हैं कदाचित् इसमें विभिन्न शैलियों को प्रतिनिधित्व देने की दृष्टि प्रमुख हो उठी है। आरम्भ की कुछ रचनाओं में इस देश के सांस्कृतिक मानदण्डों के पुण्य प्रतीकों की अभ्यर्थना हैं। 'यंत्र' और 'शक्कर मिल' जैसी रचनाओं में उन नवीन तत्वों के प्रति हमारे बढ़ते हुए रागात्मक सामंजस्य का निरूपण है, जो औद्योगिक सभ्यता के प्रचार और प्रसार के साथ-साथ हमारे जीवन और परिवेश के अनिवार्य अंग हो गए हैं। कुछ प्रेम और सौंदर्य के गीत भी हैं और कुछ रचनाओं में प्रकृति के प्रति मेरी आत्मीयता की सहज अभिव्यक्ति है। किंतु ग्रामवासी होने के नाते मैंने अपने जीवन के प्रथम चरण से ही प्रकृति के कोमल-क्रूर अनेक प्रकार के रूपों की पृष्ठभूमि में ग्राम-जीवन के दैन्य और विवशता की हृदय-विदारक अनुभूति का विष-दंश निरंतर सहा है। बचपन में मैंने अनेक बार ऐसे दृश्य देखे हैं, जब फागुन लगने पर दीन-हीन-पराधीन ग्राम जीवन ने भी प्रकृति के साथ मुसकुराने और हँसने गाने का प्रयत्न किया है। पर दूसरे ही दिन ओलों की वर्षा हो जाने से खेत श्मशान और ग्राम-जीवन वीरान बन गया है। 'बुझी

चिताओं से' प्रतीत होने वाले उन खेतों का संस्कार मेरे मन में आज तक अमिट है और उस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति भी मेरी रचनाओं में नैसर्गिक रूप से हुई, प्रगति या प्रयोग की गढ़ी हुई परिभाषाओं को लक्ष्य कर वे नहीं लिखी गई हैं। दुर्भाग्य यह है कि स्वतंत्र होने के इतने वर्षों के बाद अब भी अपने ग्रामों में 'उदर की ज्वाला को ही ताप कर' शीतकाल की रातें काटने वालों की संख्या कम नहीं हुई हैं। स्वतंत्रता का प्रसाद तो अभी तक नगरों को ही मिलता आ रहा है। कवि का सौभाग्य तो उन दिन जागेगा, जब वह इस अपराजेय देश के जनपदों की समृद्धि-वृद्धि के नित-नूतन गीत गायेगा और उनकी शक्ति और संस्कृति के पूर्ण प्रकर्ष के चित्र अंकित करेगा।

इस संग्रह की भूमिका को लिखने की कृपा आचार्य श्री नंददुलारे बाजपेयी जी ने की है इसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूँ। दीर्घकाल से मेरी रचनाओं को उनको प्रतीक्षा थी।

- कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	त्रिपथगा	191
2.	सागर	196
3.	हिमालय	199
4.	महाशक्ति	206
5.	महान् प्रतिशोध	211
6.	ईद का चाँद	218
7.	हेमू-अंतिम-विक्रमादित्य	219
8.	खान खाना रहीम के मकबरे पर	221
9.	निराला के प्रति	223
10.	विठोबा के संतरे	227
11.	खलिहान	231
12.	वैषम्य	232
13.	तीन चित्र	233
14.	पाँवड़े	234
15.	यन्त्र	235
16.	शक्कर मिल	236
17.	कातिक	237
18.	अगहन गया	238
19.	पूस का दिन	239
20.	माघ की रात	240

21.	हेमन्त	241
22.	शिशिर	242
23.	बसंत-गीत	243
24.	फागुन	244
25.	जेठ की दुपहरी	245
26.	वयः संधि	246
27.	नया वसंत	247
28.	वसंत का फेरा	248
29.	होली	249
30.	फागुन	250
31.	पुरवाई	251
32.	आओ, पिएँ प्रेम का प्याला!	252
33.	घनों ने नए राग छेड़े गगन में	253
34.	देख री घनश्याम छाये!	254
35.	किसी के नयन में	255
36.	बरसती जल-धारा	256
37.	लावण्य दीपमाला	257
38.	शरदागम	258
39.	मिलन-गान	259
40.	अक्षय सुहाग	260
41.	हेमन्त-गीत	261
42.	अलि कमल खुलने न पाया	262
43.	शिशिर	263
44.	यह शिशिर का अंत	264

45.	मधुर शोभा भारी री!	265
46.	नैश वन जीवन की मधु प्रात	266
47.	मधु घोल रही	267
48.	रूप अरूप खिला	268
49.	व्यर्थ यह अभिमान	269
50.	हरो मेरी अमा	270
51.	निरुपमे!	272
52.	निशागम	272
53.	शरण-शरण रे	273
54.	आकर्षणमय विश्व तुम्हारा	274
55.	प्रणय-सिंधु लहराया	275
56.	स्मित-रेखा	276
57.	प्रिय तुम्हें पाऊँ	277
58.	अस्त रे जीवन	278
59.	अब भी दूर किनारा	279
60.	जीवन जन्म मरण	280
61.	मारो मत पिचकारी	281
62.	छेड़ो न यह राग	282
63.	बह गई रात	283
64.	अश्रुमय प्रतिक्षण	284
65.	फिर भूला गान मिला	285
66.	मिलेगा किनारा	286
67.	पाया न स्नेह कभी तुम्हारा	287
68.	कौन तुम सुन्दरी?	288

69.	विजय के गीत गाता चल	289
70.	आज आओ	290
71.	आओ स्वप्न संगिनी	291
72.	गीत	292
73.	तुम रहोगे, हम रहेंगे	293
74.	वसंत-समीर	294
75.	प्रभात आ रहा	295

त्रिपथगा

देवि! त्रिविक्रम के विक्रम की विजय-वैजयंती-सी,
उतरीं तुम ब्रह्माण्ड-विवर में सदय मोक्षलक्ष्मी-सी!

भगवत्पदी-स्वरूप सृष्टि का बन श्रृंगार रहीं तुम,
ध्रुव के पुण्यलोक को पावन करती हुई बहीं तुम!

कमल-कोश-सी अंजलियों में बहु उपहार सजाए,
हर्षित दिक्पालों ने तुम पर श्रद्धा-सुमन चढ़ाए!

आत्मज्ञान-निष्ठ ऋषियों ने देख स्वरूप तुम्हारा,
तप की चरम-सिद्धि-सी तुमको विनत शीश पर धारा।

पुलकीं तरल तरंग-भंग से उनकी श्वेत जटाएँ,
उमड़ी अघमर्षण वाणी की मंगलमयी घटाएँ।

कोटि व्योमयानों से परिवृत्त संस्तुत गीर्वाणों से,
तुम आई फिर चन्द्रलोक को धवलित वयुनानों से।

प्रक्षालन कर मेरु-शिखर-वर ब्रह्मलोक में छाई,
अभिनन्दन-वंदन-रत विधि ने जीवन की निधि पाई।

x x x x

कपिल-कोप का घोर-ताप था प्रलयंकर बन छाया,
दग्ध मरुस्थल-सी जलती थी जड़ धरती की काया।

शस्यहीन था लोक, ओक सब अस्थि-समूह बना था,
सगर-सुतों का पाप अगति का दुर्गम व्यूह बना था।

तम के धर्षण से, क्षण-क्षण के ज्वाला मय तर्षण से,
काँप रही थी विकल रोदसी अंतस् के मर्षण से।

संकट कैसे कटे? शाप की ऊष्मा कौन निवारे?
पिए हलाहल कौन? भुवन को भय से कौन उबारे?

सुधा-पयोद कौन धरती पर इस निदाघ में लाए,
काल-निशा का त्रास मिटा कर कौन मिहिर प्रकटाए?

कौन उतारे निखिल पावनी ब्रह्मद्रव की धारा,
जग के जले हुए जीवन की जो बन सके सहारा?

उठे तिमिर का वक्ष चीर कर साहस कर कुछ तारे,
प्राण दिए, पर किरण प्रात की पा न सके बेचारे।

उषालोक-सी तभी-तभी वह कौन साधना जागी,
किसके तप की प्रभा देखकर विभा पराजित भागी?

यतव्रत हो जिसने अब्दों तक केवल पवन पिया था,
माँस जलाकर, देह गला कर मर-मर सतत जिया था;

अविश्रान्त दिन-रात कर्म का जिसने चक्र चलाया,
जिसने श्रम के प्रबल अनल में जग का कलुष जलाया;

गूँज उठी सब ओर उसी मानव की जय की गीता,
स्वर्ग झुक गया, विबुध-वंदिता धरती हुई पुनीता।

अंब, भगीरथ के प्रति प्रकटा अब वात्सल्य तुम्हारा,
हर के जटाजूट पर विलसी मनोहारिणी धारा।

लोल तरंग-लताओं में शत-सात्विक सुमन खिलातीं,
विमल चन्द्र-दीधिति से नव-नव ज्योतिर्मुकुट सजातीं।

त्रिनयन के तीसरे नयन की ज्वाला शान्त बनातीं,
भस्मशेष मन्मथ के उर में आशा-किरण जगातीं।

उतरीं तुम गिरिजा के ईषत् रोष-कटाक्ष-छटा सी,
हर के शीश-शिखर पर विलसीं बरसी हुई घटा-सी।

स्वयं सत्य के सुन्दर बन कर शिव का आश्रय पाया,
भाग त्रिविकम से विक्रम का मनुज धरा पर लाया।

शशि-सी धवल धार हिमगिरि के शुभ्र सानु पर आई,
पर्वतपति ने प्रभा शंभु के भालदेश की पाई।

रवि, शशि, उडुचय ने किरणों के दीप असँख्य जलाए।
नभ के विकच इन्द्रधनुषों के धाराधर बरसाए।

तरल तरंगवती श्रृंगों पर छटा तुम्हारी छाई।
सरसिजदल पर सित भृंगों की अवली-सी मँडराई।

विदलित कर गिरि की दरियों को नव विद्युत-सी घन में,
विचरीं सरल, तमाल-साल के, देवदारु के वन में।

मचल-मचल कर शत-शत निर्भर पग-पग पर मिलते थे,
क्षण-क्षण प्रस्रवणों के पुलकित वीचि हस्त हिलते थे।

उन्नत ऊर्जित गंडस्थल से मदजल बहा निरंतर,
ऐरावत-सा पड़ा दिखाई तुमसे शोभित गिरिवर।

अनिल-दोल पर झूल रहा था ऊर्मि-समूह तुम्हारा,
अनाधृष्य अति उग्र वेग से उतर रही थी धारा।

तुम राजर्षि जह्नु के तप की वन्या सी लहराई,
सुता जाह्नवी बन धरती के प्रांगण में मुसकाई।

वानीरों के नील-शयन पर लख लावण्य तुम्हारा,
नृप शांतनु ने किया समर्पित मानस का मधु सारा।

यदुवंश की चरित-श्रृंखला से यंत्रित गति वाली,
विहरीं तुम बन भुक्ति-मुक्ति के सर की सरस मराली!

सूर्यवंश की प्रभा चन्द्रकुल की ज्योत्स्ना बन छाईं,
उभय कुलों की शील-साधना तुम ने अमर बनाई।

भरतवंश की साम्राज्ञी तुम, भारत-भू की धात्री,
लक्ष्मी, मेधा, पुष्टि-तुष्टि की, धृति की हो वरदात्री!

तुमने प्रजावर्ग को अपनी जीवन-निधि दे डाली,
औरस पुत्री-सी यह धरती गई निरंतर पाली।

अन्नपूर्णा बन जन-जन को पूर्णकाम करती हो,
धान्य, हिरण्य, रत्नचय अपने आँचल में भरती हो।

परिचर्यारत दिग्वधुओं के कर में जो बल खाता,
आसमुद्र विस्तीर्ण तुम्हारा शस्याम्बर लहराता।

जननि! तुम्हारा इन लहरों के पलनों पर अविनश्वर,
मुखर हो रहा देवव्रत का शैशव यह रह-रह कर।

यहीं हस्तिनापुर के वैभव के बिखरे सैकत कण,
खोजा करता है पागल-सा धूसर विकल समीरण।

कुरु, कोसल, पांचाल, मगध की तुम सौभाग्य-कदंबा,
मिथिला, अंग, बंग की मातः हो नीरदनिकुरंबा।

उभय तटों पर साम्राज्यों के शत निर्मोक पड़े हैं,
अश्वमेध-यज्ञों के कितने अध्वर-यूप खड़े हैं।

कोटि-कोटि ऋषियों का तप यह जल बन कर ढलता है,
जिससे भारत की संस्कृति का निर्जरत्व पलता है।

प्राचेतस के आदिकाव्य का विगलित स्रोत तुम्हीं हो,
भरद्वाज के तीर्थराज की पावन ज्योति तुम्हीं हो।

राममयी सीता के मन-सा पावन उदक तुम्हारा,
काशी की तारक महिमा का है महनीय सहारा।

निराकार हरिहर की सत्ता नीराकार बनाती,
द्रवीभूत हिमगिरि की गरिमा सागर तक ले जाती।

दर्शन पा कर अप्रमेय अति भैरव निःस्वन वाला,
उठता है उद्वेल तरंगों में जलनिधि मतवाला।

विफल बना दी तुमने उसकी बाड़व-ज्वाला,
तुमने अर्णव भी अंबर-सा ही अनंत कर डाला।

x x x x

देवि त्रिपथगे! अतिचेतन को अवचेतन में लाओ।
कर्म, ज्ञान का और भक्ति का परिप्लावन बन छाओ!

सागर

(१)

गौरवमय अपने स्वदेश की पश्चिम सीमा पर अनिमेष,
देख रहा हूँ सिंधु-तरंगों का नर्तन अभिराम अशेष।
उठ-उठ, गिर-गिर, घूम-घूम कर चूम-चूम कर तट उद्दाम,
झूम-झूम ये लुटा रही हैं अपना फेनिल हास प्रकाम।
अंग-अंग के विकच भंग में भर उर का रस रंग अपार,
बिखर रही हैं ये क्षण-क्षण में बन स्वागत का वंदनवार!
गति की मुद्राओं में रच-रच शत-शत मुक्तामाल ललाम,
किसे खोजती हैं प्रतिपल ये ब्रज बालाओं-सी उद्दाम?
ये असीम की रंग-भूमि में रचतीं सीमाओं का रास,
किस अरूप नेपथ्य भूमि से धारण कर रूपों के वास?
ध्वनित सिंधु के अतल गर्भ में क्या कोई संगीत उदार,
जिसके स्वर पर नाच रही हैं ये सब सतत मण्डलाकार?
मेरे रोम-रोम में प्लावित है इस स्वर लय की मधुधार,
किस अनन्त में क्षुद्र मीन सा तैर रहा मेरा संसार?
बाँध सकूँ यदि मैं भी अपने उर में यह रहस्यमय गान,
ढाल सकूँ तो मैं भी शत-शत नर्तनमय छन्दों में प्राण!

(२)

गूँज उठी है फिर प्रभात की वंशी की मृदु तान,
ध्वनित हुआ है सिंधु! तुम्हारा भी संगीत महान्!
उतर-उतर कर इन किरणों की सरिताओं की धार,
तुम्हें भंगिमामय रंगों के पहनाती हैं हार!

खिल-खिल उठता है फेनिल फूलों में उनका राग,
स्फीत तुम्हारे वक्ष-स्थल पर स्पर्श उठा वह जाग!
ध्वनि के खग से तुंग तरंगों के शत पंख पसार,
मुखरित करते हो अग-जग में स्वर्णिम स्वप्न अपार!
स्वर के शर से विद्ध गगन यह रह, रह रहा कराह,
गल-गल रूपों में ढलता है वह अरूप ही आह!
कोटि-कोटि हृदयों का स्पन्दन, कोटि-कोटि उच्छ्वास,
कोटि-कोटि जन-मन का क्रन्दन, कोटि-कोटि उल्लास-
मुखर तुम्हारे इन अधरों की भाषा बन कर आज,
भूल रहा है अंक दोल पर निखिल खगोल-समाज!
तुम अनन्त के प्रणय-पाश में चिर-अशान्त हे सान्त,
विरमो उर के अन्तराल में हे रत्नाकर कान्त!

(३)

मेरा उर उड़ चला तुम्हारे स्वर के पर पर,
लय के खग-सा दूर, दूर अति, ऊर्ध्व, ऊर्ध्वतर।
तोड़ काल के पाश, छोड़ निःशेष देश यह,
सीमाओं के पार निरन्तर निराधार वह।
रच अनन्त का नीड़ सहज विश्राम-धाम चिर,
बैठा है स्थिर, बरस रहे रस-मेघ जहाँ घिर।
तट-विहीन यह राग तुम्हारा अये महाम्बुधि,
जगा रहा किस गहन मौन की स्तब्ध-मुग्ध सुधि?
सुन कर जिसको खुले-खिले प्राणों के कुड्मल,
रंजित, सुरभित, नृत्य-निरत ये निखिल दिशा-पल।
ध्वनिमय शाश्वत यह असंग एकान्त तुम्हारा,
नाप सका है कौन, कौन पा सका किनारा?

डूब-डूब मैं आज इसी के लघु सीकर में,
दूर-दूर उड़ चला तुम्हारा स्वर भर पर में।

(४)

युग-युग से है सिंधु! बनाए प्रणय तुम्हें मतवाला,
युग-युग से तुम सजा रहे हो ज्योति-सुरभि वरमाला!
गूँथ वीचियों के तारों में शत-शत उडु, शशि, दिनकर,
रचते रहते रत्नहार तुम अविरल हे रत्नाकर।
स्फीत वक्ष, उच्छ्वास-प्रकंपित कर में ले वह क्षण-क्षण,
प्रिया-कण्ठ में पहनाते हो, अर्पित करते तन-मन।
मानवती धरती कर उसको छिन्न तुरत छितराती,
विकल तुम्हारी मनुहारों को प्रतिपल विफल बनाती।
फिर भी महाराज से सज कर नव-नयस्वार्णाभूषण,
ढाला करते स्वर्ण-तरंगों में निज प्रेमाकुल मन।
कोटि-कोटि परिरंभ तुम्हारे, कोटि-कोटि पद-वन्दन,
कोटि-कोटि चुम्बन अति आतुर, कोटि-कोटि अभिनन्दन,
हर न सके वह मान-गाढ़तर छाया रोष-निशा की,
तुमने क्षिति की बंक भृकुटि की छटा क्षितिज पर आँकी!
अमर प्रेम-साधना तुम्हारी, अमर मान की क्रीड़ा,
अमर तुम्हारे जीवन-यौवन की यह सुखमय पीड़ा।

हिमालय

अनस्तित्व की महानिशा में
सृष्टि-स्वप्न से हे द्युतिमान,
किन महिमामय की पलकों पर
सहसा तुम खुल पड़े अजान?

किस अज्ञात देश में विकसित
पावन तन असीम अभिराम,
प्रलय-पयोनिधि की लहरों पर
रजत-पोत सा तिरा प्रकाम?

तुम्हें देख कर दिशा-दिशा में
द्रुततर हुआ तिमिर-अपसार,
सुप्त प्रकृति में चेतनता का
क्रमशः सहज सरल संचार।

प्राची के नभ में सुवर्ण-छवि
रवि के शत-शत कर अवदात,
हिममय श्रृंगों पर भंगों से
वे गा उठे प्राथमिक प्रात।

तुम्हें पिन्हा कर स्वीय करों से
सोने का मुकुटालंकार,
जगती के पहले आतप ने
खोले संसृति के बहुत द्वार।

जीवन के नव हृत्कम्पन-सा
डोला शून्य चीर पवमान,
पूरित था अणु-अणु कण-कण में
किसका जागृति का आह्वान?

जाग गए सब व्योम-अंक पर
ग्रह, उपग्रह, शशांक, तारा,
उदधि-हृदय पर बिछल पड़ा फिर
ज्योत्स्ना का चुम्बन प्यारा।

मधुर तुम्हारा अवलम्बन ले
सिंधु-सेज पर फिर धरती,
नव परिणीता-सी व्रीड़ा-वश
जागी सुप्ति-श्रान्ति हरती।

विशद तुम्हारे ही प्रांगण के
एकाकीपन को कर भंग,
चिन्ता कुल पहले मानव की
फैली प्रबल विचार-तरंग।

उन्हीं विचारों की कृति-प्रतिकृति
निखिल संसरण की धारा,
फूटी इच्छा-क्रिया-ज्ञानमय
मुखरित हुआ शून्य सारा।

अखिल ज्ञानमय आदि नाद जो
शाश्वत ब्रह्म-प्रतीक महा,
गूँज उठी उस पुण्य-प्रणव से
गिरे, तुम्हारी गहन गुहा!

महर्षियों की तप-समृद्धि-सी
अगणित यज्ञों की ज्वाला,
पहन अजस्र प्रकाशमयी थी,
यह अतुंग श्रृंगमाला।

चिर सच्चिदानन्द-घन के
वर्षण से ये वन रहे हरे,
ज्ञानामृत-सरितायें निकलीं
जीवन के युगकूल भरे।

वेद, उपनिषद, आरण्यक
मुनियों के मनन, गहन संवाद,
अविनश्वर-श्री आत्म ज्योति
फूटी थी यहाँ, रहा कुछ याद?

कर्म, ज्ञान के, भक्ति, योग के
शत-शत स्रोतों में अवदात,
बहे निरन्तर तुम अनादि हे!
उर्वी को कर ज्योति-स्नात।

ज्योतिर्मय उर के उत्सों से
उत्सव-पूरित पुण्य-जला,
फूटीं सिंधु, जाह्नवी, यमुना,
प्रति-गति बनी भूमि कमला।

उसी शस्य-श्यामल धरती पर
संस्कृति का उत्कर्ष महान,
देखा है तुमने श्रुति-सेवित,
आर्य-धर्म का अभ्युत्थान।

अचल तुम्हारे सानु-देश पर,
अरुणकेतु वह लहराया,
जिसकी छाया में धरणी ने,
अविचल राम-राज्य पाया!

जिसकी छाया में आर्यों ने
बाँधा गोपद-सा सागर,
पवन मार्ग पर चढ़, सवेग बढ़
धर्षित किया नील अम्बर।

यहीं तुम्हारे पाद-प्रान्त में
उमड़ी गौतम की करुणा,
निज मानवता की विभूति वह
तापित जीवन की वरुणा।

अश्वमेध-विक्रम विक्रम-से
नरपालों की कीर्ति धवल,
इन तुषार-सज्जित श्रृंगों पर
लिखी हुई है आज अटल।

दिग्विजयी उन सेनाओं के
नरसिंहों का घोष महान,
शयित गुफाओं में सिंहों के
बल का बनता था प्रतिमान।

इन नमेरुशोभी शिखरों की
छाया में पाकर विश्राम,
रघु से विश्वजयी सेते थे,
मृगमद-सुरभित पवन प्रकाम।

सरल-स्कंध-बद्ध गजगण का
उद्धत गर्जन बारम्बार।
निज सीमा पर विजय-नाद बन
होता था प्रतिध्वनित अपार,

जिसको सुनकर अपर पार के
ये प्रतिवेशी देश अशेष,
वैर-भाव तज विनय-नमित नित,
रहे उपायन-पाणि विशेष।

उन्हीं गजों के गंडस्थल से
विक्षत तरुओं के त्वक् देख,
पढ़ते थे अंबर के उर पर
अरिगण भारत के जय-लेख।

अर्पित किया सतत भारत को
तुमने अपना जीवन सार,
उसने भी सीमापति पद पर
किया तुम्हें अभिषिक्त उदार।

पूर्व और पश्चिम सागर का
अवगाहन कर हे गिरिराज,
आदर्शों के मानदण्ड से
तुम धरती पर रहे विराज।

निखिल विश्व के महातीर्थ हे,
मानवता के जनक विराट्!
तुम आध्यात्मिक पुण्य-भूमि के
एकच्छत्र रहे सम्राट्।

इन दरियों में किन्नरियों की
बरस रही जो गीति-सुधा,
वही तुम्हारे गौरव-गाथा
प्लावित है जिससे वसुधा।

वही देव-वधुओं के कूजित
कंठों का है स्वर-श्रृंगार,
जिसकी लय पर अप्सरियों के
सजते नित नूपुर-पद-चार।

वही समीरण की वीणा पर
सजा चन्द्र-किरणों के तार,
दिक्कुमारिकायें मृदु-स्वर भर
तुम्हें सुनातीं बारम्बार।

किन्तु अचानक कहाँ खो गया
मणि-रत्नों का विगत महान्,
अपने वैभव की समाधि-से
गिरि, तुम भी मृतवत् हतज्ञान?

तन्द्रा के इस तिमिर-लोक में
उस अतीत का स्वप्निल ध्यान,
क्या न कभी फिर कर पायेगा
तुमको जागृत हे हिमवान?

सती उमा के तपः पुंज से
व्याप्त हुआ जल, थल, आकाश,
यही तुम्हारा कान्त-क्रोड़
उन ज्योतिमयी का था आवास।

उस तप की पावन-ज्वाला की
स्मृतियों का ले ज्वलित समाज,
भर लो, भर लो निज प्राणों में
जीवन-जागृति हे गिरि आज!

भूप भगीरथ का दृढ़ निश्चय,
नियति-विजय, वह अमर प्रयास,
वह गंगा-आनयन, नयन में मन में
भर लो वह, उल्लास!

अर्जुन का अपराजित तप-श्रम,
वह किरात-जय का उत्साह-
उस स्मृति की आग्नेय-शिखा ले
कर दो तन्द्रा-कानन दाह!

जागें अंग, कलिंग, बंग सब
उत्कल, मिथिला, राजस्थान,
जागे मगध, दशार्ण, चेदि का
कौशल का पौरुष अम्लान।

गुर्जर, महाराष्ट्र, केरल कल
कर्णाटक वह आन्ध्र प्रदेश,
जागे तमिलनाड हिलमिल कर
एक सूत्र में बँध निःशेष।

शोभित हो नित भाल-देश पर
कुंकुम काश्मीर अभिराम,
कोटि-कोटि कंठों में गूँजे
ऐक्य सख्य का ज्योतिःसाम।

निखिल तपाश्रय, हे महिमामय,
हे जग के गुरु, हे गिरिराज!
टूटो द्रुत जग की जड़ता पर,
रख लो अपने गत की लाज!

उन्नत ज्योति-स्तम्भ धर्म के,
भारत के प्रहरी विख्यात,
छोड़ो तम-संकुल निद्रा यह
आने दो आलोक-प्रभात!

महाशक्ति

दानव-अधिप महिषासुर के विक्रम से,
धर्षित था दिव और विधृता वसुंधरा।
इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर हुए सत्ताहीन,
दीन, प्रभाक्षीण हुई जीवन-परंपरा।
अनिल अनल जल, स्थल, सूर्य, सोम, व्योम,
काल, लोकपाल का प्रभाव-भाव बिसरा।
यज्ञभाग-वंचित विकल-चित देववृंद,
सेते थे सभीत मेरु पर्वत की कंदरा।।

देख महिषासुर का विकट भृकुटि-भंग,
चन्द्र होते उष्ण, रवि बुझ-बुझ जाते थे।
शीत होता पावक, विनीत होते हिमवान,
भीत पवमान निज गति भूल जाते थे।
अंगुली उठी कि क्षुब्ध सिंधु जड़ीभूत हुआ,
अंभ्र लिह गिरि श्रृंग भूमि चूम जाते थे।
व्योम-विटपी के उड़ चय झर-झर जाते,
काले मेघ घुमड़ अँगारे बरसाते थे।।

चरण प्रहार से विमानीकृत ऐरावत,
शुंड कर उन्नत पुकार करता था घोर।
बार-बार व्याकुल असुर-ऊरुओं के भार,
उच्चैःश्रव पाता था न निज यातना छोर।
वैजयंत दीन था असुर-वैजयंती लिए,
अमरावती थी श्रीविहीन करुणा विभोर।
नंदन-विपिन भी विवर्ण था वसंत ब्याज,
शोकोच्छ्वास व्याप्त था समीर-मिस सब ओर।।

देव-ललनाओं की कलित कलकंठता से,
मोदित हो निज श्रम-भार हरता था वह।
उर्वशी के नूपुर-रणन किंकिणी-क्वणन से,
प्रमत्त देवधुनि-धार तिरता था वह।
कल्पलतिका की कलियों के कल तल्प पर,
भोगासक्त निज भूरि भार धरता था वह।
रोहिताश्व-वाहित बलाहकों के रथ पर,
सौरभ के नभ में विहार करता था वह।।

अत्याचार-पीड़ित दलित देव-मंडली ने,
साथ ले धरा को हरि के समीप की पुकार-
''भूतवाद और भोगवाद की निदाघ बीच,
सूखी जा रही है प्रभु! धर्म-जाह्नवी की धार।
इन्द्रिय-प्रसक्त दानवों की विषयैषणा के,
विष के मुमूर्ष धरती है आज निराधार।
मानवता मृत और सुरता असत् हुई,
उमड़ा असुरता का सब ओर पारावार।।''
बोले हरि ''तपक्षीण हो रहे हो तुम और,
तपबल वर्द्धित है असुर-समाज का।
अधिकृत सब अधिभूत शक्तियों को कर,
छीन लिया पद है उन्होंने देवराज का।
संगठनहीन सत् की समस्त शक्तियाँ हैं,
पाया अधिकार तम ने है मनोराज का।
केन्द्रीभूत जिसमें तुम्हारा अधिदैव-बल,
होगा वही रक्षक तुम्हारी आज लाज का।।''

यह कह सहसा सरोष कमलापति की,
बंक हुईं भृकुटि विकट-मुख हो गया।
प्रकटा हुताशन-सार तेज दीप्त आनन से,
देख हर-नेत्र ज्वाल भी प्रदीप्त होगया।
प्रकटा प्रचण्ड देव-विग्रहों का तेज फिर,
प्रलय-पयोनिधि में आया ज्वार ज्यों नया।
देखते ही देखते निखिल तेज-पुंज वह,
मिल कोटि चण्डकर-सा प्रचण्ड हो गया।।

संगठित देव-शक्तियों का ज्योति चक्र वह,
काल-सा अराल रोदसी में घूमने लगा।
दग्ध होके सकल दिशायें अति स्तब्ध हुईं
क्षुब्ध नभ ज्वालामुखियाँ उगलने लगा।
फाड़ कर तम का विराट् शून्य ओक वह,
धूमकेतुओं का महालोक पलने लगा।
अंबर-अवनि के अनंत अवकाश बीच,
मंदर-सा वह तेजकूट चलने लगा।।
सर्व देव-देह-समुद्भूत महातेज वह,
मिलकर अविलम्ब बन गया नारी रूप।
शंकर के तेज से गठित मुख-मण्डल की,
आभा परिव्याप्त लोक-लोक में हुई अनूप।
विष्णु-तेज-दुःसह प्रचण्ड भुजदण्ड बने,
यम तेज ही था कुंतलों में श्याम-घन रूप।
शशि, शक्र, वरुण, धरा के तेज द्वारा बने,
स्तन, कटि, ऊरु और नितंब सब ज्योति स्तूप।

नासिका, चरण, कर-पद की अंगुलियों में,
था धनद, धाता, अंशुमान, वसुओं का तेज।
नयन त्रितय में विराजमान पावक को,
देख था दलित देवद्वेषी असुरों का ओज।
सांध्य-श्रीअमल भ्रू-युगल में बसी थी और
विलसित दंत-पंक्ति में था प्राजापत्य तेज।
अनिल श्रवण में बसा था, अंग-अंग में था
समवेत देव-मण्डली की राशि-राशि तेज।।

असुर-दलित देवगण वह रूप देख,
पुलकित उच्च हर्षनाद करने लगे।
भक्तियुत लेकर विभूतियाँ स्वकीय सब,
सेवा में विविध उपहार धरने लगे।
खींच निज शूल से अमोघ शूल अन्य जब,
श्रद्धावान् शंकर प्रदान करने लगे।
तब निज चक्र से निकाल वक्रतर चक्र,
हरि दे शिवा को भव-भय हरने लगे।।
शंख लाए वरुण, हुताशन ज्वलित शक्ति,
और पवमान ने प्रदान किया धनुवाण।
गिरि-गर्व-गौरव-प्रहारी स्वीय वज्र, देके,
कृतकृत्य हो रहे थे भावनत मघवान।
दण्ड से भी अपने महाप्रचण्ड दण्ड देके,
माँगा यमराज ने असुर-संकटों के त्राण।
पाश देके वरुण, विधाता, अक्षमाल देके,
रत वंदना में हुए काल दे महाकृपाण।।

विश्वकर्मा ने दिए विविध अस्त्र-शस्त्र और,
कवच अभेद्य मृत्यु-दशन महाकुठार।
वाहनार्थ सिंह हिमवान ने प्रदान किया,
काँपी सुन गर्जन दिशायें दीर्ण हार-हार।
इंदुरेखा-मंडित मुकुट लसा शीश पर,
रवि किरणों ने रोम-रोम में किया प्रसार।
इस भाँति नंदित, सुरों से अभिनंदित हो,
देवी ने विकट अट्टहास किया बार-बार।।

क्षुब्ध उस नाद के महांकुश से ताड़ित हो,
गज-सा गगन करता था आर्त चीत्कार।
काँपे कोल, कच्छप, फणीन्द्र लोकपाल सब,
वेपथुमती थी धरती नितान्त निराधार।
काँप उठे पर्वत, समुद्र, सर्व लोक-ओक,
क्षण-क्षण में था प्रतिशब्द उठता अपार।
देवों ने प्रमत्त पीन जय-जयकार बीच,
डूबा जा रहा था दानवों का दीन हाहाकार।।

अक्ष, स्रक, परशु, गदा, कुलिश, बाण, धनु,
दंड, शक्ति, शूल, पाश, चक्र, चर्म, करबाल।
घंटा, पानपात्र, पद्म, शंख, कुंडिका-बलित,
अष्टादश हस्त दैत्य-शोणित सने थे लाल।
समुदित अंग-अंग में थे कोटि-कोटि रवि,
नयन त्रितय में ज्वलित था प्रलयकाल।
दायाँ पद माँ का सिंह पृष्ठ पर शोभित था,
बायाँ महिषासुर के कंठ पर विकराल।।

महान् प्रतिशोध

थर-थर थर-थर काँपा अंबर,
डोली धरणी, रवि मंद हुआ,
रो पड़ी दिशायें कातर हो,
लज्जित समीर निस्पन्द हुआ।
देवों ने त्रस्त नयन मूँदे,
हो गई भग्न-उर गिरिमाला,
गंगा सूखी, यमुना सूखी,
बुझ गई अनल की भी ज्वाला।

कुरुपति-निदेश से दुःशासन,
लेकर आया पांचाली को,
पुर-पथ से कच-कर्षण करता,
ज्यों लाये बधिक मराली को।
वह पौरव-कुल की साम्राज्ञी,
रवि-किरण न जिसको छू पाई,
असहन था जिसको पवन-स्पर्श,
थी शची जिसे लख सकुचाई;

वह थी अनाथ, असहाय आज,
निःश्वसिता, रुदिता, अति भीता,
असुरों के मायिक बन्धन में,
ज्यों रघुकुल की लक्ष्मी सीता।
विलुलित था अति कचभार,
पृथुल उर कंपित होता बार-बार,
थी अश्रुधार या धरती पर,
थे बरस रहे विष-शर अपार।

एक ही वसन उस पुष्पवती की,
लज्जा का अवलम्ब रहा।
निस्तब्ध सभा थी, अट्टहास
दुर्योधन का था गूँज रहा-
''द्रोपदी हमारी दासी तुम,
लज्जा का अभिनय करो बन्द,
शतपतिका बनकर विलसो अब,
भूलो वे अपने पांडुनंद।''

संकेत किया- ''हे पांचाली!
मेरे ये ऊरु करो सनाथ।
गूँजे धरती से अंबर तक,
दुर्योधन की यह विजय-गाथ।''
सुन कर विवशा पांचाली ने,
आशा से पतियों को देखा।
थी उनमें लेश न शेष रही,
साहस की ज्योति किरण-रेखा।

कुरु-कुल वृद्धों की संसद का,
उसने फिर अभ्याह्वान किया।
पर जग न सका उस ज्वाला से,
उनके विवेक का बुझा दिया।
थे भीष्म, द्रोण सब देख रहे,
ज्यों मूक-भाष पशु शेष-श्वास,
अबला को विवसन करने का,
करता था दुःशासन प्रयास।

यह धर्म या कि धर्मांडम्बर,
था शिथिल स्रस्त गाण्डीव पड़ा,
हा धर्मराज ने भी कैसा,
निष्क्रिय अधर्म का पथ पकड़ा।
लांछित पौरुष, थे चित्र लिखित से,
देख नकुल-सहदेव रहे,
वे लोचन थे या मोरपंख,
जिनमें न रोष-कण शेष रहे।
पर सह न सके अन्याय भीम,
सहसा संवर्तक घन गरजे,
घन-तिमिर चीर कर अंबर में
मानो शत काल-अशनि तरजे।

चंदन-चर्चित उठ गई भुजा
उद्यत प्रहार ज्यों परिघ घोर,
धर्मांडम्बर की रजनी की
पड़ गया दिखाई पुण्य-भोर।
बोले, ''सुन लो हे सभासदों,
हे कुरु कुल के आवृद्ध बाल।
शत लौहदण्ड-पीवर प्रलंब
देखो ये मेरे भुज विशाल।

अन्याय-महोदधि मथ देंगे
जब ये युग मंदर से अराल,
तब तुम सबके शिर पर पग धर
उतरेगा उन्मद क्रुद्ध काल।
जिन आँखों से तुमने देखा
कृष्णा का यह अपमान महा,

जिन आँखों से तुमने सचेत
अबला का है अपमान सहा;

उन आँखों की अन्याय-ज्योति,
शर-वर्षा से बुझ जायेगी,
यह गदा युद्ध की शय्या पर,
तुम सबको सहज सुलायेगी।
दुःशासन तूने खींचे हैं
कृष्णा के कच, सुन सम्हल जरा,
साक्षी हों अनिल, अनल, अंबर
सब देव-वृन्द, यह वसुन्धरा।
ये पाप सनी तेरी बाँहें,
लूँगा मैं लघु तृण सी उखाड़,
फिर पान करूँगा तप्त रक्त,
शठ तेरा वक्ष-कपाट फाड़!

उस शोणित से समरांगण में,
सुख से द्रोपदी नहायेगी,
लहराते विषधर व्यालों की
वेणी तब बाँधी जायेगी।
वह नियति-पटी पर लिखा हुआ,
पढ़ दुर्योधन निज भाग्य-लेख,
कौरव-कैरव-वन-गहन-दहन,
मेरे प्रचंड भुजदण्ड देख!

संकेत-मलिन तव अरुद्वय,
तोड़ूँगा कर निष्ठुर प्रहार,
तेरा गर्वोन्नत शिर जम्बुक,
ठुकरायेंगे फिर बार-बार।

तू क्रूर अपावन रावण की
गति निंद्य नराधम पायेगा,
मेरे प्रवृद्ध कोपानल में
पल में सबंधु जल जायेगा।

फिर एक बार डोली धरणी,
रवि दीप्त हुआ, ग्रहपिंड गिरे,
उल्कायें जलीं, वज्र टूटा,
नभ में शत धूमकेतु बिखरे।
प्रणभीम भीम की रौद्रमूर्ति
लख धार्तराष्ट्र निस्तेज हुए,
पाँचाली के वे नयन-बिंदु
कटु कालकूट के सिंधु हुए।

x x x

इस पुण्यभूमि में नारी का
अपमान सहे वह आर्य नहीं,
अबला पर पाप-दृष्टि डाले,
पा सकता है वह क्षमा नहीं।
वह जाति नहीं उठ सकती है,
जिसमें हों क्षम्य आततायी,
वह देश नहीं जी सकता है,
जीवित हों जहाँ आततायी।

अज्ञातवास में कीचक ने
कृष्णा पर डाली दृष्टि मलिन,
फुंकार उठा फिर भीम-रोष,
ज्यों काल-सर्प उन्नत शत-फन।
क्षण भर में दुर्मद कीचक का
छक प्राण-पवन कर लिया पान,

हर्षोद्धत चिर-दुर्दम यम-सम
उसके शोणित में किया स्नान।

x x x

दिन बीते, काल चक्र घूमा,
फिर धर्म-युद्ध का दिन आया,
जिस लिए क्षत्रिय जनती हैं
सुत, वह पावनतम क्षण आया।
केशव ने पांचजन्य फूँका,
गांडीव उठा, रणमेघ घिरे,
आहत हो शर की शय्या पर
गांगेय गिरे, गुरु द्रोण गिरे।

प्रज्ज्वलित धर्म का अखण्ड ओज ही था वह,
घूर्णित थी काल सी कराल गदा कर में।
चूर्ण कर स्यन्दन, गयंद मंद-गंड फोड़
पी रही थी बाड़व-सी शोणित समर में।
गति के प्रभंजन से अचल सचल हुए,
सूख गये सरि-सर, सिंधु पल भर में।
उड़े सब सुभट-समूह-व्यूह व्योम-पथ,
डूबे धार्तराष्ट्र भीम पौरुष-प्रसर में।।

पाकर सुहवि ज्यों हुताशन हो भासमान,
देख के दुःशासन को भीम-रोष भड़का।
खौल उठा सिंधु-सा पराक्रम का, विक्रम का,
गरजा नृसिंह-सा प्रलय-वज्र तड़का।
तौल लिया तूल-सा उछल बाहुदंड परे,
तोड़ा काय-पिंजर पदों से उस जड़ का।
शाल-से समूल भुज फूल-से उतार लिये,
फाड़ कर उर रक्तपान का कड़का।।

जागी सुप्त ज्वालामुखी ही ज्यों ज्वालमाला लिए,
आई मुक्त वेणी द्रौपदी भी युद्ध-याग में।
वंदित हो भीम के करों से अभिनन्दित हों,
सुख से नहाई शत्रु-शोणित-प्रयाग में।
तेज-सौकुमार्य-मंजु पाण्डव जयश्री हँसी,
किंशुक की छवि सी वसंत-वन-भाग में।
बोले देव यह प्रतिशोध चिरंजीवी रहे,
जले खल-दल नारी अपमान आग में।।

शक्र जिस भाँति छूटता है शैल-जाल पर,
और विष्णु-चक्र वक्र असुर समाज पर।
सिंह ज्यों तमंग पर, गरुड़ भुजंग पर,
टूटे उस भांति क्रुद्ध भीम कुरुराज पर।
तोड़े ताल-तरु से विशाल ऊरु मन्यु भार
रोप दिए पैर दर्प-दीप्त शीश-ताज पर।
केशव ने भीम की भुजायें बार-बार पूँजी,
बरसे गगन से प्रसून धर्मराज पर।।

ईद का चाँद

संध्या की सस्मित प्रशान्ति में लीन हुआ रमजान,
ऊँची मीनारों से सहसा ऊँची उठी अजान!

'अल्ला हो अकबर' 'अल्ला हो अकबर' की स्वर-धार,
बही प्रखर सब ओर दिशायें पुलकित बारम्बार।

सफल हुए सब कठिन योग-व्रत रोजा और नमाज,
पहनाया अपनी खिलकत को आज खुदा ने ताज!

केतु धर्म का, तेज पुण्य का नभ में उगा हिलाल,
गूँज उठे नव ज्योति-सुरभि से उर-उर के मधुबाल।

नर-नारी आबाल-वृद्ध सब दृष्टि गगन में बाँध,
देख रहे थे नूर नया यह पूजी मन की साध!

x x x

इसी समय पावन प्रदोष की बेला आई जान,
नत हो जन ने किया समर्पित प्रभु-चरणों में ध्यान!

फैल रही थी प्रभा चतुर्दिक, झरता था आनन्द,
शिव के व्योम-विशाल भाल पर था शशि वही अमंद!

इसी ज्योति से पुलकित होंगे, तन मन, जीवन, प्राण;
इसी ज्योति से प्रीत खोजती निखिल धरा कल्याण।

जाग उठी है नई चेतना संशयहीन विवेक,
एक धर्म है, एक ध्येय है, मानव-संस्कृति एक!

हेमू - अन्तिम विक्रमादित्य

फिर एक बार,
हो गया पराभव के तम में ज्योतिः प्रसार!
फिर एक बार,
भर गए चतुर्दिक विजय विजय के स्वर अपार!

फिर एक बार,
बह चली काल-विद्युत-सी असि की प्रलय-धार,
डूबी पठान-प्रभुता जिसमें हो निराधार!

झंझानिल-से जिसके प्रहार पर पा प्रहार,
उड़ पीत-पत्र से गए यवन-दल, हुए क्षार!

गर्वोन्नत इसलामी-शासन के शिर-स्त्राण,
चरणों में नत हो लगे माँगने दया-दान।

लो, पारतंत्र्य के निविड़ नैश-तम में अतंद्र,
'आया, आया,' सब बोल उठे 'जय हेमचंद्र!'

किरणों से मुकुलित हुए देश के दिशाकाश,
टूटे सदियों की परवशता के नाग-पाश।

जातीय जाड्य की गहन-गुहा का उर विदार,
गरजा भैरव-रव यवन-हरिण-हरि बार बार।

वह गर्जन सुन आदिल कदली-दल सा काँपा,
देहली दहली सब देश-द्विषों में भय व्यापा।

अपने गौरव के सिंहासन पर समासीन,
मस्तक पर यशः- किरीट शुभ्र अति प्रभा-पीन।

भुजदण्डों में पुंजीकृत ले पौरुष प्रचण्ड,
कर दिए ताजखाँ कर्रानी के खण्ड-खण्ड।

रख सूर-वंश की सत्ता के शिर दृप्त चरण,
बाईस चुने युद्धों में की विजयश्री वरण।

हेमू शत हिमगिरि-सा उन्नत अविचल उदार,
बन अपर विक्रमादित्य उदित वह तुलाधार!

x x x

वर्णाभिमान से दृष्टिहीन वे विप्र प्रवर,
लख नहीं सके हेमू के तप का भा भास्वर।

हेमू के राष्ट्रधर्म का वह आह्वान पूत,
सुन नहीं सके मद-दंभ-बधिर वे राजपूत।

संगठनहीन अति व्यक्तिवाद से हत समाज,
सुन नहीं सका बहु भेद-क्लिन्न वह विगत लाज।

बन गया वही भारत-भू का दुर्भाग्य विषम,
अकबर के कर का शर बन जो छूटा दुर्दम;

आहत हो जिससे गिरा टूट निज भाग्य चन्द्र,
फिर एक बार हो गया अस्त वह रवि अमन्द!

खानखाना रहीम के मकबरे पर

इस खँडहर में समाधिस्थ है दिग्विजयी सेनानी,
कविकुल-कल्पद्रुम, कविशेखर, वाणी का वरदानी।

जिसके उन्नत कर-हिमगिरि से बही दान की धारा,
अविरत, अव्याहत, क्षण-प्रतिक्षण ऊर्जित कर युग सारा;

सींच सींच कवियों के मरु-उर उर्वर अमित बनाए,
बलि से और भोज से जिसने साके नए चलाए;

जिसके मुख से सुनी न याचक ने निषेधमय वाणी,
यहाँ सो रहा इस खँडहर में वही अप्रतिम दानी!

जिस पर आश्रित था, गर्वित था अकबर का सिंहासन,
इस खँडहर में शान्त सो रहा वह पौरुष, वह गर्ज्जन!

यहाँ सो रहा कवि वह जिसके बरवै घिर घिर रस-घन,
अब भी बरस-बरस करते हैं परिप्लावित जन-जीवन।

जिसके वर्ण-वर्ण जन-जन के कर्णाभरण सजे हैं,
जिसके चरण-चरण में नवरस नूपुर बने बजे हैं,

जिसके पद-पद में अर्थों की गुरुता सहज बसी है,
जिसके छंदों में स्वर-लय की तन्मयता विलसी है,

शब्द-शब्द में चित्र, चित्र में भाव विचित्र रचाए,
भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, प्रीति के गीत निरंतर गाए;

जिस रहीम ने, वही राम का भक्त, कृष्ण का प्यारा,
यहाँ मृत्यु की अमृत-सेज पर कवि वह सुप्त हमारा!

लघु-लघु दोहों में अनुभव के दीप असंख्य जला कर,
हारे-थके रुके-भटके को नित नव पथ दिखला कर,

गत-आगत को और अनागत को चिर दीप्त बनाता,
यहाँ सो रहा महामहिम कवि नव-नव छवि-निर्माता।

काल-महोदधि के उर पर जो ज्योति-स्तंभ अचल है,
यह खँडहर उस कविर्मनीषी का विश्राम स्थल है!

भारतीय संस्कृति की जिस पर विजय ध्वजा फहराती,
यह धरती शत रत्न-सौध की सत्ता विफल बनाती!

यह साहित्यिक महातीर्थ है, यहाँ विनत हो आओ,
देश-जाति के, संप्रदाय के बंधन तोड़ बहाओ!

धरा एक है, धर्म एक है, मनुज एक है भाई-
इस खँडहर में यह रहीम की कंठ ध्वनि है छाई।

निराला के प्रति

जय ज्योतिरूप! जय ज्योतिनाम! जय ज्योतिधाम!
वरपुत्र भारती के तुमको शत-शत प्रणाम!

छाया था उर-उर रीति-रूढ़ियों का भ्रम-तम,
फूटी जिसमें श्री 'भारतेन्दु' की कला प्रथम।

फैली 'प्रसाद' की प्रतिभा की फिर प्रत्यूषा,
वासंतिक नव निर्माण-चरण-अमलिन भूषा!

तदनंतर उसमें रश्मि-प्रखर शत-सूर्यकान्त,
उतरे तुम, पा आलोक मिट गया शेष ध्वान्त,

तोड़ी तुमने सब अंध बंधनों की कारा,
बह चली नवल आनंद-चेतना की धारा।

वैतालिक तम के - जंबुक, काक, उलूक, भेक,
चीत्कार कर उठे, दुःसह था जिनको विवेक!

पर अप्रतिहत ही रहा क्रान्ति का वह प्रवाह,
प्रतिरोध रौंदते हुए बढ़े तुम सहोत्साह!

विक्षत जर्जर प्रतिपद प्रहार पर पा प्रहार,
तुमने देखा भी नहीं कभी पीछे निहार!

प्रिय जन के दुःसह वियोग, विषम आर्थिक बाधा,
सह कर भी छोड़ी नहीं सिंधु ने मर्यादा।

उन्नत ही रहा ललाट, रही श्रमश्लथ काया,
बिखरी अलकों को चूम पवन ने सहलाया।

निर्भय मृगेन्द्र-सी दृष्टि लक्ष्य से रही बँधी,
इस भाँति साधनासीन रहे तुम धन्य सुधी!

प्राणों में कितना अमृत पिए थे तुम शंकर,
इस मरु में भी सूखा न कभी जिसका निर्झर।

जग के मायामय आँगन पर जलधर उदार,
बरसों अजस्र शतवर्ष ज्योति-जलकण अपार।

जय ज्योतिरूप! जय ज्योतिनाम! जय ज्योतिधाम!
वरपुत्र भारती के तुम को शत-शत प्रणाम!

विलसे तुम कविता-कानन के शाश्वत वसंत,
आमोदित नित नव परिमल से सब दिग-दिगन्त!

वाणी की वीणा के तारों का मधु अपार,
ले हुई स्वरित 'गीतिका' तुम्हारी बार-बार।

तुमने हँस-हँसकर ज्वलित हलाहल किया पान,
बदले में जग को अमृत कला का दिया दान!

वह अकल कला-सृति अनुपम जिसकी 'अनामिका',
भारती-भवन की छवि की अभिनव प्रसाधिका!

'राम की शक्ति की पूजा' का रचना-कौशल,
बन गया भारती का सहस्र-दल-पीठ विमल!

फिर 'तुलसीदास'- सहास हुई नव-काव्य-कला,
चूड़ामणि का उसको निरुपम उपहार मिला।

निर्माल्य समर्पण के भावों के लिए चरम,
'अर्चना' तुम्हारी गीति-गुंज बन गई परम!

कुसुमादपि-कोमल, किंतु वज्र से भी कठोर,
तुम घेर घेर घनतिमिर रहे गरजते घोर!

विद्युत्-छवि, हे कवि! सदा नवल जीवन बरसे,
सुनकर वह 'बादल-राग' प्राण हरषे सरसे!

बह गया उसी स्वर में सदियों का व्यथा-भार,
हो गया धरा पर फिर चिति का प्लावन-प्रसार।

ढह गए सकल छन्दों के बंधन के कगार,
सब बहा ले गई जीर्ण-शीर्ण वह प्रबल धार।

नवयुग के हे शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य,
प्रति किरण तुम्हारी जनता का जागरण-तूर्य।

जय ज्योतिरूप! जय ज्योतिनाम! जय ज्योतिधाम!
वरपुत्र भारती के तुम को शत-शत प्रणाम!

शोणित को करके स्नेह देह वर्तिका बना,
जल तिल-तिल पल-पल रहे तिमिर हरते अपना।

देवव्रत! जीवन सब शर-शय्या पर बीता,
बहती ही रही कंठ से इस युग की गीता!

लज्जित होते थे देव देखकर जो काया,
उसको अभाव के दीमक ने क्षण-क्षण खाया।

पर दूर हुआ युग का अनन्त अवरोध-भार,
हे नवयुग के वाल्मीकि! खुले सब मुक्ति द्वार।

ढह-ढह कर, टूट-टूट, मर-मर, मिट-मिट क्षण-क्षण,
'ध्वंसावशेष' तुम गए आज अपने ही बन!

जनहित की वेदी पर देकर निज अस्थि-दान,
युग के दधीचि! गाए तुमने शत शक्ति-गान!

निर्मित उससे ही जनता के शिव का पिनाक,
साहित्यिक-सत्ताधर जिसको न हिला पाए मनाक!

देकर विदेह-भावों को रसमय शब्द-देह,
अवनिजा-कला को लाए तुम सस्नेह गेह।

सच्चिदानन्दमय - चरम सत्य साकार - राम,
आ मिले उसी से सहज परम विश्राम-धाम।

इस पूर्णच्छवि के अंकित कर शत ज्योति-चित्र,
प्रति पत्र कर दिया अपना तुलसी-सा पवित्र।

भास्वती तुम्हारी प्रतिभा की पार्वती परा,
बन गई परम शिव के उर की आनन्द करा।

जय ज्योतिरूप! जय ज्योतिनाम! जय ज्योतिधाम!
वरपुत्र भारती के तुम को शत-शत प्रणाम!

विठोबा के संतरे

फिर खिली देश के भाग्य-गगन की राका
उपवास आज टूटेगा महात्मा का।
झुक गई ब्रिटिश सरकार, झुके अम्बेदकर,
सत्याग्रह हुआ अमोघ सिद्ध धरती पर।

मरने वाला था धर्म जिलाया उसको,
खंडित होती थी जाति बचाया उसको।
गांधी के तप से प्रगट हुई वह ज्वाला,
जिसने कि तपा हिन्दुत्व शुद्ध कर डाला।

यह फैल गया संवाद संतरे लेकर,
तोड़ेंगे व्रत बापू होने पर दुपहर।
सम्पूर्ण देश में था सुखमय कोलाहल,
पर अद्वितीय थी पूना वाली हलचल।

प्रति जन का मन कलरव कल्लोल भरा था,
उर-उर में सात्विक स्वर्ग स्वयं उतरा था।
सब लगे चाहने ले संतरे हमारे,
तोड़ें व्रत अपना भारत के दृग तारे।

राजा महाराजा सेठ बड़े अधिकारी,
क्रय करने को संतरे व्यग्र थे भारी।
अब तो मंडी में दौड़-धूप थी ऐसी,
थी हुई न तब तक और न होगी जैसी।

चढ़ गया भाव भी क्षण में अतिशय उनका,
पर किसे ध्यान था उस अवसर पर धन का।
शतगुण तक देकर मूल्य संतरे लेकर,
सब चले भेंट करने बापू को सत्वर।

फलतः न संतरा बचा एक मंडी में,
यह लख कुढ़ता था दीन विठोबा जी में।
हरिजन बालक वह बापू को प्यारा था,
उसके प्राणों में प्रेम भाव न्यारा था।

बापू ने उसको बचन दिया था हँसकर,
तोड़ूँगा व्रत संतरे तुम्हारे लेकर।
इसलिए चार आने घर से लाया था,
कठिनाई से वह उन्हें जुटा पाया था।

पर उस अवसर पर क्या थे सोलह पैसे,
जब एक संतरे पर हों रुपए बरसे।
संतरे अकिंचन कहीं नहीं पाता था,
दूकानों पर दुतकारा ही जाता था।

कहता था मैं मुख कैसे दिखलाऊँगा,
बापू के सम्मुख अब कैसे जाऊँगा।
भय है, यदि वे संतरे न मेरे पावें,
उपवास न तोड़ें, भूखे ही रह जावें।

सुन कर हँसते थे लोग समझ पागल है,
पर सदा भक्त को निज श्रद्धा का बल है।
अन्त में द्रवित हो गया एक फल वाला,
संतरे चार अति सूखे ढूँढ़ निकाला।

हँस कर बोला, ''वह काम चले ले जाओ,
अपने बापू को इनका स्वरस पिलाओ।''
वह पूर्ण काम हो गया सिद्धि सी पाकर,
ज्यों जन्म रंक ने पाया पारस पत्थर।

ज्यों वैनतेय के पंख मिले हों माँगे,
मारुत पीछे था दौड़ चला वह आगे।
भागता हुआ चल जेल द्वार पर आया,
सारे पूना को वहाँ उमड़ता पाया।

अब जन समुद्र तिर कैसे आगे जावे,
थी विकट समस्या यह कैसे सुलझावे?

x x x

उपवास-भंग की घड़ी निकट आई थी,
छाया रसाल की बिछी चारपाई थी।
उस पर लेटे थे बापू ज्योतिर्विग्रह,
सच्चिदानन्द घन बरस रहे थे रह रह।

घेरे बैठे थे उनको महामनस्वी,
नेता स्वदेश के पूज्य वरिष्ठ यशस्वी।
आए गुरुदेव कवीन्द्र गद्गद वाणी,
बह चली देवगंगा सी कल कल्याणी।

उस स्वर में हो तल्लीन संतरे चुनकर,
कमला नेहरू थीं निकालती रस मलकर।
युग-पुरुष बुद्ध हित ज्यों शुचि-चरित सुजाता,
लाई थी पायस मधुमय जीवनदाता।

वैसे ही वह रस ले बापू ढिंग सत्वर,
बा पहुँची, पीने हेतु हुए वे तत्पर।
पर सहसा उनको याद वचन वे आए,
जो दीन विठोबा ने थे उनसे पाए।

बोले, पर उनका कंठ रुद्ध हो आया–
''क्या नहीं संतरे अभी विठोबा लाया?
मैं उन्हीं संतरों का रस लेकर अपना,
तोड़ूँगा यह उपवास, न अन्य कल्पना।

खोजो उसको''– कह मौन हुए वे ज्योंहीं,
हो गई उपस्थित जनता चंचल त्योंही।
जन 'कहाँ विठोबा, कहाँ विठोबा' बोले,
वे एक साथ थे कंठ और दृग खोले।

अंततः विठोबा गया खोज कर लाया,
बापू ने उसके सिर पर हाथ फिराया।
बहते थे झरझर झरझर उसके लोचन,
कर काँप रहे थे स्वेद पूर्ण था आनन।

चरणों में अर्पित किए संतरे सूखे,
बापू थे केवल भाव-भक्ति के भूखे।
शबरी के बेरों की सुधिकर जन रोये,
संतरे सुदामा के तन्दुल ही थे वे!

खलिहान

आज खिली है कली गाँव के उर की खलिहानों में,
स्वयं अन्नपूर्णा उतरी हैं खेतों-खलिहानों में!
पकते-कटते हुए खेत में थीं सोना बरसाती,
खलिहानों में अन्नराशि पर बैठ वही इतरातीं!

बाँट रही हैं वे सुहाग, सुषमा, सुख, श्री जन-जन को,
मंडित करती हैं मंगल के अमल ग्राम-जीवन को!
उजड़े खेत, बसा है उनका वैभव खलिहानों में,
है कलरव-कल्लोल गाँव का उमड़ा खलिहानों में!

खड़े लिए फल नवल आम हैं फागुन के बौराये,
झूम रहे हैं महुए, कटहल जग गन्धान्ध बनाये!
वहीं बसी है छायातप में खलिहानों की बस्ती,
रंगीनी के इस आलम में है बस केवल मस्ती!

मड़नी चलती है, बिरहों की आह बिखरती रहती,
कोयल, सुये, पपीहे की तानों पर हवा मचलती!
गेहूँ, अरहर और चना की राशि उसाई जाती,
देख-देख साजन का पौरुष ग्राम-वधू मुसकाती!

इस पौरुष से होड़ लगाते हैं पछुआ के झोंके,
धरती के सपूत की गति को कौन कहाँ जो रोके?
धरती कृषकों की माता है सबकी भाग्य-विधाता,
खलिहानों में उसका संचित प्यार उमड़ छा जाता!

गाँव हार की छवि के संगम हैं खलिहान हमारे,
इनसे ही पलते हैं नगरों के कौतूहल सारे!

वैषम्य

अर्थोपासक इस समाज की
कुलिश हो गई छाती,
दीनों की करुणा दानव को
द्रवित नहीं कर पाती।
राज-भवन उठे रहे चतुर्दिक
देश बनाकर खँडहर,
मोटे होते सेठ
गरीबों का शोणित पी-पी कर।
नंगी है नारियाँ,
कठिन है तन की लाज बचाना,
तड़प रहे शिशु
उन्हें कठिन है दूध बूँद भर पाना।
जिन श्रमिकों के बल
चलती हैं मिलें-कलें ये भारी;
उनका ही परिवार
निगलती भूख और बेकारी।
भूखे हैं विद्वान्-
छिन गये जीवन के सब साधन,
कलाकार भी खिन्न
रुका है सुन्दर का आराधन।
पर उदार पूँजीपति की
बह रही दान की धारा,
प्लावित मदिरालय वेश्यागृह-
मिलती, नहीं किनारा!!

तीन चित्र

(१)

नभचुम्बी सोने का मंदिर, समासीन भगवान,
आँगन में भक्तों का जमघट, लगा हुआ है ध्यान!
बाहर अंधे और अपाहिज सिकुड़े नर-कंकाल,
तड़प रहे हैं उदर-दरी में इनको दो कुछ डाल!
माँग रहे हैं कौर, भूख से निकल रही है जान,
देखो इनकी ओर, तनिक तुम देखो धर्मप्राण!
गूँज उठा, घन-घन-घन-घन मंदिर में घंटा-नाद,
डूब गई हा! डूब गई वह बेबस की फरियाद!

(२)

पाले में भीगा ठिठुराया प्रखर बह रहा वात,
काटे रहे ये कौन गगन के तले पूस की रात!
झाँक रही है मलिन चीथड़ों से शरीर की खेह
पत्थर है क्या? गल न गई जो इस जाड़े में देह!
पूरब में ही ऐंठ अकड़ कर अटक गया रवि जाग,
इन दीनों को तो नसीब भी हुई न निशि में आग।
गरज रहा है यह समीप-ही मिल-भोंपू का नाद,
निगल गया वह निर्दय दानव दीनों की फरियाद!

(३)

मिली पीठ से पेट, नग्न-तन रूखे सूखे केश,
डोल रहीं हड्डियाँ, नहीं है रक्त माँस का लेश।
सूखे-से-स्तन नोच रहा है वह समाज का पाप,
शिशु है, शव है, अथवा है वह मूर्तिमान अभिशाप!
बची हुई है एक चीथड़े से नारी की लाज,
कहीं उसे भी लूट न ले यह निर्मम अधम समाज!
सम्मुख है प्रासाद, प्रहरियों का दारुण दुर्वाद,
डुबा रहा है इस दुखिया की टुकड़े की फरियाद!

पाँवड़े

भुरहरी रात, गिरते हैं टूट-टूट तारे,
लहरों में बेबस बुझते जैसे अंगारे।
है जमा शीत से ताल, हिला पछुवा जाता,
खेतों में खड़ा अनाज काँप कर मुरझाता।

बरसा ही किया तुषार रात भर एक तार,
सब अचल पड़े हैं जड़े गाँव, बन, बाग, हार।
भूँकता श्वान भी नहीं, घना है सन्नाटा-
पर गूँज उठा छप-छप-छप धोबी का पाटा।

x x x

''घुटनों तक जल में डूब कर्म में लीन मौन,
धोबी, कुसमय में कहो धो रहे वस्त्र कौन?''
''घर बड़े सेठ के नेता जी की है दावत,
पाँवड़े धुल रहे जिन्हें बिछा होगा स्वागत!''

यंत्र

यह विशाल सौन्दर्य
नग्नता में निज निरुपम,
अविश्रान्त दिन-रात
दैत्य-सा करता है श्रम।

प्रति अवयव तैलाक्त
लौहमय सुगठित दृढ़ अति,
क्षण-क्षण नव निर्माण-
शील वैद्युतिक सहज गति।

शक्ति-स्रोत, बल-दृप्त,
ओज-पौरुष से मंडित,
मानवता के बाहुदंड
ज्यों चंड अपरिमित।

कर सकते ये भरण
और पोषण जन-जन का,
दे सकते हैं भुक्ति-
मुक्तिमय वर-जीवन का।

x x x

पर पूँजी के नाग-पाश में
बँध बेचारे,
शोषण के बन गए
विवश-से साधन सारे।

शक्कर मिल

कृषकों के श्रम के सुधा-बिंदु पी-पीकर,
जो खेतों में थी ऊँख किए ऊँचा सिर!

उसका रस जी भर पिया किया नव-निर्मित,
रे, राशि-राशि शर्करा हो गई संचित!

पा श्रमिकों की अविराम साधना का धन,
शक्कर की मिल बन गई माधुरी का घन!

विद्युत के दीपों से पुलकित आलोकित,
निशि में लगती वह चंद्रलोक-सी सज्जित!

x x x

पर पूँजीपतियों से धर्षित वह प्रतिफल;
भरती है गहरी आह-धुआँ दल का दल!

कातिक

कातिक की भुरहरी रात
शुक्रोदय का क्षण,
खेतों में है मुखर
गाँव वालों का जीवन।

गूँज रहा सब ओर
भजन का बिरहों का स्वर,
बैलों की घुँघुरुओं
घंटियों का स्वर मंथर!

हार हुए तैयार
बुवाई की ऋतु आई,
नवोल्लास की लहर
कास-कुस तक में छाई!

लिखता है हल
विजय-लेख श्रम का धरती पर,
त्रयोदशी का चाँद हँसा
हँसिया सा ऊपर!

अगहन गया

अगहन गया, ले गया सब
अवशिष्ट शरद का वैभव,
आया पूस, शीत ने पाई
शक्ति और यौवन नव!
सिकुड़ा दिवस
मलिन कुहरे से रात, बात ठिठुराई,
बढ़ते हुए शस्य की
चारों ओर श्यामता छाई!

पछुआ पड़ा प्रचण्ड
बरसने लगा धरा पर पाला,
जड़ धरती ने भी ओढ़ा है,
दुहरा हरा दुशाला!

पर इन गाँवों में
रहते हैं बहुसंख्यक नर-नारी,
तन पर वसन, न अन्न पेट में-
जीवन है लाचारी!
ये पयाल की सेज
बिछाकर, आसमान ओढ़ेंगे;
और, सुबह से उदर-पूर्ति हित
साग-पात जोड़ेंगे।।

पूस का दिन

पौ फटते घिर आए
गहरे, भूरे, धौरे बादल
कुहरा पड़ा
बरसता आता दिशा-दिशा से काजल!
घर-घर से अलाव जल-जल
कर धुआँ उगलते जाते,
गाँव खेत-खलिहान-बाग-वन
नहीं नजर कुछ आते।
एक रूप है अंधकार में
खेतों की हरियाली,
छिपी मटर, गेहूँ, जौ, अरहर,
सबकी छटा निराली।
केवल फैली हुई क्षितिज तक
सरसों पीली-पीली,
जाग रही दीपक की लौ-सी
देती तनिक उजाली।
ठिठुर रहे हैं लोग
शिशिर से जड़ीभूत है काया,
इस कुसमय में भी खेतों में
हिलती किसकी छाया?
यह तो अधनंगी नारी है
नहीं गेह में दाना,
बच्चे चार
बीनकर बथुआ जिनकी भूँख बुझाना!

माघ की रात

निठुर माघ की रात
ठिठुरती है पत्थर की काया,
सना शिशिर में सुन्न पड़ा है जग-
जाड़े की माया।
तारे अपलक
आसमान की आँखें हैं पथराई,
प्राण-हीन लोटती चाँदनी
धरती पर मुरझाई।
घने कुहासे के परदे में
नजर नहीं कुछ आता,
सर्राटा भरता पछुआ का
झोंका आता-जाता!
केवल जलता हुआ दूर पर
एक अलाव अकेला,
जाग-जाग कर जगा रहा है
सन्न-शून्य यह बेला।
ताप रहे हैं काँप-काँप
कुछ खेत सींचने वाले,
इस मेहनत पर सुखी सो रहे
महलों में मतवाले!

हेमन्त

ओस-कणों से सिक्त धरा है गीली-गीली,
तरुणातप को ओढ़ बन गई नीली-पीली!
धूमिल घन नीहार-आवरण दीर्ण बनाती,
फूली सरसों फैल क्षितिज तक है मुसकाती!

खिलता है पीतिमा-मंजु गेंदा उपवन में,
शेष शरद का कास-हास ऊखों के वन में!
गेहूँ-जौ के खेत बढ़ रहे पाकर पानी,
जाती सारस-पंक्ति जहाँ स्वर से ही जानी!

खग छज्जों पर बैठे धूप सेते सुख पाते,
सहज शीत-जड़ पंख, भीत भी भाग न पाते!
हैं पुरइन के छत्र आज क्षत-विक्षत सारे;
नाल-शेष हैं पत्र-जाल पाले के मारे।

सर की दर्पण-कांति हुई कुहरे से मैली,
घर-घर से उठ धूम-राशि गाँवों पर फैली।
रूखे हैं तरु, पुष्प-हीन लतिकायें रूखी,
निद्रित-सी निश्चेष्ट कानन-श्री है फीकी।

शिशिर

इन्हीं छप्परों से
छन-छन कर आई थी बरसात,
और इन्हीं से झाँक रही है।
यह पाले की रात!

टकराता है जर्जर
दीवालों से शिशिर-समीर,
जिनमें दुबके हैं पयाल में
भूखे नग्न शरीर!

बिता रहे ये शीत
उदर की ज्वाला को ही ताप,
आसमान भी इन्हें देखकर
रो देता है काँप!

सिर ऊँचा कर
खड़ा हुआ है राजभवन उस ओर,
इसे कहाँ अवकाश कि
फेरे इधर दृगों की कोर?

वसंत-गीत

जाग उठी है आज चतुर्दिक फिर वसंत की आग,
प्राण-प्राण में खौल उठा है तरुण-अरुण अनुराग!

शिरा-शिरा में उष्ण रक्त का हुआ सहज संचार,
हृदय-हृदय के बाँध तोड़ता है जीवन का ज्वार!

जीर्ण-पत्र झर रहे, बहे जा रहे मूढ़ विश्वास,
डाल-डाल पर डोल रहा है जग का नया विकास!

कुंज-कुंज में गूँज रहा है अमर क्रान्ति का गान,
सुमन-सुमन में रंगा हुआ है यौवन का बलिदान!

लक्ष्य-भेद को मचल पड़े हैं मंजरियों के तीर,
उन्हें रोकने में असफल हैं भ्रमरों के मंजीर!
कण्ठ-कण्ठ से फूट पड़ा है नवयुग का आह्वान,
नव चेतना से पुलकित हो उठी धरा म्रियमाण!
नई सभ्यता और नई संस्कृति का यह ऋतुराज,
नई दृष्टि के नव-स्वप्नों में सुख-से रहा विराज!

फागुन

पकने लगे खेत, सरसों की चलने लगी कटाई,
आशा की मुसकान किसानों के होंठों पर छाई!

भूख-शीत से सूख रही थी, जिनकी जीवन-धारा,
उनका भी उल्लास उमड़ अब ढाने लगा करारा!

ले सरसों का नया तेल रूखी अलकों में डाला,
पहनी वधू-वालिकाओं ने लाल ढाख की माला!

परदेशी लौटा चुम्बन की चढ़ी चौगुनी रोली,
बैठ आम की छाँह लगे गाने नारी-नर होली।

x x x

पर, यह क्या नभ ने कैसे निष्ठुर नयनों से हेरा?
दीनों की दुनिया पर क्यों यह महाप्रलय का फेरा!

पश्चिम से उठ लाल बादलों ने बरसाया ओला,
फूटा हाय! दैव के उर का आकर यहाँ फफोला!

बुझी चिताओं से लगते हैं खेत, नहीं है दाना,
बिलख रहे सब बाल-वृद्ध भोजन का कहाँ ठिकाना।

जेठ की दुपहरी

तप रहा जेठ नभ उगल रहा है अंगारे,
लू की चोटों से मृतवत् हैं अग-जग सारे।

तप रही तवे सी भूमि, उड़ रही चिनगारी,
है प्रकट प्रकृति के पौरुष की क्षमता सारी।

मुरझाई डालों पर वसन्त की छवि कोमल,
सब धूलि-धूसरित देश बन गया है मरुस्थल।

दुःसह यह भीषण ताप, बढ़ गई व्याकुलता,
गिरि पर करते विश्राम धनी, शासक नेता।

x x x

पर इस ज्वाला से जूझ रहा जमकर किसान,
जिसकी कुदाल से हुआ धरा का भंग-मान!

इस ज्वाला से लड़ रहा श्रमिक वह मिलवाला,
जिसका शोणित जल बना धुआँ काला-काला!

इस ज्वाला को है झेल रहा कवि-कलाकार,
अविचल अभाव के बीच विपुल सहता प्रहार;

साधनासीन चिर-निर्विकार वह महाप्राण,
कर रहा सृजन क्षण-क्षण नव-नव आग्नेय वाण!

वर्द्धित वह स्वर की शिखा जगाती युग-विहान,
अब उतरेगा दुर्द्धर्ष कल्कि का क्रान्ति-यान!

वह क्रान्ति-जलेंगे जिसमें सब जड़ता प्रमाद;
फिर फैलेगा जग में आध्यात्मिक साम्यवाद!

वयःसंधि

प्रिये, शस्य की सघन श्यामता में पीलापन आया,
नव वसन्त का अग्रदूत सरसों यह फिर मुसकाया!
कृषकों का श्रम हरा-भरा हो उठा हरे हारों में;
धरती का यौवन न छिपाये छिपता नीहारों में!
कलियों से भर गई अचानक आज कुन्द की डाली,
लगी घूमने विकच गुलाबों पर प्रमुदित मधुपाली!
पीत हो गए पत्र शीत से, पछुआ पतझड़ लाया,
और उधर पल्लवित हुआ तारुण्य अरुण मनभाया!
किसी मधुर की मिलनाशा से सिहर उठी अमराई,
उसके उर की लोल लालसा मंजरियों में छाई!
अंकित है हेमन्त, शिशिर, वसन्त तीनों गृह वन में,
यथा तुम्हारी छवि जागृत है क्षण-क्षण इस जीवन में।

x x x

आज वर्ष की रानी की है वयःसंधि की बेला;
प्रणयदान का पुण्य-पर्व है अब न उचित अवहेला!

नया वसंत

अपने मिलनोत्सव में अजान,
प्रियतमे! किधर हेमन्त गया?
रजनियाँ शिशिर की स्वप्न हुईं,
आया फिर आज वसन्त नया!

खुलती व्याकुल उच्छावसों में
कलियाँ, कोकिल की काकलियाँ!
मंजरित आम्रवन में अविरल
चलतीं भ्रमरों की रंगरलियाँ।

सौरभित पवन के झोंकों में
अज्ञात किसी की छवि बहती,
अरुणिमा तरुण उर की गहरी
मनसिज की विजय-कथा कहती!

x x x

बाँध लो नयन, मन, यौवन में
मधुमय वसन्त की ये घड़ियाँ!
झड़ जाँय न बेसुध जीवन के
सपनों की कोमल पंखुड़ियाँ!

वसन्त का फेरा

आज विश्व के शिशिर-शून्य
पट पर यह काल-चितेरा!
प्रिये, स्वर्ण-लिपि में लिखता
है फिर वसन्त का फेरा।

विकस रही मंजरी, आम्र-
कानन में गाती कोयल,
विविध कामनाओं में मनसिज
जगा रहा उर के दल!

कितनी मादक फुल्ल गुलाबों के
दल की रंगीनी,
उलझी पड़ती है कलियों से
पुरवाई रस भीनी।

x x x

यही समय है, यही समय है,
सार्थक कर लो यौवन!
चिर अतृप्ति, फिर चिर अतृप्ति की
शास्ति सहेगा जीवन!

होली

रंग दिए मेरे तन, मन, प्राण,
चलाई कैसी पिचकारी!

शून्य से विविध वर्ण-संभार,
रच रहे हो तुम बारंबार,

तुम्हारा जाने कैसा प्यार,
छीनते हो सुध-बुध सारी!

दृगों से बरसाते हो रंग,
चेतना की मधु अलस तरंग,

उठ रही, शिथिल हो रहे अंग,
तनिक ठहरो मैं बलिहारी!

आज उर के सब बंधन खोल,
कर दिये तुमने अरुण कपोल,

प्रणय का नव कलरव-कल्लोल,
जगाते हो सुख-दुख हारी!

फागुन

पतझर के सूने रंध्रों में फूँकी मुरली,
किसके स्वर से मुखरित उपवन-वन गली-गली?

स्वर-स्वर पर घिर-घिर आते रे रस के बादल,
हैं बरस रहे मधु, गंध, रूप, यौवन, पल-पल!

जागे शुक-पिक के छंद, हुए मुकुलित रसाल,
सरसी के दृग से हँसे, लसे सरसिज अराल!

शिंजित, गुंजित, पुलकित प्रतिगति आगतपतिका,
पर्णाभरणा सज गई भ्रमरनंदिता लता!

कलि-कुसुमों से भर गया नया जग का आँगन,
मनसिज के धनु से छूट पड़ा, उमड़ा फागुन!

पुरवाई

कहो, किस देश से आई,
चपल यह आज पुरवाई?

सुशोभित शीश पर नक्षत्र-शशि-वर छत्र-सा अम्बर,
उतरती, तैरती नभ, चाँदनी के हास-पंखों पर,
सुवासित रेणुओं से वासिता यह अप्सरा आई!

कहो, किस देश से आई,
चपल यह आज पुरवाई?

अलक्षित इंगितों पर काँपती यह यूथिका थर-थर,
मिला संदेश प्रिय के एष में आकुल चला मधुकर,
पुलिन के मधु-अधर चुप-चूम तटिनी लोल लहराई!

कहो, किस देश से आई,
चपल यह आज पुरवाई?

पिकी की वेदना का तीर रह-रह चीरता अन्तर,
बिंधे स्वप्नस्थ-से नीरव खड़े पथ, पार्श्व, पुर, प्रान्तर,
धरा को प्राणधन निज श्यामघन की याद हो आई!

कहो, किस देश से आई,
चपल यह आज पुरवाई?

आओ, पिएँ प्रेम का प्याला!

प्रिये! सघन आषाढ़-गगन में,
उमड़ी प्रथम श्याम-घन माला!
आओ, पिएँ प्रेम का प्याला!

किसी चपल की अलखित चितवन,
बेध गयी, अग का, जग का मन,
खोज रहा समीर आलिंगन,
चातक तृप्ति-विधुर मतवाला!

अगणित कण्ठों के आकुल स्वर,
पुंजीकृत जीवन के पथ पर,
कहते-'उतरो, झरो वारिधर,
शीतल करो हृदय की ज्वाला!'

x x x

यह अभिमान-मान, यह कुण्ठन,
छोड़ो आज लाज-अवगुण्ठन,
पीने दो, पीने दो इस क्षण-
विस्मृतिमयी अधर की हाला!
आओ, पिएँ प्रेम का प्याला!

घनों ने नए राग छेड़े गगन में!

तड़ित की चकित दृष्टि से लख धरा को,
पवन-पंख में ले प्रणय की त्वरा को,
किया स्नेह से सिक्त मिलनातुरा को,
गए बस प्रिया के नयन और मन में!
घनों ने नए राग छेड़े गगन में!

शिखी ने चपल नृत्य-पद-चार पाए,
प्रमीला पिकी ने मुदित गान गाए,
व्यथा चातकी की न छिपती-छिपाए,
विरह प्राण में, ध्यान है प्राणधन में!
घनों ने नए राग छेड़े गगन में!

पड़े सरि-सरों के मिलन-स्वर सुनाई,
गमक केतकी-गंध की चारु छाई,
दिशायें सजल श्यामता में नहाईं,
विभा भर गई है दिवा के अयन में!
घनों ने नए राग छेड़े गगन में!

देख री घनश्याम छाए!

यामिनी में दामिनी को अंक से अपने लगाए-
देख री, घनश्याम छाए!

उच्छ्वसित, हर्षित प्रणय की सहज रस-धारा रही झर,
मुखर प्रति उर में निरन्तर मौन के मधुमय अमृत स्वर,

हास से आकाश के निज वास को ज्योतित बनाए।
देख री, घनश्याम छाए!

ध्वनित जो सरि में, सरों में, निर्झरों में मिलन-गायन,
चातकी के चकित प्राणों के लिए असहन गया बन;

कह उठी- 'प्रिय-प्रिय कहाँ, किस देश में अभिराम छाए!'
देख री, घनश्याम छाए!

मैं इधर विकला विरह के असि-निशित निज दुख-शयन पर,
हृदय में प्रिय-स्मृति, दृगों में आसुओं के सजल जलधर,

जागती विधुरा धरा, खद्योत के दीपक जलाए!
देख री, घनश्याम छाए!

किसी के नयन ये

किसी के नयन ये!
झरे फिर झरे
दाह-दुख के अयन ये!

कहो किस विरह की कठिन पीर पा ली,
दु:सह वेदना जो न जाती सम्हाली,
उमड़ता विकल मन, घिरे घन सघन ये!
किसी के नयन ये!

मिलन-वय धरा साज धानी सँवारे,
लता-कुंज तरु-पुंज मृदु गुंज धारे-
व्यथित कौन, किसके निठुर प्राणधन ये!
किसी के नयन ये!

बरसती जल-धारा

पावस निशीथ, घन-संकुल नभ,
रस-मुकुल बरसती जल-धारा!

कुछ खोज रही दामिनी विकल,
तुम सोईं, मुद्रित दृग-तारा।

बिखरी कपोल पर कुटिल अलक,
कुछ रहस-भरी मृदु पवन-चपल,

निद्रित इस मुख-छवि में विलीन,
कितने ब्रीड़ा-पीड़ा सुख-छल!

सोओ प्रिय, सोए विश्व स्तब्ध,
हो-तमोमयी यह निशा अमर!

निष्पलक चंचला के क्षण में,
मैं पिऊँ रूप लोचन भर-भर!

लावण्य दीपमाला

(१)

भर गए चतुर्दिक वन-वन में मधु-गंध गान,
झुक गए किसी के चरणों में सब पके धान!

निस्तन्द्र गगन से उतर रही ज्योत्स्ना अमंद,
पद-पद कुमुदों के खुलते हैं आनन्द-छन्द!

कैशोर गया, बरसा खेतों पर नव-यौवन,
उल्लासपूर्ण हैं कास-घास प्रति क्षुप-प्रति तृण!

तेज मेघों का निर्मोक प्रकृति यह ऋतम्भरा,
है क्षण-क्षण नव छवि इंदुमती सी स्वयंवरा!

x x x

तुम भी जागो प्रिय, करो शरद का अभिनन्दन,
सुषमा के सर के रहें दृग-कमल ये बंद न!

(२)

नक्षत्र मालिका सजे निशा नयनाभिराम,
लगती है कुमुदों से मोदित सरसी प्रकाम!

पहने धरती ने अँखुओं के सुकुमार हार,
सौरभ के शर से बिद्ध प्रकम्पित हरसिंगार

आया, आया प्रिय दीपों का त्यौहार आज
प्रति उर सुषमा की शिखा रही सुख से विराज!

x x x

मैं लाया हूँ अधरों की कोमल मधु ज्वाला
जागो तुम भी मेरी लावण्य-दीपमाला!

शरदागम

आज निशा के सौरभ-चंचल उच्छवासों में आप;
मुझे सुनाई पड़ा शरद का मंद मधुर पद-चाप!

तैर धान के खेत चपल यह आई कौन बयार,
यौवन का नव-मुकुल-स्पर्श भर कम्पित हरसिंगार!

जलद-खण्ड से झाँक रहा है विधु-मुख कोमल-हास;
बाँट रहा है कुमुद-कुमुद को कास-कास को लास!

x x x

खुले अचानक सुप्त प्रिया के नयन-कमल कुछ काँप;
मुझे सुनाई पड़ा शरद का मंद-मधुर पद-चाप!

मिलन–गान

देखो, प्रिय! गृह के आँगन में
फैली शारद ज्योत्स्ना अमन्द!

खुल रही रस–विकल शेफाली
फूटते सुरभि के विपुल छन्द!

आनन्दमयी यह निशा अचिर,
सोकर खोओ मत इसे प्राण!

आओ इस कुसुमित उपवन में,
गाएँ हम आमरण मिलन–गान!

अक्षय सुहाग

अक्षय सुहाग-श्रृंगार री!
अविरत अप्रतिहत अग-जग का
तुम पर प्यार अपार री।

काया कनक-ज्योति कल माया,
प्रणय-कुंज-तल शीतल छाया,
प्रिय विभ्रम-विलास अलसाया,
अपना सुख संसार री।

वह सरोज-मुख, वे अलि-अलकें,
स्वर्ण-स्वप्न-विकसित प्रिय पलकें,
वे सौंदर्य-सुरा की छलकें,
सब तुम पर बलिहार री!

विपुल वियोग विधुर-जन-क्रन्दन,
आर्त हृदय के करुण अश्रु-कण,
आर्द्र नहीं करते तेरा मन,
यह निष्ठुर व्यापार री!

हेमन्त-गीत

देकर कुन्दों को सुषमा का आभार
गई, वह शरद गई!

उतरी धरती के आनन पर
आभा अनुपम हेमन्तमयी।

लतिका में तरु-तृण-गुल्मों में
नव-नव तुहिनों के सुमन खिले!

दिग्वधुओं के मृदु अधरों पर
चुम्बन तुषार के सहज मिले।

प्रिय के परिरम्भण को अधीर
आतुर-सा सहसा दिवस ढला।

तम के अंचल में चंचल-सी
निकली प्राची में चन्द्रकला!

x x x

फिर डोल उठी रे पश्चिम की वातास
विषम अति शिशिर-सनी!

फिर साल उठी है जीवन में
किसकी सुधि की यह विशिष-अनी?

अलि, कमल खुलने न पाया

हन्त! आज निशान्त में हेमन्त ने उसको जलाया!
अलि, कमल खुलने न पाया!

हुआ क्रूर दिनान्त, आई लुब्ध लुब्धक यामिनी जब,
चन्द्रहास, विलोक वे भीता हुईं दिग्भामिनी सब;
बद्ध बाहु-मृणाल में तम ने उन्हें उर में छिपाया!

स्तब्ध थे नक्षत्र, प्रति तरु पत्र में था सुप्त मर्मर,
और, निष्प्रभ चाँदनी नभ से गिरी मूर्च्छित धरा पर;
सिहर थर-थर दीन के निःश्वास-सा वातास आया!

प्रकृति साश्रु हुई, हुआ परिव्याप्त प्राणों में प्रकम्पन,
सभय प्राची में उषा ने करुण निज खोले विलोचन,
शिशिर के शर-से अचानक प्राणधन को विद्ध पाया!
अलि, कमल खुलने न पाया!

शिशिर

नव तुहिन-मुकुल में मोदमयी
जागी वह यौवन की तनिमा,

कुञ्झटिका की अलकों वाली
हिम-शीतल जीवन की प्रतिमा!

लज्जानत, उस विधु ने निरुपम
तोड़ी निशि के तम की कारा,

रे, प्लावित मेरे अन्तर में
आनन्द-चेतना की धारा!

x x x

निद्रित जगती के आँगन में,
उसने शुचि हास विखेर दिया!

कुंदों ने खिल-खिल, खुल-खुल कर
मोहक स्मिति-स्पर्श अमंद पिया!

यह शिशिर का अंत

पल रहे प्रति वृन्त पर पतझार और वसन्त!
यह शिशिर का अंत!

पत्रहीन मधूक सूनी डाल,
फूल को फल को रही पाल,
खड़ा पीपल किए ऊँचा भाल,
प्रज्ज्वलित किसलय-कदम्ब अनन्त।

पीत-पत्रों के शयन पर आज,
ले रहा अंगड़ाइयाँ ऋतुराज,
मुखर शुक, नर्तित मयूर समाज,

विकल यौवन, सुरभि-शिथिल-दिगंत!
यह शिशिर का अंत!

मधुर शोभा भार री!

दृगों के तम-द्वार की तुम, ज्योति-वन्दनवार री!
मधुर शोभा-भार री!

ज्ञान तुम, निःशेष, सब भ्रम,
प्रभा तल्प सुवेश, जग तम,
सकल मम श्रम-साधना-
आराधना की पार री!

कुसुम-मुख मकरन्द नव-नव,
रूप रूपसि, निरुपमित तव,
पान कर कवि-मन-मधुप,
लवलीन सुख-श्रृंगार री।

लख खिला कल-कल्प-सुर-तरु,
सिंचा सौरभ-जल द्रवित मरु,
जग बजे उर के सजे अनुराग-
सुर के तार री।
मधुर शोभा-भार री।

नैश वन-जीवन की मधु प्रात

आई तम के उर, शिंजित खग रव-नूपुर अवदात!
नैश वन जीवन की मधु प्रात!

छवि की सरसी के शत शतदल,
चुंबित-मुख नव ज्योति चपल पल,
सर के शर से, भेद अगम जल,
खिले सकल नवजात!

तारक-हार स्नेहमय मुख-शशि,
गगन सिन्धु से हुई पार निशि,
नए प्राण से हँसती दिशि-दिशि,
उड़ा सुअंचल-पात!

मधु घोल रही

तुम कौन स्नेह-दृग खोल रही।
स्वप्नों में मृदु-मृदु डोल रही।

उर की वीणा की नव निःसृति,
आकल कर व्याकुल तर झंकृति,
प्राणों के पावन गायन की
गति में तुम अविरत तौल रही।

मेरे नव जीवन के नभ पर,
तुम यौवन की ज्योत्स्ना शुचितर,
तमके उरकी प्रिय अंकुर सी,
शशि, चिर सुख मुख-मधु घोल रही!

रूप अरूप खिला

मरु-उर-द्रवित, सुधा-रस-सिंचित,
बही स्नेह-सलिला!
दृगों में रूप अरूप खिला!

भर चेतन पुलकित संसृति-सृति,
अमर तत्व बन गई स्वप्न-कृति,
मुखरित प्राणों में गायन बन,
तप-श्रम-सिद्धि-इला!

नव-जीवन का अन्ध तिमिर हर,
आई स्वर्ण-किरण आशा भर,
चिर दर्शन बन गया अचिर,
वह मौन मिलन पहिला!

व्यर्थ का अभिमान

शरद-चन्द्रानन न प्रिय-मुख का उचित उपमान!
व्यर्थ यह अभिमान!
है मनोरंजन न खंजन,
और नव राजीव के वन,
बज रहा उर में मधुर,
उन नूपुरों का ध्यान!
कुन्द की दन्तावली मिल,
चाँदनी जिसमें रही खिल,
प्रेयसी के हास के अलि,
हीनतम व्याख्यान!
देख दिव के सुमन तारक,
हारते उर-हार पर थक,
मग्न प्रिय-छवि में सतत,
ऋतु, वर्ष, युग का ज्ञान।

हरो मेरी अमा

हँसो जीवन-गगन के
सुखद चन्द्रमा!
हरो मेरी अमा!

मैं विरह में तिमिर-लीन अहरह रहा,
दूर तुम दूर, सब व्यर्थ जीवन बहा,
अब न यह निठुर उर-ताप जाता सहा,
खुलो, प्रिय खुलो,
दुख-दोष कर तो क्षमा!

स्वप्न में ज्योति की किरण शुचि जो मिली,
पा उसे हृदय की कुमुद-कलिका खिली,
नित्य नव तव प्रणय के अमृत से धुली,-
किरण-धन, अब करो मिलन की पूर्णिमा!
हरो मेरी अमा!

निरुपमे!

निरुपमे, शुचि सुमन-वासिनि!
रेणु-तन, मधु-गन्ध जीवन,
वेणु-स्वर, सिंचित सरल मन,
ह्री-वरण श्री आभरण,
आओ प्रतनु, दृग-उर-विलासिनि!

पवन रथ से उतर धीरे,
श्रांति-पथ पर शांति सी हे,
कहो जीवन की, मरण की,
विस्मरण-गाथा सुभाषिनि!

निशागम

निशागम अलि दिशायें नलिन-सी मलिन!

मौन खग-कुल-कलालाप, क्षिति तंद्रिता,
मूँदती चपल लोचन तिमिर-आवृता,
जग गई नैशगन्धा, कुमुद सस्मिता,
चाहती मुक्त परिरम्भ शशि का मसृण।

खुल रही नील नभ-वृंत पर तारिका,
ज्योति की मन्द मधु-सरभि-संचारिका,
दृगों में स्वप्नमय स्वर्ण-नीहारिका,
घूमती, भावना-लीन मन के पुलिन!

शरण-शरण रे

जीवन का प्रति चरण-मरण रे।
कुसम-दोल पर लोल ओस-कण,
डोल रहे जग के सुख के क्षण,
वर्ण-भरण रश्मि से उतर द्रुत,
बहा विषम वातास हरण रे!

वह विभोर कैशोर हर्ष हर,
गया, घिरे तारुण्य-तपन पर,
जीर्ण जरा के घने साँध्य घन,
मृत्यु हँस रही रक्त-किरण रे!

महाकाल प्लावन में अहरह
शत-शत सूर्य-चन्द्र, तारा, ग्रह
बुद्‌बुद्‌ से उठते, मिटते ये,
विकल कह रहे-शरण-शरण रे!

आकर्षणमय विश्व तुम्हारा–

मज्जित इस छवि के समुद्र में
मिलता नहीं किनारा!
आकर्षणमय विश्व तुम्हारा।

जलद-वेश्म सुर-धनु-आरंजित,
ऊपर नील व्योम शशि-शोभित,
क्रीड़ित सतत अनन्त-अंक में,
किरण-कान्त कल तारा!

ऊर्मिल जलधि-केश उर्वी-उर,
लहराता तम-वास असिततर,
स्वप्न-विभोर निशीथ शयन पर,
वह सरि-धारा-हारा।

मद-मरन्द-मूर्च्छित कलि के दृग,
बहता मलय मन्द गन्ध-स्रग,
ए अरूप, चिर-अभिनव तेरी,
रूपमयी यह कारा!

प्रणय-सिंधु लहराया

आया री! असाढ़ फिर आया!
बादल के उर में धरती की
सुधि का तीर समाया!

अंबर से उतरी पुरवाई,
प्रिय का संदेशा ले धाई,
मिलन-मोद से भरी,
धरा ने कंचुक हरित सजाया!

विचर रहे गिरि-शिखर गगन में,
चपला से चुंबित क्षण-क्षण में,
मलिन दिवस के उर में निशि का,
स्वप्न सघन बन छाया!

जागे सुप्त गीत अंतर के
बहे प्रखर हो निर्झर स्वर के,
घट के संपुट में अकूल हो,
प्रणय-सिन्धु लहराया!

स्मित-रेखा

तम के उर विकसित स्मित-रेखा,
अंकित नव इन्दु-किरण-लेखा!

करती अशेष सुख-स्वप्न-चयन,
खोलती उषा-सी निशा नयन,
घन जीवन के वन में निर्जन,
चित्रित सी पावन मधु-लेखा!

अस्फुट, अशब्द, अश्रुत, अस्वर,
अधरों की रस-रागिनी मुखर,
प्राणों में अमर रही भर-भर,
पंकज पर तरल तुहिन-वेषा!

प्रिय तुम्हें पाऊँ

चाहता मैं कुछ न,
पर प्रियतम तुम्हें पाऊँ!
अनिल बन घूमूँ, सलिल बन बह कहीं जाऊँ,
धूम बन जल-जल उठूँ, अंबर अधर छाऊँ,

व्योम में खोजूँ, कहीं प्रियतम तुम्हें पाऊँ!
प्राण में भर गान मैं गाऊँ-सदा गाऊँ,

बनूँ चातक, पिक बनूँ, सुमयूर बन आऊँ,
स्वातिजल, ऋतुराज में, घनश्याम में पाऊँ!

धूल बन लोटूँ, कहीं पद-पद्म पा जाऊँ,
तिमिर बन भूलूँ, भ्रमूँ, भटकूँ, विपथ धाऊँ,

चन्द्र-छवि निस्तन्द्र तेरी आँक यदि पाऊँ!
प्रिय, तुम्हें पाऊँ, प्रियतम तुम्हें पाऊँ!

अस्त रे जीवन

धीर पद आता मरण,
असहाय तू न शरण
अस्त रे, जीवन!

क्षीण, मलिन प्रकाश निष्फल,
यहाँ लोहित तिमिर केवल,
डूबते युग, कल्प, काल,
अबाध यह प्लावन!

देख, प्रति पल प्रलय निश्चय,
लीन छायायें सतत क्षय,
खोज अब भी, नहीं पाए,
यदि अभय-प्रद चरण!

दूर किनारा

छिन्नप्राय है तरी जीर्ण यह,
और प्रबल है धारा!
अब भी दूर किनारा!

कालानिल प्रेरित कितने रे,
बहे इसी पथ साँझ-सवेरे,
वृन्तच्युत नभ से बुझ-बुझ ये,
सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारा!

बिछुड़े, जुड़े, जन्म, जग, जीवन,
अविकल कर्म-क्लान्त, श्लथ तन-मन,
कर्णधार, क्या अन्त-हीन है-
अब अभियान हमारा?
अब भी दूर किनारा!

जीवन जन्म मरण

आओ मधुर चरण!
खोल हृदय-शतदल के सब दल,
उतरो परिवर्तन!

भरो, करो जग के जगमग मग,
हरो जटिल भ्रम-तम-जड़ दुख-नग,
मिले दृष्टि स्थिर, सुधा-वृष्टि फिर,
सृष्टि नवल अमरण!

अकल तान, मृदु गान एक स्वर,
बहें, उभय कण्ठों के निर्झर,
रहे प्रणय-अभिनय में लय नित।

जीवन, जन्म, मरण!
आओ मधुर चरण!

मारो मत पिचकारी

होली खेलती मैं हारी!
मारो मत पिचकारी!

रँगे गुलाल, जगमगे तन मन,
भीगे वसन, वश न अब यौवन,
करती जीवन, प्राण, समर्पण,

बलिहारी, बलिहारी!

पीर-अधीर अबीर भरे दृग,
छूट गईं सखियाँ, न मिला मग,
पकड़ो कर, उठते न थके पग,

यह निकुंज श्रम हारी!
मारो मत पिचकारी!

छेड़ो न यह राग

देखो, चतुर्दिक
प्रलय की जगी आग!
छेड़ो न यह राग!

प्रिय, कण्ठ की माधुरी यों न ढालो,
मुख की मुखर भंगिमा तो सम्हालो,
मृदु हास की चाँदनी अब छिपा लो,
मुझसे झिलेगा तुम्हारा न अनुराग!

सौरभ-विकल कलि-कुसुम द्रुमलता श्रांत,
रवि, चन्द्र, उड्डुवृन्द, सब क्षुब्ध दिग्भ्रांत,
मूर्च्छित धरा है, प्रकंपित पवन-प्रान्त,
स्वर की शिखा से हृदय जल उठा जाग।
छेड़ो न यह राग।

बह गई रात

बह गई रात!
बातों -बातों में लघु पल-सी
बह गई शिशिर की दीर्घ रात!

कहते वियोग की करुण-कथा,
जागी प्रिय के उर की ममता,
पहले ही चुम्बन में सहसा,
खिल उठा लजीला अरुण प्रात।

अधरों का अधरों में सुहास,
मुरझाया जग का रंग-रास,
निष्प्रभ नभ में होती विलीन,
फीकी शशि-रेखा पीत-गात!
बह गई रात!

अश्रुमय प्रतिक्षण

वेदना के वारिनिधि का
सार यह जीवन!
अश्रुमय प्रतिक्षण!

दीन स्नेह-विहीन,
हार और प्रहार सह,
होता रहा चिर-क्षीण,
ताप घन, अभिशाप असहन
मिले चरण-चरण!

गत सकल आशा,
शेष बस उर में
व्यथा की दंशमय भाषा,
व्यर्थ कब से कह रहा मैं
''देव, शरण-शरण!''

फिर भूला गान मिला

शुक-पिक-चातक के गीतों में,
फिर गूँज उठा स्वरमय वसंत,

पल्लव-पल्लव पर डोल उठा,
हिल्लोल भरा स्मितिमय वसंत!

खुलती कलियों के प्याले से,
मधु ढाल रहा मधुमय वसंत,

मलयज की मृदुल हिलोरों पर,
आया यह सौरभमय वसंत!

x x x

लो, मानवती के अधरों पर,
पाटल का कोमल हास खिला,

अपने उपवन के मर्मर में,
कवि को फिर भूला गान मिला।

मिलेगा किनारा

मिलेगा किनारा, मिलेगा किनारा!
बहो तो, बढ़ो तो, मिलेगा किनारा!

समीरण तुम्हें सिद्धि का पथ दिखाता,
स्वयं सिन्धु पद चूमकर मोद पाता,
मधुर रागिनी के स्वरों में बुलाता,

निरन्तर उधर ध्येय का ध्रुव तुम्हारा!
बहो तो, बढ़ो तो, मिलेगा किनारा!!

तिमिर चीरती वह किरण आ रही है,
उषा व्योम में मन्द मुसका रही है,
तुम्हारी तरी तैरती जा रही है,

उठो, बंधनों की करो भंग कारा!
बहो तो, बढ़ो तो, मिलेगा किनारा!!

पाया स्नेह न कभी तुम्हारा

पाया स्नेह न कभी तुम्हारा,
नयनों के जल में पलता है
जीवन-दीप हमारा!

मैं उकसाता हूँ रह-रह कर, सुधि की गीली बाती,
किन्तु तुम्हारी निठुर फूँक से, काँप-काँप रह जाती,
मिली न अंचल-ओट, न कर का कोमल करुण सहारा!

पता नहीं क्यों रज बटोर कर तुमने इसे सजाया?
फिर कब इस धारा में निर्मम तुमने इसे बहाया?
विषम तरंगों में ठुकराया, जहाँ न कूल-किनारा!

महाशून्य में रही जागरित दीपक की लघु ज्वाला,
तिमिर ओक में बिखर गई बन किरणों की जयमाला,
है निर्वाण समीप, भय नहीं टूट गई यह कारा!

कौन तुम सुन्दरी

तिमिरहर चरण-तल विश्व नत मुग्ध-सा,
मुकुलिता हास-से हँस रही प्रति-दिशा!

हंस-से जलद-शिशु बाहु के पाश में,
बाँध, उच्छ्‌वसित नव प्रणय के लास में,

उड़ा उडुचय विलोड़न-विकल बुन्द से,
उठीं तुम तैरतीं रूप के सिन्धु से,

ज्वलित सित किरण-कौशेय में आवृता,
सहज निज लोल लावण्य-लीलारता!

व्याप्त सर्वत्र स्वर की अश्रुत माधुरी,
कौन तुम सुन्दरी?

खुल रही विकच कच-भार-सी नीलिमा,
खिल रही चन्द्रमुख की शरद पूर्णिमा!

रच रही पीन-उर-हार शेफालिका,
बह रहा पवन निःश्वास-मधु का छका!

देह की सुरभि पा नैश-गन्धा जगी,
यामिनी निखिल-द्युति दामिनी ज्यों रँगी!

देख दृग मोदमय कुमुद विकसे, लसे,
कलि-कुसुम-वृन्त से खसे रस-विवश से,

अये, किस जलज की मत्त तुम मधुकरी!

कहो, कुछ सुन्दरी?
कौन तुम सुन्दरी?

विजय के गीत गाता चल

निराशा की अमा में पूर्णिमा के गीत गाता चल!

किरण का तीर बनकर तोड़ती है यह तिमिरकारा,
बहानी है निखिल मरु में अमर आनन्द की धारा!
अटल विश्वास के स्वर में विजय के गीत गाता चल!

उड़ा दें संकटों के मेघ बढ़कर चढ़ समीरण पर,
उठा इस सुप्ति में शत चेतना की ऊर्मियाँ द्रुततर!
ज्वलित अंगार के पथ पर विजय के गीत गाता चल।

मुकुल सी खिल उठे मुस्कान सूखे विरस अधरों पर,
उरों की बीन में भर दे नई झंकार अविनश्वर!
निशित असि-धार पर क्षण-क्षण विजय के गीत गाता चल!

जगादे कोटि कंठों में तड़ित की उच्छ्वसित भाषा,
रँगे बलिदान से तेरे उषा के हास-सी आशा!
पराभव को कुचल कर वर विजय के गीत गाता चल!

आज आओ

उठा लो नई तूलिका आज आओ,
नई भित्ति पर चित्र नूतन बनाओ!

नए कंठ से फिर नए गान गाओ,
नई ज्योति बन लोचनों में समाओ!

जगाओ नई चेतना श्रांत मन में,
उषा बन हँसो फिर निराशा-गगन में!

तुम्हारी किरण से तरुण-कंज फूलें,
नए अलि नए कलि-कुसुम चूम भूलें!

नए भाव की ले सुरभि नव समीरण,
बहे हो प्रणय-वीचिमय विश्व-जीवन!

नई काकली बन खिलो कुंजवन में,
नई दामिनी-सी जगो रूप-घन में!

बसो विधु-विमल सिंधु की कल्पना में,
बरसती रहो रस धरा निर्धना में!

नए नूपुरों में नए स्वर सजाओ,
चरण प्रति चरण छंद नूतन जमाओ!

आओ स्वप्नसंगिनी

पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्नसंगिनी!

बंकिम चितवन रसाल,
नमित नयन, गति मराल,
कूजित कल नूपुर नित,
मुखर मंजु शिंजिनी!
पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्नसंगिनी!

शशि-मुख रति-रुचिर वेश,
ज्योत्स्ना-हासिनि, सुदेश,
मेचक कच, अंग विकच,
अमल सुख-तरंगिणी!
पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्न संगिनी।

गीत

रहा मैं अनिमेष !
निरुपमे, शोभा तुम्हारी
नव निमेष-निमेष!

चन्द्र-रुचि आनन सुख-स्मित,
मधुर अमृताधर दशन-धृत,
पल्लवित तनु-तन अनावृत,
घने खुलते केश!

चपल नयनों में सुखाकर,
हँस रहा मन्थन सुमन-शर,
स्पर्श-रस दोलित हृदय,
प्रियतर तरुण उन्मेष!
रहा मैं अनिमेष!

तुम रहोगे, हम रहेंगे

तुम रहोगे, हम रहेंगे!
मरण-जीवन की, पतन-उत्थान की क्रीड़ा सहेंगे!

अंध-तम पथ लीन, यंत्रित भ्रांत जीवन लक्ष्यहारा,
दूर है, पर दृष्टि में, आलोक मंगलमय तुम्हारा,
ध्वंस हो, विश्वास का संबल सबल निर्भय बहेंगे!
तुम रहोगे, हम रहेंगे!

प्रलय-वात्या में बुझें नक्षत्र शशि, पावक, तरणिगण,
निखिल क्षय में साँस-सा सो जाय चिर चंचल समीरण!
देव तुम फिर भी रहोगे, और सब तुममें रहेंगे!
तुम रहोगे, हम रहेंगे!

बसन्त-समीर!

बहा अलि, विषम वसन्त-समीर!

वेदना से चंचल मन-प्राण,
दृगों में, अस्थिर अश्रु अजान,
किसी की सुधि से चल चुपचाप-
बिंध गये मंजरियों के तीर!

खुला किंशुक के उर का घाव,
गया कोकिल का दूर-दुराव,
उठी कलियों के उर से काँप-

मुग्ध-सी सौरभ अन्ध अधीर!
बहा, अलि विषम बसन्त-समीर!!

प्रभात आ रहा

नया प्रभात आ रहा,
उठो, प्रभात आ रहा!

गई, चली गई तिमिरमयी निशा दशानना,
खुली उषा अवनि-सुता ज्वलंत पावकासना,
स्वदेश का अतीत ही भविष्य ब्याज छा रहा!
उठो, प्रभात आ रहा!

पढ़ो अमोघ सिद्धि-मंत्र आज आंजनेय-से,
विरक्ति छोड़कर सभी भरत उठें अजेय-से,
समीप राम-राज्य का प्रकाश-पुंज भा रहा!
नया प्रभात आ रहा!

उठो, अशेष ओज-तेज की बिखर रहीं किरण,
लखो, हिमाद्रि ने इन्हें किरीट-सा किया वरण,
खिले हृदय-सरोज व्योम-भृंग कीर्ति गा रहा।
नया प्रभात आ रहा!

प्रशस्त ध्येय पंथ है, न अब कभी डिगें चरण,
करो अगस्त्य से असंख्य विघ्न-सिंधु का तरण,
उठो, उठो, उठो विजय-पटह तुम्हें जगा रहा!
नया प्रभात आ रहा!

अपराजिता

(काव्य-संग्रह)

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

महान् राष्ट्रसेवी

और

जीवन-तत्त्ववेत्ता

भारत सरकार की मंत्रि-परिषद् के वरिष्ठ सदस्य

माननीय श्री सत्यनारायण सिंह

के

यशोवर्धन कर-कमलों में

निवेदन

संप्रति काव्य के क्षेत्र में बुद्धि-तत्त्व का प्राधान्य है, राग-तत्त्व या भावना का स्थान गौण या क्षीण होता जा रहा है। इसीलिए नयी काव्य-कृतियों के सम्बन्ध में रचनाकारों के लम्बे-लम्बे वक्तव्य प्रायः प्रकाशित होते हैं।इन वक्तव्यों और इन कविताओं से बौद्धिक उत्त्तेजना अवश्य उत्पन्न होती है, पर इनके द्वारा हमारे रागबोधात्मक जीवन को कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं हो पाती। तात्पर्य यह कि काव्य के क्षेत्र में इन दिनों अतिरिक्त बौद्धिकता और कच्ची भावुकता का साम्राज्य है ऐसी परिस्थिति में मेरा 'अपराजिता' नामक काव्य-संग्रह सहृदयों के समक्ष प्रस्तुत है।

मैं इसके सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक नहीं समझता, क्योंकि काल निरवधि है और धरती अत्यन्त विपुल और विशाल है।

- कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह
आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय,
जोधपुर

अनुक्रम

क्रम.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	अपराजिता (ध्वनि-रूपक)	303
2.	भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति	322
3.	महालक्ष्मी का आविर्भाव	325
4.	महाकवि निराला के प्रति	329
5.	महालक्ष्मी	333
6.	विदुला	336
7.	केनेडी के अवसान पर	341
8.	महामना मालवीय जी के निधन पर	345
9.	मानव और चन्द्रमा	348
10.	धरती और मेघ	352
11.	भारतीय सैनिकों से	353
12.	बलिदान-गीत	358
13.	विजया	360
14.	वीरबाहु	367
15.	चित्तौड़-दर्शन	369
16.	प्राण की होली	372
17.	नव संदेश	373
18.	जय कश्मीर	374
19.	उद्बोधन गीत	377
20.	व्यथा की एक कथा	378
21.	हिमगिरि का आह्वान	380
22.	जय हिमालय!	382
23.	संक्रान्ति	384

24.	भारत माता	386
25.	रेल की एक रात	388
26.	गांधी की पुकार और हरबतसिंह का बलिदान	390
27.	महात्मा गांधी की पुकार-अहमद महमद काछलिया	392
28.	गांधी की पुकार-वालियामा	393
29.	बा और बापू	394
30.	काली-करबाल	396
31.	अमर-सुभाष	398
32.	गीत	400
33.	गीत	401
34.	गीत	402
35.	गीत	403
36.	गीत	405
37.	गीत	406
38.	गीत	407
39.	गीत	408
40.	गीत	409
41.	गीत	410
42.	गीत	411
43.	गीत	412
44.	गीत	413
45.	गुर्जर भारती	414
46.	जय हिन्दी	419
47.	भारतेन्दु जी के प्रति	420
48.	गीत	421
49.	कल्कि	422

अपराजिता

(ध्वनि रूपक)

प्रथम दृश्य

वाचक- जल थल अम्बर तीनों के है शुंभराज सम्राट्,
अनुज निशुंभ सतत अनुगत है जिसका शौर्य विराट्।
स्वर्ग जीतकर वैजयंत में दोनों रहे विराज,
निर्वासित है इन्द्र, भ्रष्ट श्री भटक रहे वह आज।
सूर्य, चंद्र, यम, धनद सभी की सत्ता कर स्वायत्त,
भोग रहे हैं यज्ञभाग भी वे असुरेन्द्र प्रमत्त।
पंचभूत से महातत्त्व तक है उनका अधिकार,
धर्षित है सब प्रकृति, देवगण करते हाहाकार।
पवन, अग्नि, घन, विद्युत् सबका कर लेते वे काम,
अणु-परमाणु सभी पर करते शासन वे अविराम।
प्रलयंकर उनके आयुध हैं, वेग अदभ्र अनंत,
क्षण में निर्जन मरु बन सकता जग का विकच वसंत।
विचर रहे हैं शत-शत उनके गुप्त दूत सर्वत्र,
छिपते हैं जब जहाँ देवगण, जाते हैं वे तत्र।
हिमगिरि के सर्वोच्च शिखर पर त्रिदिवौकस सवेत,
स्मरण कर रहे जगदम्बा का-कृपादृष्टि अभिप्रेत।

(हिमालय का सर्वोच्च शिखर। देवता भगवती अपराजिता के ध्यान में लीन होकर उनका स्तवन कर रहे हैं।)

देवगण– जगदम्बे! हे शिवे! नमन है तुमको बारंबार,
शरणागत हम दीन आर्त्तजन तुमको रहे पुकार।
रौद्रे! नित्ये! गौरि! धात्रि हे! भद्रे तुम्हें प्रणाम,
ज्योत्स्नामयि! हे चंद्ररूपिणी! शत-शत सतत प्रणाम!
वृद्धि - सिद्धिरूपिणी, नैऋती, शर्वाणी विख्यात,
कल्याणि हे लक्ष्मि ! हमारा स्वीकृत हो प्रणिपात।
हे दुर्गे, हे दुर्गनाशिनी, दुर्गहन्त्री आप,
शरणागत वत्सले ! जननि जय करुणा दया अमाप।
दानवोत्थ बाधा से संप्रति पीड़ित हैं सब लोक,
धर्म-ग्लानि से बाधित जीवन, हरो विषम दुःख-शोक।
इस विपत्ति में अम्ब आप ही एकमात्र अवलम्ब,
हमें त्राण दो परित्राण दो, अब मत करो विलम्ब।

वाचक– इसी समय पार्वती पधारीं करने गंगा स्नान,
पूछा देवों से, करते हो तुम किसका आह्वान।
यह सुन उनके काय-कोष से निकलीं शिवा प्रकाम,
शरच्चन्द्रशोभना सच्चिदानन्दमयी अभिराम।
बोलीं–''ये देवता पराजित असुरों से हैं दीन,
इनकी चित्तवृत्ति मेरे ही चरणों में है लीन।''
यह कह वह कौशकी सिंह पर हुईं सहज आसीन,
ज्योतिर्मय हो उठा शिखर वह ज्यों उदयाद्रि नवीन।
तभी वहाँ पहुँचे असुरों के चंड-मुंड द्वय दूत,
जगदम्बा का रूप देखकर विस्मय हुए अकूत।
लौट गए उलटे पग दोनों असुरराज के पास,
अति बिनीत होकर निज अभिमत उनसे किया प्रकाश।

चंड- हिमगिरि पर देखी है हमने नारी एक अनूप,
लोकत्रय में, कालत्रय में अनुपमेय वह रूप।
मुंड- ज्योतित है सौंदर्य-शिखा से हिमगिरि शिखर अशेष,
भासमान है दिशा-दिशा में वह लावण्य विशेष।
चंड- असुरर्षभ! है निखिल सृष्टि के प्राप्त आपको रत्न,
चरम रत्न है वही जगत्पति, उसकी वरो सयत्न!
शुंभ- भेजो तुम सुग्रीवदूत को सत्वर उसके पास,
हम प्रणयार्थी हैं कह उसको लावे यहाँ सहास।
वरे मुझे अथवा निशुंभ को इच्छा के अनुसार,
स्वागतार्थ उस रूपराशि के हम दोनों तैयार।
वाचक- लेकर यह संदेश शुंभ का दूत त्वरित हिमगिरि पर आया,
ज्योतिस्नात कलिधौत सानु पर समासीन देवी को पाया।
अर्धचंद्र का मुकुट शीश पर, देह-लता दिनकर-निभ द्योतित,
देख प्रभा-मंडल वह अनुपम था सुग्रीवदूत हत स्तम्भित।
फिर होकर प्रकृतिस्थ अंबिका के चरणों में शीश नवाया,
श्लक्ष्ण मधुर वाणी में उनको निज प्रभु का संदेश सुनाया।
सुग्रीव- असुरराज हैं शुंभ लोकत्रय के परमेश्वर,
अव्याहत आदेश मानते जिनका सुरवर।
मैं हूँ उनका दूत देवि, सेवा में प्रस्तुत,
लाया हूँ संदेश उन्हीं का सुनें स्नेहयुत।
कहा उन्होंने - ''लोकत्रय पर मेरा है अधिकार,
अनुगत हैं सब देव, भोगता मैं यज्ञों का सार।
निखिल सृष्टि के श्रेष्ठ रत्न जो वे सब मेरे आज,
द्विरदरत्न ऐरावत मेरे गृह में रहा विराज।

कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रव आदिक अन्य रतन विख्यात,
मुझे समर्पित किये इन्द्र ने स्वयं सहित प्रणिपात।
विधि का हंस विमान छीनकर करता मुक्त विहार,
नत धनपति से महापद्मनिधि का पाया उपहार।
अक्षयश्री कल केसरमंडित जो है चिर अम्लान,
माला किंजल्किनी उदधि ने की है विनत प्रदान।
कांचनस्रावी वरुण-छत्र से सेवित मेरा भाल,
उत्क्रांतिदा शक्ति भी अपनी मुझे दे गया काल।
प्राप्त प्रजापति का स्यंदन वह जिसकी गति अनिरुद्ध,
दिये वह्नि ने मुझे वस्त्र दो जो चिर ज्वलन-विशुद्ध।
छीना है निशुंभ ने बल से बली वरुण का पाश,
अब्धिजात जो अन्य रत्न सब वे भी उसके पास।
देवि, सृष्टि में तुम्हीं अन्यतम नारीरत्न वदान्य,
वरो मुझे अथवा निशुंभ को जो हो तुमको मान्य।
देश-देश में दिशा-दिशा में, जितने रत्न प्रसिद्ध,
हुए आज तक, उनके भोक्ता केवल हम यह सिद्ध।''

वाचक- सुन यह विश्वाश्रया अंबिका कुछ मुसकाईं,
ज्योत्स्ना की घनघटा घुमड़ हिमगिरि पर छाई।
विद्युच्छवि से हुई दिशा- विदिशायें भास्वर,
वाणी में बज उठे मुरज के मेघमंद्र स्वर।

जगदम्बा- इन्द्रजयी हैं शुंभ त्रिलोकी के अधिकारी,
रत्न उन्हें सब प्राप्त गिरा यह सत्य तुम्हारी।
उनके अनुज निशुंभ प्रथित सुरदर्प-प्रहारी,
किंतु पुराकृत दूत प्रतिज्ञा सुनो हमारी।

युद्धभूमि में जीत मुझे जो विमद करेगा,
मेरा प्रतिभट वही मुझे बढ़ वरण करेगा।

सुग्रीव- गर्वित होकर देवि करो मत तुम इस भाँति प्रलाप,
अपरिमेय है असुरराज का विक्रम-शौर्य-प्रताप।
उनके सम्मुख टिके युद्ध में, किस नर में उत्साह,
एकाकी नारी हो तुमने पकड़ी उलटी राह।
उनके लघु सैनिक कर सकते देव-सैन्य का नाश,
अप्रतिभट वे प्रणयप्रवण तुम चलो शुंभ के पास।
यदि न करोगी सविनय उनकी आज्ञा का सम्मान,
केश खींचकर ले जायेंगे वे असुरेन्द्र महान।

जगदम्बा- शुंभ-निशुंभ सहज अप्रतिभट उनका शौर्य अपार,
किंतु दूत यह पलट न सकती मेरे प्रण की धार।
कह दो अपने प्रभु से जाकर तुम मेरा संदेश,
मैं प्रस्तुत हूँ, करें उन्हें जो हो करणीय विशेष।

द्वितीय दृश्य

वाचक- शुंभ को जाकर के जब दूत ने अंबिका की सब बात सुनाई,
खौल उठा प्रलयाब्धि-सा भीषण दारुण मेघ-घटा घहराई।।
बन्हि भी शीत हुआ भयभीत हो क्षीण हो पीतता भानु ने पाई,
कंपित अंबर से नखतावलि विच्युत हो, धरती पर छाई।।
क्रुद्ध धूम्रलोचन को उसने सत्वर दिया निदेश,
''लाओ उस नारी को मेरे पास खींच कर केश।
यदि उसके रक्षक हैं कोई देव, यक्ष, गंधर्व,
रण में वध कर उनका कर दो गर्व सकल तुम खर्व।''

गया धूम्रलोचन सेना ले साठ सहस्र विशाल,
कंपमान होती थी धरती लख वह गति विकराल।
जगदंबा को देख गर्व से उसने कहा पुकार,
''दानवेन्द्र की सेवा के हित हो जाओ तैयार।
देवि, अवज्ञा इस आज्ञा की है गुरुतम अपराध,
केश खींचते हुये तुम्हें हम ले जायेंगे बाँध।''

जगदम्बा- दानवेन्द्र के सेनापति तुम साथ सैन्य अतिकाय,
क्या कर सकती निपट अकेली मैं नारी असहाय।

वाचक- यह कह कर ध्यानस्थ हुईं क्षण भर कल्याणी,
आनन से प्रस्फुटित हुई सहसा 'हुँ' वाणी।
ज्वालमाल बन वही शब्द अंबर तक छाया,
भस्मशेष हो गई दैत्य की तत्क्षण काया।
शेष सैन्यदल क्रुद्ध केशरी ने सब खाया,
मूर्त धर्म का रूप जिसे मुनियों ने गाया।
धूम्रलोचन के निधन की बात
शुंभ को सुनकर लगा आघात-
चंड- मुंड प्रचंड को आदेश-
दिया, लाओ खींचकर तुम अंबिका के केश।
गये दोनों, साथ था उनके असंख्यक सैन्य,
हुआ विस्मय अंबिका का देख उन्हें अदैन्य।

चंड- चलो अब भी, देवि, छोड़ो व्यर्थ का अभिमान,
क्षमा कर देंगे हमारे असुरराज महान।
अन्यथा ले जायेंगे हम तुम्हें बल से आज,
केश-कर्षण से तुम्हारी जायेगी लुट लाज।

वाचक- "ले चलो" कह अंबिका की हुई भृकुटि अराल,
प्रकट उससे हुईं काली हाथ में ले करवाल।
शुष्कमांसा देह था गजचर्म का परिधान,
ललनशीला जीभ, भीषण वदन का व्यादान।

काली- पराविद्ये, मैं तुम्हारा प्रकट सात्विक क्रोध,
क्या मुझे करणीय सत्वर करें मेरा बोध।

जगदम्बा- असुरद्वय प्रस्तुत यहाँ ये मूर्त रागद्वेष,
चाहते हैं युद्ध इनको करो तुम निःशेष।

मुंड- महामायाविनी नारी, तुम न अबला मात्र,
युद्ध के इस यज्ञ में उपयुक्त बलि की पात्र।

काली- अरे बलिपशु! ठहर, कर ले जल्पना कुछ और,
एक क्षण में बनेगा खल काल का तू कौर।

वाचक- असुरद्वय ने किये काली पर प्रचंड प्रहार,
कुलिश पट्टिश परश्वध शतचक्र के दुर्वार।
पी गईं सब असुर-आयुध कालिका विकराल,
प्रज्ज्वलित था मुख जगी ज्यों कोटि दिनकर-माल।
व्यात्त आनन वज्रदंष्ट्रायें प्रलय-सी घोर,
चूर्ण होते थे जहाँ गज, हय, पदाति अथोर।
हो रहा था विकट दशनों से रुधिर का स्राव,
कर लिया भक्षण असुरदल, विपिन को ज्यों दाव।
चंड-मुंड प्रचंड का वध कर पहनकर मुंडमाला,
अंबिका के निकट पहुँचीं वे महाकाली कराला।

काली- गये दोनों असुर यमपुर को समेत समाज,
शुंभ और निशुंभ को मारो स्वयं तुम आज।

जगदम्बा- धन्य हो हे देवि, चामुंडा तुम्हारा नाम,
विदित होगा विश्व में अब से प्रणत विश्राम!

तृतीय दृश्य

(शुंभ की राजसभा। कांचनस्रावी छत्र से मंडित सिंहासन पर आठ भुजाओं वाला शुंभ विराजमान है। (निशुंभ का प्रवेश।)

निशुंभ- देव! हिमगिरि से अभी आया यहाँ संदेश,
चंड-मुंड मरे, हुआ सब असुरदल निःशेष।
शुंभ- (आश्चर्य और क्रोध से)
परम विस्मय है अनुज, यह नहीं छोटी बात,
मात्र नारी एक कर सकती न यह उत्पात।
मुझे लगता देवगण ने किया कुछ षड्यन्त्र।
निशुंभ- यदि यही है तो सफल होगा न उनका तन्त्र।
शुंभ- त्वरित हो कटिबद्ध अपना सैन्य निखिल अपार,
सब उदायुध दैत्य-सेनप हों अभी तैयार।
कंबु सेनाध्यक्ष चौरासी प्रचंड प्रसिद्ध,
कोटिवीर्य पचास हों सौ धौम्रकुल सन्नद्ध।
मौर्य, दौर्हृद और कालक कालकेय समस्त,
त्वरित सज्जित हो चलें, हो देवजाति निरस्त।
निशुंभ- आज सेनापति रहेगा रक्तबीज कराल।
शुंभ- ठीक है यह, वह अकेला ही सुरों का काल।
वाचक- चला आसुर सैन्य धरती कँपी बारंबार,
भर गया सब ओर भीषण अंधकार अपार।

देखकर आया हुआ यह असुरदल निःसीम,
किया दुर्गा ने धनुर्ज्या-घोष अतिशय भीम।
क्रुद्ध उनका केशरी भी क्षुब्ध उठा दहाड़,
स्तब्ध दानव-दल विकल था, डोल उठे पहाड़।
चंडिका ने किया घंटानाद घन-गंभीर,
उग्र गर्जन महाकाली का गया नभ चीर।
सुना बृहत् निनाद-दानव वाहिनी ने घोर,
रोष में भर, घेर दुर्गा को लिया सब ओर।
देव गण यह देखते थे दृश्य प्रलय-कराल,
हुईं जागृत शक्तियाँ उनकी सभी तत्काल।
अज, महेश्वर, विष्णु, गुह की शक्तियाँ तद्रूप,
हुईं उत्थित वेश, बल, वाहन सकल अनुरूप।
चंडिका ने किया जब ध्यानस्थ हो आह्वान,
धूम्रजटिल हुए वहाँ अवतरित हर ईशान।

दुर्गा- देव, जाकर असुरगण से कहें यह संदेश,
शुंभ और निशुंभ से अनुरोध करें विशेष।
जायँ वे पाताल को दल बल सहित तत्काल,
छोड़ दें अब इन्द्र का साम्राज्य वितत विशाल।
और भोगें देव अपना वैध मख का भाग,
अन्यथा होगा अनुष्ठित युद्ध का जो याग-
खाएँगी उसमें शिवायें विकट उनका मांस,
पियेंगी छक-छक रुधिर सब तृप्ति तक सोल्लास।

शिव- देवि, तुम्हारा दूतकर्म मैं करता हूँ स्वीकार,
शिवदूती कह स्मरण करेगा तुमको यह संसार।

किन्तु असुर ये चरम तमोगुण की हैं दारुण मूर्ति,
अहं-बुद्धि से हत है इनकी सहज चेतना-स्फूर्ति।
ये न सुनेंगे कभी तुम्हारा यह हितकर सन्देश,
संवर्द्धित ही होगा उनका इससे द्वेष-त्वेष।
रक्तबीज है असुर सैन्य का नायक बना विशेष,
उसमें केन्द्रित है समष्टि का अभिनिवेश निःशेष।
यह निशुंभ अस्मिता मूर्त है, शुंभ अविद्या घोर,
हैं आच्छन्न दिशा-विदिशायें जिसका ओर न छोर।
मनोमयी सत्ता के स्तर तक है इनका अधिकार,
उसके आगे देवि, तुम्हारी चिति का पूर्ण प्रसार।
तुम सत्-चित-आनन्दमयी हो सर्वस्याद्या सिद्ध,
अरूपोरुरूपा त्रिगुणात्मा अपराजिता प्रसिद्ध।
वध कर इन असुरों का सत्वर करो लोक-परित्राण,
हैं सहकार हेतु प्रस्तुत ये सुर-शक्तियाँ महान्।

ब्रह्मणी- देवि, आई हंस पर चढ़ पार कर आकाश,
करूँगी कौशाम्भ से मैं असुरदल का नाश।

माहेश्वरी- मैं त्रिशूलधारिणी वृषारूढ़ा वरदानी,
अहिवलया शशिकलाभूषिता प्रकट भवानी।
असुरक्षय के हेतु मुझे तुम उद्यत जानो।

वैष्णवी- प्रकट विष्णु की शक्ति मुझे भी तुम पहचानो।
शंख चक्र ले गदा, शारंग गरुड़ोपरि संस्थित,
दानवदल का ध्वंस करूँगी रण में प्रस्थित।

कौमारी- मैं मयूरवाहना देवसेनापति जाया,
शक्ति हस्त मैं ध्वस्त करूँगी आसुर माया।

ऐन्द्री- मैं गजेन्द्र-संस्थिता वज्रहस्ता कल्याणी,
दृग सहस्र से भस्म करूँगी दानव मानी।
वाराही- यज्ञ वाराही धरा को दाढ़ पर निज धार,
प्राप्त हूँ मैं असुर भय से मुक्त हो संसार।
नारसिंही- वज्रदंष्ट्रायें विकट मुख नख अराल कठोर,
पान करती मैं असुर-उर फाड़ रुधिर अथोर।
शिव- ये तुम्हारी ही विभिन्न विभूतियाँ निष्पन्न,
धर्म रक्षण हेतु सुर-समुदाय देख विपन्न।
जगदम्बा-देव!
यदि करेंगे आपका प्रस्ताव अस्वीकार,
ध्वस्त होगा, तो असुरगण का अशेष प्रसार।
वाचक- शंकर का शान्ति-अभियान असफल हुआ,
क्रुद्ध हुआ शुंभ, रक्तबीज को दिया निदेश।
''मारो अंबिका को, करो भक्षण सहायकों का,
शिशु भी सुरों का किसी लोक में रहे न शेष।''
युद्ध में उपस्थित विलोक असुराधिप को,
अंबिका ने द्रुत दैत्य-व्यूह में किया प्रवेश।
वेध दिया बाणों से शरीर सब दानवों का,
प्लावित था रुधिर-प्रवाह से रण-प्रदेश।
(रक्तबीज का युद्ध करते हुए प्रवेश)

रक्तबीज- मैं रक्तबीज हूँ अजय असुर सेनानी!
मेरे तन का प्रत्येक रुधिर-कण अक्षय,
धरती पर गिरकर बनता दानव दुर्जय,

संकुलित रक्तबीजों से धरती हतभय,
मैं चिर अजेय! मैं अपरिमेय सेनानी!

वाचक- ऐन्द्री ने पवि से रक्तबीज को मारा,
बह चली महागिरि से ज्यों गैरिक धारा।
वैष्णवी चक्र से आहत हो वह दानव,
लगता था घन अटवी में ज्यों दीपित दव।
वाराही ने उस पर असि निशित प्रहारी,
कौमारी ने निज शक्ति फेंक कर मारी।
ईशानी ने जब शूल हृदय में हूला,
वह असुर युद्धवन में पलाश-सा फूला।
घावों से बहकर रक्त बिन्दु जो आये,
वे दुर्जय दानव बन धरती पर छाये।
हो गया जगत उन असुरों से परिपूरित,
थे भयाक्रान्त सब देव, दिशायें कम्पित।

चंडिका -(चामुंडा से)
चामुंडे ! अब तुम अपना मुख फैलाओ,
क्षत-प्रवाहित इसका रक्त सकल पी जाओ।
निःशेष रक्त हो जायेगा जब दानव,
मैं पी लूँगी इसके प्राणों का आसव।

वाचक- चंडी ने यह कहकर उस पर शूल चलाया,
शत क्षत-विक्षत हो गई असुर की काया।

पी जाती थी रक्तस्राव चामुंडा,
खाती थीं उत्थित असुर अशेष प्रचंडा।
दुर्गा ने किये प्रहार निरंतर शतशः,
नीरक्त हो गया रक्तबीज वह क्रमशः।
निष्प्राण देख उसको धरती पर शायित,
सब विकल देवता हुए हर्ष-विह्वल स्थिति।
मातृकाओं ने किया छक असुर-शोणित पान,
मत्त होकर किया उद्धत नृत्य गान महान्।

चतुर्थ दृश्य

योगिनियों का गीत- योगिनियाँ हैं हम असुर-रक्त की प्यासी!
जो धर्मविमुख जो लोकशत्रु खल दुर्जन,
शिश्नोदर- पर- अपकार- निरत जो क्षण-क्षण,
पीने का उनका रक्त हमारा है प्रण,
हम धर्मवृद्धि की हैं संतत अभिलाषी!
खल रक्तबीज है गया युद्ध में मारा,
लेकर दैत्यों का प्रमुख सैन्य अब सारा,
बरसाता मेघों सा वाणों की धारा,
प्रकुपित निशुंभ अति उद्धत विजयोल्लासी!
संदष्ट-ओष्ठ वह शुंभ बढ़ा आता है,
गर्जन से अंबर काँप-काँप जाता है,
दुर्गा पर खरतर शरसमूह छाता है,
वे लगती हैं घनसंकुल चंद्रकला सी।

योगिनियाँ हैं हम असुर-रक्त की प्यासी!
रवि चन्द्र वह्निमय नयन त्रितय की ज्वाला,
देखो दुर्गा की जागृति हुई कराला,
है विफल असुरदल-चालित आयुध-माला,
लो पहुँचा उनके निकट शुंभ सुरत्रासी,
योगिनियाँ हैं हम असुर-रक्त की प्यासी!

शुंभ - ठहर क्षण भर अंबिके! तेरा निकट अवसान,
वाण ये मेरे हरेंगे त्वरित तेरे प्राण।

जगदंबिका-शूर को शोभा न देता जल्पना का जाल,
शौर्य को अपने प्रमाणित कर तनिक इस काल।

वाचक- अतुल आठों भुजाओं से व्याप्त कर आकाश,
लगा करने शुंभ फिर-फिर अट्टहास-विलास।
अंबिका ने शंख फूँका ले त्रिशूल कराल,
बेध डाला उस असुर का वक्ष विपुल विशाल।
गिरा मूर्च्छित धरा पर हिमगिरि शिखर-सा-ध्वस्त,
हुआ प्राप्त निशुंभ सम्मुख, असुरगण थे त्रस्त।
दस सहस्र बाहें रच उसने किये चक्र के घात,
घायल था केशरी समाच्छादित अंबा का गात।
क्रुद्ध हुई चंडिका प्रलय हित उद्यत यथा कृतान्त,
काट दिये सह-चक्र असुर के बाहु समूल नितान्त।
वेध दिया फिर विषम शूल से उसका उर गंभीर,

निकला उससे महाबली अति असुर अन्य रणधीर।
कहता हुआ–''ठहर मायाविनि, ठहर ठहर क्षण एक'',
काटा उसका भी शिर द्वयता हरता यथा विवेक।
किया केशरी ने असुरों का विपुल सैन्य-संहार,
क्रुद्ध मातृकाओं ने डाला शेष असुरदल मार।
इसी बीच चेतना प्राप्त कर जाग उठा फिर शुंभ,
देखा अपना सैन्य निहत सब वध को प्राप्त निशुंभ,
कही अंबिका से प्रकुपित हो उसने तीखी बात,

शुंभ– ''अन्यों के बल से गर्वोद्धत तू करती उत्पात।''

जगदम्बा– मैं निष्केवल एक, जगत् में मेरे सिवा न अन्य,
सकल मातृकायें ये मेरी ही विभूतियाँ धन्य!
अपनी ही ऐश्वर्य शक्ति से मैं बहुरूपा आज,
देख, समेट रही अपना मैं अनेकत्व का साज।

वाचक– कहते ही सब हुईं शक्तियाँ श्री-विग्रह में लीन,
युद्ध भूमि में रहीं अकेली दुर्गा ज्योतिर्पीन।

शुंभ– देखें अब ये देव सहायक तेरा मेरा युद्ध!

जगदम्बा– असुर, दिखा तू मुझको अपना विक्रम जगत्प्रसिद्ध।

शुंभ– शरवर्षा से अभी बुझेगी तेरी जीवन- ज्योति।

(अजस्र शस्त्र वर्षा करता है।)

जगदम्बा– (सब बाण काट देती हैं।)
दर्पजन्य छलना है तेरी यह सब आत्मप्रतीति।

शुंभ– (धनुष से देवी पर अमोघ वाण छोड़ता है)

प्राण-पवन पीने को उद्यत है यह विषधर व्याल!

जगदम्बा- (उस वाण को बीच में ही काट देती है)
देख यहाँ यह गरुड़ सिद्ध जो सब व्यालों का काल!

शुंभ- (खंग लेकर दौड़ता है।)
देख अरी, शतचन्द्र खंग यह ज्योतित प्रलयकृशानु।

जगदम्बा- अभी छिन्न करती मैं इसको जैसे तम को भानु।
(शुंभ की तलवार अपने वाण से काट देती हैं।)

शुंभ- चढ़कर मैं अपने स्यंदन पर जाता हूँ आकाश,
सहज मनोगति निज शस्त्रों से करने तेरा नाश।
(रथ पर आकाश में उड़कर जाने का उपक्रम करता है।)

जगदम्बा- (हँसकर)
स्यंदन, अश्व, सारथी तेरे होते हैं सब ध्वस्त,
मेरे धनु से देख हुई, खल, यह कालाग्नि समुत्थ।
(प्रचंड वाण छोड़ती हैं, रथ, सारथी, घोड़े सब जल जाते हैं।)

वाचक- विरथ अकेले असुर राज के शस्त्र हुए शत खंड,
मुष्टि-प्रहार किया देवी पर उसने परम प्रचंड।
देवी के तल के प्रहार से क्षण भर हुआ अचेत,
हो सचेत द्रुत गया गगन को जगदंबिका समेत।
यथा अविद्या से अतिचेतन का होता है युद्ध,
असुरराज वह लड़ा उसी विधि जगदंबा से क्रुद्ध।
दीर्घकाल तक रहा प्रवर्तित यह दारुण संग्राम,
सिद्ध और मुनिगण विस्मय से थे अभिभूत तमाम।
पटक धरा पर उसे अंबिका ने निज लिया त्रिशूल,

वेध दिया उर उस दानव का बरसे नभ से फूल।
स्वस्थ हो गईं सकल दिशायें, था सब जगत् प्रसन्न,
सुर, नर, ऋषि, मुनि, सिद्ध, चर-अचर सकल अविपन्न।

पंचम दृश्य

वाचक- निहत हुआ असुरेन्द्र विगतभय निखिल चराचर,
चले अग्नि को किये अग्र सब सिद्ध, यक्ष, सुर-
पहुँचे, थीं अंबिका जहाँ मृगपति - आसीना,
पड़ी हुई थी शुंभ-देह पदतल अति दीना।
मंडित था शत बाल-रवि-द्युति से विकचानन,
विद्युद्दाम अनंत विगत श्री होते लख तन।
अर्द्धचन्द्र का मुकुट शीश पर चिर नव शोभित,
शरच्चन्द्रिका सदृश बरसता था मधुमय स्मित।
कन्यायें असि निशित लिए हाथों में भास्वर,
पार्श्वगता थीं; उठा हुआ था वरदायक कर,
'पाहि-पाहि' कह प्रणत चरण-तल में सब प्राणी,
अर्पित करने लगे स्तवनमय अपनी वाणी।
अग्नि- जय-जय-जय अंबिके! प्रज्ज्वलित ज्ञानज्योति जय!
भस्मशेष द्रुत करो विश्व के पाप-ताप-चय।
वरुण- कृपादृष्टि की वृष्टि करें प्लावित जन-जीवन,
भव का दव हो शान्त, शान्ति का सरसे सावन!
यम- विश्वेश्वर ! जय विश्वभरणि ! अक्षय करुणा जय,
आर्तिहरणि ! भवसिंधुतरणि ! अशरणशरणा जय !
कुबेर- जननि ! परमधन तुम्हीं, खोजते जिसे योगिजन,

बरसो सिद्धि-समृद्धि-वृद्धि-निधि जन पर क्षण-क्षण!

इन्द्र- शरणागत - दीनार्त्त - परित्राता कल्याणी,
बाधा प्रशमित करो हरो दुःख, सतत भवानी!

मुनिगण- उदयाचल पै विकसे रवि सी जिनके तन की सुषमा सरसै,
अति चारु भुजानि मैं चारि लसैं बर, अंकुश, पास अभै बरसै
दृग तीनि मै देव अदेवन-कौं करुना अरु कोप सदा दरसै,
उनहीं सिवा के पदकंजनि मैं मति भृंग सी मोहि बसै हरसै।

सिद्धिगण- ईषत हास तैं रावरो आनन पूरनचन्द हू की छवि लाजे,
अंग की कान्ति लखे कमनीय न कुन्दन हूँ कछुवै दुति साजैं।
कंज के कोस पे ओस के बिन्दु हू ते बहुतै नखज्योति बिराजै,
तो कर की समता करिकै कल्पद्रुम हू अति दीन ह्वै राजै।

मानव- ज्वालन सों जो कराल लसै जननी सो त्रिशूल सबै भय टारै,
दैत्य की रक्त-बसा बिलसै जेहि खंग मैं सो मम काज सँवारै।
भीषण जाकर नाद दिसानि कँपाइ अदेवनि तेज सँहारै,
घंटा सोई छन ही छन मैं जन के सब पाप औ' ताप निबारै।
श्रेय औ मंगल तैं जन कौ सजिबे की रही सदा बानि तिहारी,
बाधहिं चूरि अभागहिं दूरि बहाइबे की रही कानि तिहारी।
आइ पर्‌यौ पदकंजनि मैं उर मैं बिरुदावली आनि तिहारी,
हे जगदम्ब विलम्ब बिना चहिये सदया मुसकानि तिहारी।

मागध, सूत, वन्दीजन-
धन्य है धन्य है तू जगदम्ब, निरन्तर तोहि निवाजिबो भावै,
चारिहू चारु दिसावधि तैं जन हेतु घनी करुना उपजावै।
सत्यकौं सुन्दर कौं शिव कौं सब ओर प्रभा भरो लोक दिखावै,

अंतर मैं बसिकै लसिकै हँसिकै नित भाव कौ स्रोत बहावै।

जगदम्बा-(अभय मुद्रा में)

मैं निज जन का योगक्षेम नित वहन करूँगी,
धर्महानि यदि हुई, त्वरित अवतार धरूँगी।
अभय रहें सब लोक, धर्म की जय है निश्चय,
असत चित् का और अशिव का होगा ही क्षय।

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति

उतर रहे हो,
उतर रहे हो,
देख रहा हूँ!
विश्व-चेतना तुम्हें देवकी-सी-
अन्तर में पाल रही है!
उदित हो रहे हो इस घन-तम में शशांक से-
जन-मन के वसुदेव, तुम्हें निज बाहुपाश में-
साध सकें, दृढ़ बाँध सकें,
इसलिए विकल हो
बाट तुम्हारी जोह रहे हैं!
तर्कवाद की तुंग तरंगों से परिप्लावित,
मानव-मति की श्यामा यमुना,
उमड़ भयावह,
चरण तुम्हारे छूकर,
शाश्वत शान्ति चाहतीं।
और उधर चैतन्य हो रहा है-
सब गोकुल-
निज अन्तर्-पट खोल गोपियाँ,
श्रवण कर रहीं वेणु तुम्हारी।
उनके पुलकित उर-स्पदन में,
मुखर मधुर पद-चाप तुम्हारा!

गुणातीत व्रज के प्रांगण में,
श्रद्धामयी यशोदा माता,
शत-शत सात्त्विक रागवृत्तियों का
अनन्त नवनीत सँजोये,
उत्कंठित है-
उसकी सूनी गोद भरो द्रुत!
नित्य सत्त्व के वृन्दावन में
चिति के लता-वितान तानते
और विपुल आनन्द-द्रुमों में
निःश्रेयस् के सुमन खिलाते-
वितरित करते
पराभक्ति के सुफल धरा पर-
उतर रहे हो ! उतर रहे हो!!
देख रहा हूँ ! देख रहा हूँ।।
युग-युग के बिछुड़े-
सर्वतः समर्पित सखा तुम्हारे-
आर्त्त हृदय अनुनय करते हैं-
''मुरली नैकु सुनाउ, छबीले''
उनके चिर-प्रतप्त तन-मन पर
स्नेह दृष्टि की वृष्टि हो रही!
उतर रहे हो! देख रहा हूँ!!
और अरे वह-
पांचजन्य है!
उठा लिया है उसको तुमने-

कर-कमलों में,
सरसिज-वन में राजहंस-सा वह शोभित है।
अधर-स्पर्श से रागयुक्त हो गया-
आज फिर पांचजन्य वह!
गूँज उठी है गीता-
गीता वही तुम्हारी,
जिसने भीष्म-द्रोण जैसे दुर्गम तटवाली-
भरी कौरवों के पौरुष के विषमय जल से-
महायुद्ध की महासरित् के पार-
उतारा था अर्जुन को!
डूब गया है फिर,
यह युग गहरे विषाद में-
किंकर्त्तव्यविमूढ़ पुनः मानव - अर्जुन - सा।
मार्ग दिखाते उसे श्रेय का,
क्लैव्य हटाते, क्षुद्र हृदय-दौर्बल्य भगाते,
उतर रहे हो!
'अनासक्त हो कर्म करो'
'विगतज्वर हो युद्ध करो'
'विजय धर्म की ही निश्चित है'
'सत्य जीतता है, असत्य है सदा हारता'-
गूँज रहा संदेश तुम्हारा-
उतर रहे हो,
उतर रहे हो! देख रहा हूँ!!

महालक्ष्मी का आविर्भाव

मंथन करने लगे सुरासुर मिलकर सागर,
वासुकि की थी नेति, मथानी उन्नत मंदर।
गगन-सदृश विस्तीर्ण पृष्ठ पर उसे उठाये,
शोभित थे हरि स्वयं कूर्म का रूप बनाये।
वासुकि की फूत्कार स्फीत हो बना प्रभंजन,
घिर आये सब ओर प्रलय के ज्यों गर्जित घन।
मंथन-रव से बधिर हो गईं सकल दिशायें,
टूट रही थीं कोटि - कोटि मानों उल्कायें।
धर्षित हो, अति क्षुब्ध हो उठा तल तक सागर,
मीन, मकर, अहि, ग्राह, तिमिंगल-कुल अकुलाकर।
आये ऊपर त्रस्त-साथ आया हालाहल,
दुःसह दाह से धरा-गगन चर-अचर उठे जल।
शिव ने पीकर उसे शान्त कर दी सब ज्वाला,
नीलकंठ बन गये, विश्व का संकट टाला।
कामधेनु फिर प्रकट हुई, प्रकटा उच्चैःश्रव,
शशि-सा पांडु-वर्ण, वेग में मरुत मनोजव।
फिर महाद्रि कैलाश-सदृश निकला ऐरावत,
कौस्तुभ मणि, कल कल्पवृक्ष, रम्भादिक निःसृत।
दमक उठी सब ओर दामिनी-सी छबि सहसा,
नभ प्रसन्न हो उठा, जगत् शत्दल-सा विकसा।
घिर-घिर बरसे घहर-घहर सच्चिदानन्द घन,

पड़ा दिखाई सिंधु बीच ज्योतित कमलासन।
शोभित उस पर मूर्तिमती छवि-सी चितिकाया,
प्रकटीं कमला, मंद हास दिशि-दिशि में छाया।
संभ्रम से भर चकित थकित रह गये सुरासुर,
विनत शीश थे और भक्ति-विह्वल था प्रति उर।
उपवेशन हित इन्द्र स्वयं आसन ले आये,
वेदों ने धर देह प्रणव-स्तव नव-नव गाये।
धरा त्वरित अभिषेक-उपकरण लेकर आयी,
फल-फूलों से भरी चतुर्दिक् मधुऋतु छायी।
दिक्पतियों ने स्वर्ण-कलश लेकर नहलाया,
सागर ने कौशेय पीत उपहार सजाया।
गुंजित मिलिंद-वृंद से जो अभिनिंदित थी,
ऐसी वैजयन्ती माल भेंट की वरुण ने।
भूषण विचित्र विश्वकर्मा गढ़ लाये,
और लीला पद्म भेंट किया विकच अरुण ने।
मुक्ताहार वीणापणि लाईं, और अंगराग,
मोहक सजाया शशि-किरण मसृण ने।
रूप , वय, वर्ण महिमा से चित्त पूत हुए,
जग को सनाथ किया वीक्षण करुण ने।
चंदन-कुंकुम-कलित सुतनु चल हेमलता सी,
ले कर में वरमाल चलीं वे ज्योति विलासी।
मुखरित नूपुर-रणन, शिंजिनी का मधु निःस्वन,
फैल रहा था दिव्य अनाहत ध्वनि-सा क्षण-क्षण।
खोज रही थीं पूर्ण पुरुष अनवद्य अनश्वर,

निखिल सदाश्रय नित्य शील मंगल चिर भास्वर।
देखे सब सुर, असुर, यक्ष, चारण, किन्नर, नर,
पर न मिल सका उन्हें कहीं अपना अभीष्ट वर।
क्रोध न पाये जीत मिले वे उन्हें तपोधन,
ज्ञानवान भी मिले किन्तु, निःसंग न था मन।
महापुरुष वे मिले काम जो जीत न पाये,
धर्मध्वज बहु मिले भूत-सौहृद बिसराये।
शूरवीर शत मिले काल-कवलित गति वाले,
अनासक्त भी मिले कर्म-कीलित मति वाले।
पर श्री को संतुलन-हीन वे व्यक्ति न भाये,
तब श्रीहरि के लिए भाव उनके लहराये।
केवल हरि हैं निखिल नित्य सद्‌गुण के स्वामी,
पूर्णकाम अभिराम न हैं पर वे श्रीकामी।
ऋद्धि-सिद्धि-निधि सकल चाहतीं आश्रय जिनका,
पर रहता अभिलाष-शून्य संतत मन उनका।
किन्तु रमा ने उन अकाम को ही वर माना,
उनको ही अवलम्ब परम अपना पहचाना।
सेवित मत्त मधुव्रतों से कमला-कर की अमला वरमाला,
श्रीहरि के उर-अंस-प्रदेश में शोभित थी सहदृष्टि अराला।
गोमुख, शंख, मृदंग बजे शत गा उठीं मोदभरी सुरबाला,
अंगिरा, ब्रह्मा, प्रजापति आदि के जीवन में जगी सिद्धि विशाला।
व्रीड़ायुक्त हास-भरे लोचनारविंद श्री के,
खिल उठे प्राप्त कर हरि की समीपता।
आश्रय पा बाहुओं का कंटकित रोम-रोम,

पुलिकत तन में प्रकट हुई नीपता।
दूर हुए अनृत, अनय, दुःख-दैन्य सब,
अशिव, अमंगल का मिलता न था पता।
आनकुल्य धर्म और सत्य का रमा को मिला,
धर्म-हीनता को मिली परम प्रतीपता।

महाकवि निराला के प्रति

तुम गये, चले ही गये, अस्त हो गया सूर्य!
बजते-बजते रुक गया अचानक ज्योति-तूर्य!
बुझ गया शारदा के मंदिर का रत्नदीप!
तुम गये, अये वाणी के महिमामय महीप!

x x x x x x

अवतरित हुए तुम अंधकार को चीर चरम,
मध्यान्ह-तपन की प्रभा पूर्ण लेकर अनुपम!
जड़ता के जीवन में आया चैतन्य-ज्वार,
सत् के नृसिंह ने दिया असत् का उर विदार!
कविता के मरु में फूटे शत शाश्वत निर्झर,
रस-ध्वनि-भंगों में प्रवहमान आनंद अजर!
छंद की शुक्ति को फोड़-तोड़ सब अंध-बंध,
तरलच्छाया नव गीत-मुक्त प्रकटे अमंद!
उमड़ा प्रति गति, प्रति सृति, अनंत पौरुष-प्रवाह,
जिस ओर चले, उस ओर बन गई नई राह!
वह राह, धरा औ' स्वर्ग बीच जो बनी सेतु,
वह राह, बनी जो युग-जागृति का विजय-केतु!
वह विजय-केतु ले बढ़े क्रान्ति के दृप्त चरण,
जिससे पाया जन-संस्कृति ने फिर नव जीवन!
तेजस्वी तमजित् क्षण-क्षण ऊर्जित नव जीवन,
स्फूर्जित अविरत स्वातंत्र्य-ज्वलित स्वर में पावन!

सो गया, मौन हो गया, आज वह रव स्वतंत्र,
वह वज्र-विनिंदक घोष, अनृत-हर अमृत-मंत्र!
सब क्षुद्र हृदय-दौर्बल्य क्लैव्य की डुबा धरा,
जो महासिंधु विक्षुब्ध प्रलय बनकर उतरा;
वह आज शान्त हो गया, शान्ति पा गया ध्वान्त,
स्तंभित प्रकाश के चरण निःशरण श्रान्त क्लान्त।
जो रहे धरा पर स्वयं स्वर्ग के पूर्ण मान,
तुम वहीं गये क्यों स्वर्ग आज मानव महान्?
तुमको इस जग ने दिया नरक का ही निवेश,
दी तुमने उसको किन्तु स्वर्ग की श्री अशेष।
निज हृदय-रक्त दे सतत सींचते रहे धरा,
मानवता का अंकुर उर-उर में रहा हरा।
दे दिया निखिल को सहज स्वीय सर्वस्व दान,
नित अनासक्त, अनिकेत, अधन तुम महाप्राण!
मत्सर-विहीन, चिर द्वेषहीन, हे वीतराग,
थे मूर्तिमान् संन्यास-तत्व तुम महाभाग!
तुम उलट धार कर गये पार संसृति का नद,
पा गये स्वर्ग के पार परम निज अव्यय पद!

x x x x x x

मैंने देखा है स्वयं तुम्हें संघर्ष-लीन,
साधन-विहीन, साधनासीन, संतत अदीन।
लड़ते अभाव के दानव से दुर्धर्ष समर,
सहते साहित्य-धुरीणों के श्रृंगक्षत खर।
निष्करुण उपेक्षा की वात्या में अडिग चरण,
शतृ-शतृ दुर्वादों के विष-शर सहते क्षण-क्षण।

झेलते हुए तन पर, मन पर, अगणित प्रहार,
पीते हालाहल पर हालाहल बार-बार।
पर ले अनन्त रत्नप्रभवा लेखनी हाथ,
तुम रहे बहाते युग-कविता का पुण्य पाथ।
जब गीत तुम्हारे जगा रहे थे युग-प्रभात,
संपादक कहते- ''यह साहित्यिक सन्निपात।
करते थे श्वान शृगाल निरन्तर विकट हूह,
रचते थे तुम्हें घेर कर कुत्सित चक्रव्यूह।
सामने युद्ध में अर्द्धरथी सब गये हार,
तुम चिर अजेय ही रहे तोड़ कर कपट-द्वार।
शूलों के शिर अर्पित करते निज चरण-धूल,
तुम खिला गये सब ओर ज्योति के फूल-फूल।
जो जन गीधों से तुम्हें नोचते थे अजस्र,
वे भी पाते हैं मान गिरा कर आज अश्रु।

x x x x x x

माँ गई छोड़कर तुम्हें रहे जब शिशु कोमल,
पाया न क्षीणतम मातृ-क्षीर का भी संबल।
फिर आया जब नव यौवन का स्वर्णिम प्रभात,
प्रियतमा गई सहसा जीवन को बना रात।
पुत्री में केन्द्रित किया स्नेह का ओघ सकल,
पर गई चली वह बना प्रौढ़ वय विकल विफल।
उसकी स्मृति में शत बार तुम्हारे रिक्त नयन,
उमड़े हैं जैसे घिर-घिर आया हो सावन।
रह गया सघन एकाकीपन का अंधकार,
हे आत्मदीप ! तुम उसमें बने प्रकाश धार।

वह आत्मदीप-जो जला निरंतर स्नेहहीन,
जो प्रखर प्रभंजन बीच रहा अविरल अक्षीण।
पाया न कहीं से कभी स्नेह का लघु सीकर,
पर बरसे जग में सदा उसी के घन बन कर।
क्या इसीलिए गिरि -शिखर-सदृश वह स्वर्ण देह,
तिल-तिल, गल-गल, घुल-घुल कर बनती गई खेह?
रत्नाकर का ज्योतिर्मय तुंग तरंग-हार,
ज्यों बिखर गया, बिखरा तट पर मणि-रत्न-भार।
तुम गये, किंतु फिर कर देखो तो एक बार,
उमड़ता हुआ सब ओर अश्रु-सागर अपार!
अर्पित करता श्रृद्धांजलियाँ यह निखिल विश्व,
यह राष्ट्र तुम्हारा आज तुम्हारे बिना निःस्व!
दे सके न अब तक हम वह अब दे रहे हाय,
तुम तक न पहुँच उच्छ्वास हो रहे विफलप्राय!
तुम सहज विश्व कवि का गौरव पा गये आज,
तुमसे वर्द्धित रवीन्द्र से कवियों का समाज!
सीखा मैंने तुमसे जीवन का पाठ धन्य,
आदर्शों का आलोक-ओक पाया अनन्य।
विज्ञापन-विमुख प्रवृत्ति, सरल शिशु-सा-स्वभाव,
कुसुमादपि कोमल हृदय न जिसमें कुछ दुराव-
था महाकाव्य-सा महत् तुम्हारा वह चरित्र,
है मानस-पट पर अमिट रह गया ज्योति-चित्र।
तुम चले गये हो जहाँ धरित्री के सुपूत,
ये जा न सकेंगे मेरे अक्षम अश्रु-दूत।

महालक्ष्मी

प्रावृट् के
पंक और प्लावन को भेद कर,
विकसित हो रहा है
पंकज शरद का–
मोदित निशायें हैं, विनोदित हैं आशायें।
इसी शुभ्र पीठ पर
ज्योत्स्ना-धौत व्योम के
चंद्रातप की छाया में,
उतर रही हो तुम
पद्मानना, पद्मिनी, पद्मप्रिया,
पद्मदलनयना गंध-माल्य-मंडिता!
अंशुओं के अंशुक से
शोभित हैं अंग-अंग,
उठती तरंग पर तरंग है,
हास की, सुवास की, प्रकाश की,
तुष्टि और पुष्टि की, ऋद्धि और सिद्धि की।
पक्व स्वर्णशालियों के
आदिगन्त हरित प्रसार में
दीप्त है तुम्हारी दीप्ति;
सर - सरि - सिंधु में,
बिंबित तुम्हीं हो हे सुवर्णरजतस्रजा!

हे हिरण्यवर्णा!
गर्जित पयोद से
द्विरद दिशाओं के
बरसा रहे हैं अभिषेक का
अमृतजल,
अभिनंदनोर्ध्व निज शुंडों से,
शशि के कलश का।
दयामयी, तेजोमयी, पूर्णकामा
नित्य भक्तवत्सला,
देवजुष्टा, परम उदारशीला,
स्नेह-स्नुत-पयोधरा, परा जगदंबिका,
विलसो धरित्री के हृदय कमल पर!
दूर करो, दूर करो,
अखिल अमंगल जगत् के-
शाप-ताप क्षुधा के,
दरिद्रता की यातनायें।
जन-जन की दुराधर्ष शक्ति बनो,
साम्य और सख्य की
ऐसी दृढ़ निष्ठा बनो,
जिससे प्रबुद्ध हो
विप्लव की आग वह,
जल कर क्षार हों
आर्थिक वैषम्य सब जिसमें

सामाजिक अन्याय,
सांस्कृतिक परवशता।
जागो हे अपराजिता राष्ट्रलक्ष्मी!
जन-जन में, गृह-गृह में,
जनपदों में, प्रान्तों में,
सीमाओं पर सभी ओर,
खेतों-खलिहानों में,
कल-कारखानों में, सैनिक अभियानों में,
कण-कण में राष्ट्र के!

विदुला

सौवीरों पर जब सिंधुराज चढ़ आया,
वीरों को मिला सुयोग सहज मनभाया।
शर की धारा में डूब गया यह अंबर,
काँपी संयुग के भार धरित्री थर-थर।
युग पक्ष उगलने लगे प्रलय की ज्वाला,
पहनी खंगों ने सुभट-मुंड की माला।
शत भेरी, शंख, मृदंग, तूर्य की ध्वनि पर,
उद्गीरित पट्टिश, कुलिश, परश्वध खरतर।
आहत असंख्य गज-वाजि मनुज चिल्लाये,
हो गईं दिशायें वधिर-मरण-घन छाये।
शोणित- समुद्र में धरती डूब नहाई,
अनुकूल भाग्य-जय सिंधुराज ने पाई।
संजय सौवीर-नरेश हार कर रण में,
श्री हीन दीन-सा आया राजभवन में।
शिर से उतार कर मुकुट, छोड़ सिंहासन,
बैठा धरती पर, अश्रुपूर्ण था आनन!
शोकोच्छ्वासों से गात हो गया पीला,
उर का पौरुष-आवेग हुआ था ढीला।
प्रज्ज्वलित शौर्य-सी उसकी विदुला माता,
विदुशी, शुचिशीला, अपराजिता, सुजाता।
उसने निज सुत की सुनी पराजय-गाथा,
हो उठा ज्वलित उन्नत हिमगिरि-सा-माथा।

संवर्त्तक घन-सी घुमड़ पुत्र ढिंग आई,
विद्युन्मय निज वाणी की कशा चलाई-
'धिक्कार तुझे कापुरुष! पुत्र तू मेरा!
हा! हा! कलुषित तुझसे यह जीवन मेरा!
रणभूमि छोड़ कर मेरी कोख लजाई,
रोदनशीला अबला की गति-मति भाई।
निज वीर पिता का पुत्र नहीं तू कायर,
मेरे न गर्भ में रहा कभी तू पामर।
अपदार्थ! क्षुद्र! तू कीट किसी रौरव का,
तू इस धरती का भार, रूप है शव का!
अधमाधम किसी लोक का तू अधिवासी,
इस कर्म-क्षेत्र का भ्रम से बना प्रवासी।
कापुरुष! तुझे यह जीवन है लाचारी,
ओ क्लीव! नहीं तू जीवन का अधिकारी!
कुछ अन्न-कणों पर जो फूले इतराये,
उस मूषक-सा तू बैठा प्राण बचाये।
लघु सरित सदृश नत जिसका कूल-किनारा,
तू सँजो रहा यह निंदित जीवन-धारा।
लज्जित खर, शूकर, श्वान, देख गति तेरी,
हँस रही शृगाली देख अधोगति मेरी।
वंध्या होती, यंत्रणा न यह सह पाती,
हा! हा! अपना मातृत्व न विफल बनाती।
सुन गरज रहे शार्दूल-सदृश रिपु तेरे,
विक्षुब्ध सिंधु से तरज रहे रिपु तेरे।

तू कालसर्प सा क्रुद्ध विषम विष-फण से,
पी उनका प्राण-समीर अभीत निधन से।
धूमायमान मत कर तुषाग्नि-सा जीवन,
तिंदुक-अलात-सा जल चाहे दो ही क्षण।
चढ़ शत्रु-शीश पर चरण रोप निज रण में,
जल प्रलय-अशनि-सा द्रुत रिपुओं के घन में।''
संजय बोला- ''पुरुषार्थ भाग्य हारा,
कायर कदापि यह सुत है नहीं तुम्हारा।
मैंने रिपुओं के व्यूह खंग से काटे,
अयुतायुत हय-गज-सुभट भूमि में पाटे।
दुर्दैव प्रबल, हो गया पराभव अपना,
कर दिया काल ने निष्फल जय का सपना।
यदि युद्धभूमि में मैं लड़कर मर जाता,
माँ, कैसे तेरा हृदय शान्ति फिर पाता?
सहसा मुख तेरा करुण ध्यान में आया,
इसलिए विमुख हो युद्धभूमि से आया।
मेरे मरने से अंब कौन सुख पाती,
किस भाँति दिवस जीवन के शेष बिताती?''
गरजी विदुला शत ज्वालामुखियाँ जागीं-
''ओ क्लीव!दीन जीवन के ओ अनुरागी!
समरांगण में यदि तुझे वीर गति भाती,
उन्नत हिमाद्रि-सा भाल सगर्व उठाती।
मेरी जीवन-साधना सफल बन जाती,
मरणोत्सव तव जन्मोत्सव सदृश मनाती।

होते शत वीर-सुपुत्र आज यदि मेरे,
सोते वे सुख से साथ युद्ध में तेरे।
मैं विश्वजयी सम्राट्-वंश की कन्या,
हूँ दिग्विजयी नृप की कुलवधू अनन्या।
दुर्भाग्य, वही मैं तुझ कायर की माता,
कलुषित है मेरी कोख-विरुद्ध विधाता!
घोल कर पवि को बनाके निज स्तन्य धन्य,
हर्ष और आशा भर तुझको पिलाया था।
अग्निसूक्त गाकर हँसाया दुलराया तुझे,
प्रलय प्रभंजन को पालना बनाया था।
फोड़ते जो उछल प्रमत्त गजगंड चंड,
उन सिंह शावकों में खेलना सिखाया था।
भाग्य चरणों का चंचरीक बन चेरा रहे,
पाठ पुरुषार्थ का निरंतर पढ़ाया था।
आज उसी भाग्य से पराजित विलोक तुझे,
मेरा जननीत्व का गलित अभिमान है।
मानती थी जिसको पुनीत पद्मकोष निज,
मेरा वह गर्भ आज कलुष-निधान है।
मूर्तिमान क्षात्रधर्म का है अपमान वह,
भाग कर युद्ध से बचाता जो कि प्राण है।।
आर्यवीर के लिए न पंथ है विहित, अन्य,
विजय-विधान है कि स्वर्ग का विमान है।
जीवन मिला है, तो मरण है अपरिहार्य,
जीवन -मरण एक दूसरे के संगी है।
जीवन में प्रतिक्षण मृत्यु है निहित, और
मरण सदैव नव जीवन - तरंगी है।

बदल-बदल रूप होते हैं प्रकट दोनों
तत्त्व एक ही है, बस भिन्न दृष्टिभंगी है।
मृत्यु यदि सान्त का अनंत से मिलन है, तो,
जीवन में बनता अनंत सान्त-रंगी है।।

छोड़ के मोह, बना उर लौह अभीत हो जीवन-ज्योति जगाओ।
बाड़व से बढ़ आहव में निज शत्रु का सैन्य-समुद्र जलाओ।
व्योम-विशाल रणांगण तपते वृष के रवि की छवि पाओ।
शोणित के सर में विहरो स्वपराभव-कालिमा धोके बहाओ।।

एक हो, हो अथवा असहाय, असैन्य असाधन हो न डरो तुम।
सत्व के आश्रित सिद्धि सदा उसे साधनों में वृथा खोज मरो तुम।
कुंभज एक ने सिंधु पिया-शशि एक से नैश तमिस्र तरो तुम।
एक पुरंदर से अरि के गिरि-व्यूह में भीति-समूह भरो तुम।।

मृत्यु हो निकट और भाग्य मुख मोड़ चले,
फिर भी समुन्नत स्वशीश न झुकाओ तुम।
टूटो भले तरु से प्रभंजन की चोट खा के,
किन्तु नहीं उर में तनिक भय पाओ तुम।
प्राणों को हथेली पर रख के बढ़ाओ पग,
जयश्री स्वयंवरा को फिर वर लाओ तुम।
आत्मतत्त्व अजर अमर नित्य अव्यय है,
गाओ-बलिदान-पंथ पर छवि छाओ तुम।

गूँज उठी सब ओर महाघन के रव-सी यह ऊर्जित वाणी।
छिन्न गई कर संजय के उर के तम-पाश को ज्योति-कृपाणी।
शत्रुओं के दल को दल के विजयी बन शोभित था वह मानी।
आशशि सूर्य चलेगी यहाँ जननी विदुला की ज्वलंत कहानी।।

केनेडी के अवसान पर

सनी रक्त में यह धरती
कितनी कुत्सित,
बीभत्स लग रही है यह कितनी
धो न सकेगा यह कलंक
दल निखिल सिंधु का
लाल हो गये सब नीले निर्मल सागर भी।
छाये हैं नभ पर भी छींटे इस शोणित के,
डूब गया है सूर्य उसी में अनुरंजित हो,
मानवता का।
वे कपोत जो लिए शान्ति-संदेश
उड़े थे देश-देश में, दिशा-दिशा में
पंखहीन हो पंगु धरा पर लोट रहे हैं।
क्योंकि युद्ध की, रंगभेद की, वर्गभेद की।
दानवता के अंधकार ने निगल लिया है,
महासूर्य वह, महामनुज वह
केनेडी कहकर
जिसे विश्व ने पहचाना था।
जल, स्थल, नभ में अप्रतिहत गति
और अपरिमित सेनाओं से
जो क्षणभर में प्रलय-सृष्टि की
शक्ति लिये था एक दृष्टि में

उसने ही संदेश सुनाया विश्वशान्ति का,
सबके ऊपर, सबसे बढ़कर–
निःशस्त्रीकृत राष्ट्रों की योजना जिलायी,
अणु शस्त्रों के उत्पादन पर
रोक लगाने की कल्पना पुरस्कृत कर
उसने ही शंका-सर्वनाश-संकुल
मानवता के नत-हत भविष्य को
आशा की ऊषा की पहली किरण दिखायी।
वही मानव केनेडी-वह धर्मवीर
वह दयावीर-बलिदान हो गया,
मानवता की स्वतंत्रता की बलिवेदी पर!
अति नृशंस
हत्यारे के कायर प्रहार से!
केनेडी! ओ शहीद-सरताज!
विश्व के राष्ट्र अविकसित
याद करेंगे रह कृतज्ञ
सौहार्द तुम्हारा
सो निश्छल, निर्व्याज और निःस्वार्थ सतत था।
याद करेगी तुम्हें नीग्रो जाति जगत् की,
मुक्ति हेतु जिसकी
तुमने निज रक्त बहाया।
और हमारा देश–
कभी नहीं भूलेगा तुमको!
गंगा, यमुना, विंध्य, हिमालय,

अंग, बंग, उत्कल, बिहार,
गुजरात, अवध, विस्तृत दक्षिण सब,
कभी नहीं भूलेंगे तुमको।
जब हिमगिरि की सीमाओं पर
पशु से भी पामर, बर्बर, दुर्दान्त चीन के
दस्यु प्रवंचक चढ़ आये थे,
संकट में था देश, क्योंकि हम
असन्नद्ध थे,
बढ़ता ही आता रिपुदल
क्षण-क्षण इस अपनी धरती पर,
तुमने सुनी पुकार देश की, मानवता की,
कोटि-कोटि भारत-जनता की,
सहज बंधु-से
बिना शर्त के,
सुलभ कर दिये
तुमने वे साधन समस्त,
अपनी सेना को,
जिन्हें देखकर चीन दीन हो विफल-मनोरथ लौट गया था।
हे असमय के बंधु!
तुम्हें हम भारतवासी,
चिरकृतज्ञ हो याद करेंगे।
हृदय-हृदय में जागेगा स्मृति-दीप तुम्हारा।
जब तक प्रवहमान है गंगा
और हिमालय खड़ा हुआ है इस धरती पर

इस धरती पर मानवता है जहाँ
और मानव रहते हैं,
वहाँ भाव-भीनी आँसू की अंजलियाँ
अर्पित हैं तुमको-
पर क्या इससे हरी हो सकेगी
झुलसी सौन्दर्यलता वह
तन्वी, सुकुमारी, यौवन की दीपशिखा-सी
छिन्न-भिन्न कर जिसे
धरा पर छोड़ गये हो आश्रयवंचित!
वह जिसका सौभाग्य-तिलक लख
ऊषा भी अवनतवदना थी।
गौरव के सर्वोच्च शिखर पर समारूढ़ वह

आज हो गयी अतिशय दीना।
और कुसुम दो अर्ध विकच
जो अभी खिले थे
स्नेहवृंत पर उसी लता के
क्या धरती का शोक उन्हें आश्वस्त करेगा?
चले गये तुम,
मानवता की मुक्तियज्ञ में
आहुति देकर अपने तन की,
अपने वैभव मय यौवन की।
लिंकन कह कर, गांधी कह कर
याद करेगी तुम्हें धरित्री
जब तक मानवता जीवित है।

महामना मालवीय जी के निधन पर

तुम चले गये, मिथ्या है यह-तुम चले गये।
हम छले गये, मिथ्या है यह-हम छले गये।
तुम आये थे, गति-मति में नव-जागृति लेकर,
युग-पुरुष हो गये अमर मृत्यु को जीवित कर।
ज्योतिर्मय निज जीवन के पृष्ठों में शुचितर,
लिख महाकाव्य-सा गये चारु-चारित्र्य अजर।
दे गये देश को धर्म, धर्म को वर्म नया,
संस्कृति को नव-उत्कर्ष, जाति को अभय किया।
दे गये विश्व को मानवता का पाठ परम,
मानव-मन में स्वातंत्र्य-बीज बोये निरुपम।
तुम अपर भगीरथ, लिए ज्ञान-गंगा उदार,
उतरे मधु-सिंचित जड़ता का मरु-पथ अपार।
काशी में निर्मित कर विद्या का सौध-सदन,
विक्रमादित्य बन उदित हुए मालव के घन।
यह ललित कल्पतरु-कलित तुम्हारा तप-कानन,
कुलपति नित श्रुति-श्री-वलित पल्लवित है पावन।
तुमको पाकर सोया काशी का जगा भाग,
था सानुराग शिव की सेवा करता प्रयाग।
अपनी वाणी के वैभव का दे ज्ञान प्रचुर,
वाचस्पति ! तुमने किया प्रकाशित तम का उर।
चाणक्य ! तुम्हारी राजनीति का पा प्रहार,

वह टूट गया दासता-दुर्ग का लौह-द्वार।
हे पुण्य-श्लोक, आलोक-ओक तुमको प्रणाम,
हिमगिरिवर-गुरु ! हे धर्ममूर्ति तुमको प्रणाम।
हे योगराज, तुम सूक्ष्मरूप धर निर्विकार,
कर रहे आज जन-जन के मानस विहार।
पर, अश्रु उमड़ बह रहे, कह रहे- 'चले गये',
यह नयन कह रहे छले-गये, हम छले गये।'
अब चरण-स्पर्श वंचिता, मलिन, विवशा, विधुरा,
रो रही ओस के अश्रु गिराकर वसुंधरा।
लो पाकर शेष विभूति-भूति तन की पावन,
शंकर ने भक्ति समेत किया शिर पर धारण।
गंगा ने पाकर अस्थि, धन्य जीवन माना,
वह अनलपूत हो गया, चिता को क्रतु जाना।
सागर में है गाम्भीर्य, व्योम में शील बसा,
है तरुण तरणि में तेज, ओज घन में विलसा।
शशि-किरणें पाकर वाणी का शीतल प्रसार,
हरती हैं सब संताप-पाप, जग के विकार।
है अनिल गा रहा कीर्ति-कथा गिन-गिन गुन-गुन,
हा ! बिखर गया व्यक्तित्व चतुर्दिक् वह शोभन।

x x x x x x

क्या देव, देखकर देव-शक्तियों का धर्षण,
अनुमान किया-है रिक्त शक्र का सिंहासन।
तुम गये स्वर्ग बन, अतः, देवपद संरक्षक,
संघटन-हीन बलक्षीण देवगण के शिक्षक।

यदि यह विचार, तो अभिनव यह योजना धन्य,
हे मृत्युंजय, यह लोकोत्तर कल्पना धन्य।
उद्धार करो तुम स्वर्ग-राज्य का पुनर्वार,
उद्धार करो तुम देश-धर्म का पुनर्वार।
अवतार धरो तुम भारत-भू में बार-बार,
साकार बनो, साकार बनो, फिर एक बार।

x x x x x x

हे पुण्य-श्लोक, आलोक- ओक तुमको प्रणाम,
हिमगिरिवर-गुरु ! हे धर्ममूर्ति तुमको प्रणाम।

x x x x x x

तुम चले गये, निश्चय है यह,-तुम चले गये।
हम छले गये, निश्चय है यह,-हम छले गये।

मानव और चन्द्रमा

मानव ने हँसकर कहा–''अरे निशिचारी,
तुझको अब तक सौन्दर्य गर्व था भारी।
रवि–किरणों के बल पर प्रपंच फैलाकर,
था बन बैठा कवियों का कान्त कलाधर।
प्रिय मुख का तू उपमान परम कहलाया,
पर वैज्ञानिक नर ने हर ली वह माया।
तू भीषण मरु वह जहाँ न कण जीवन का,
अवशेष मात्र ज्वालामुखियों के वन का।
काला कुरूप, निश्चेतन, निर्जन, निर्धन,
यह निज स्वरूप पहचान अरे शशिलांछन!
मुख शशि–सा सुन सुंदरियाँ शरमायेंगी,
शूर्पणखाएँ तेरी उपमा पायेंगी।
भोले शिव अब न करेंगे सिर पर धारण,
भू–चरण बढ़ रहे तेरे शिर प्रति प्रतिक्षण।
तेरे उर पर निज विजय केतु फहराकर,
हम विजय दृप्त नभ विनत पराभव पाकर!''
शशि ने धीरज से सुना, गुना, मुसकाया,
हो उठी रम्यतर उसकी मनहर काया।
बोला –''हे मानव बंधु, प्राण–प्रिय मेरे,
हम भी धरती के पुत्र उसी के चेरे।
तुम गहन अचित् के अन्तराल में खोये,

थे अनस्तित्व के तिमिर गर्भ में सोये।
तब मुझे जठर में धरे हुए यह धरणी,
युग-युग तक जलती रही शुष्क ज्यों अरणी।
वह सृजन वेदना उसकी अकथ कहानी,
कह सकी भला कब मनुज तुम्हारी वाणी।
ज्वालामुखियों के उत्स हृदय में फूटे,
उच्छ्वास चतुर्दिक् कुलिश-केतु बन टूटे।
नयनों के जल से प्रलय मेघ घिर आये,
आहों ने शत नीहार-पुंज प्रकटाये।
गल-गल कर पिघल-पिघल भू-मंडल सारा,
था ज्वलन-पिंड-सा भ्रान्त सतत पथ-हारा।
ऐसे क्षण मेरा जन्म हुआ, मैं सहसा,
आक्षिप्त गगन की विकल गोद में विलसा।
जननी धरती का किन्तु गुरुत्वाकर्षण,
है रहा खींचता मुझे सहज ममता बन।
इसलिए उसी की प्रदक्षिणा-रत रह कर,
अर्पित करता उपकृत उर के हिम-सीकर।
तुम तो धरती पर बहुत देर को आये,
पहले उद्भिज, अंडज, स्वेदज शत जाये।
सम्पन्न हुआ जब क्रमिक विकास तुम्हारा,
जननी ने निज सर्वस्व तुम्हीं पर वारा।
शत् अयुत अब्द तक अमित वेदना ज्वाला,
सह संवेदन का अमृत धरा ने पाला।
तुम महद्बुद्धि विज्ञान तुम्हारा चेरा,

ब्रह्मांडों पर लगने वाला है डेरा।
ये पदत्राण से ग्रह-उपग्रह, सब तारे,
द्रुत वरण करेंगे शिर पर चरण तुम्हारे।
तुम सृष्टि-जयी पग-पग होगा अभिनन्दन,
इस आशा से उल्लसित हो रहे क्षण-क्षण।
विश्वास करो पर, जहाँ-जहाँ जाओगे,
उस सृष्टि खण्ड में खण्डहर ही पाओगे।
यदि यही तुम्हारी प्रगति रही डग भरती,
तो भूमि बनेगी स्वयं भयावह परती।
यह नहीं क्षुब्ध अभिशाप, रुदन यह मेरा,
है डाल रहा विध्वंस चतुर्दिक् घेरा।
तुमने अंतर का प्रेम प्रदीप बुझाया,
घन अहंकार का अंधकार प्रकटाया।
विज्ञान हो गया अर्थ काम का अनुगामी,
तुम अब न बंधु अपने भविष्य के स्वामी।
हिंसक अस्त्रों का सृजन युद्ध का गर्जन,
है फैल रहा सब ओर दहन-सा अहसन।
निज कृत ज्वालामुखियों के मुख पर बैठे,
हो मृत्यु-विवर में फिर भी ऐंठे-ऐंठे।
निज मन में श्वापद, गृद्ध दृगों में पाले,
तुम अंध, बधिर, पाषाण निठुर मतवाले।
इसलिए मुझे काला-कुरूप कह-कह कर,
निज अंतस् का विष ढाल रहे हो निर्भर।
सौंदर्य स्रोत जो निज आत्मा में प्रवाहित,

उससे ही अग जग निखिल भुवन परिप्लावित।
वह सूख गया, तो सब कुछ अशिव असुन्दर,
अपना ही जीवन लगता दुर्वह, दुर्भर।
शिव ही कर पाते हैं सुन्दर का दर्शन,
मैं इसीलिए उनके ललाट का भूषण।
तप-तप पूनम की प्रभा प्रखर जो पाता,
मैं उसे कौमुदी बना सतत बरसाता।
जिससे उर-उर के प्रेमांकुर पलते हैं,
मानवता के शत आस्वद शद फलते हैं।
मैं ही वसन्त का सखा शरद का प्रियतम,
मेघों के रथ का रथी, ग्रीष्म का गतक्लम।
मैं कालकूट को अमृत बनाने वाला,
मैं ही करता हूँ शान्त तुम्हारी ज्वाला।
आओ, तुम सुख से चन्द्रलोक को आओ,
जाओ मंगल, गुरु और शुक्र तक जाओ।
पर लाओ अपने साथ भक्ति की गीता,
मीरा, तुलसी की वाणी परम पुनीता।
दो हमको तुम उपहार सूर के स्वर का,
बरसो हम पर पीयूष धरा के उर का।
मरु उर्वर हों सरसावे चिति का सावन,
बिलसे मानवता दूर्वादल-सी शोभन।
आत्म-प्रदीप बन आओ, मानव आओ,
ब्रह्माण्डों के भी सोये भाग्य जगाओ।

धरती और मेघ

तपन ग्रीष्म की छाई।
उतर गगन से, ज्यों त्रिनयन की
नयन-वह्नि ही आई।
जलने लगा जगत् सचराचर,
लगे उबलने सरि सर, सागर,
रवि-किरणों से कालकूट की
प्रलय-लहर लहराई।
सूना हुआ धरा का आँगन,
उजड़ा तन, मन, यौवन, जीवन,
हूक-लूक बनकर अन्तर् की
व्यथा चतुर्दिक् छाई।
जागी विकल प्यास मरु-उर की,
दुःसह चोट विरह के शर की-
उच्छ्वासों के दग्ध-दोल पर
डोल उठी पुरवाई।
जागी याद प्रिया की मन में,
नव गति विद्युत् सी क्षण-क्षण में-
दूर प्रवासी बादल को फिर
धरती की सुधि आई।
जागे सुप्त गीत अन्तर् के,
बहे प्रखर हो निर्झर स्वर के,
प्रिय के नयनों में असाढ़ की
बाढ़ उमड़ कर छाई।
पाकर अश्रुसिक्त मधु-चुम्बन,
पुलक-प्रकम्पित प्रणयालिंगन,
मिलन मोद से भरी धरा ने
हरी-हरी छवि पाई।

भारतीय सैनिकों से

बढ़ चले चरण ! बढ़ चले चरण!
सत्य के, शक्ति के, मुक्ति के, सख्य और साम्य के,
शौर्य के, प्रकाश के, विकास के,
बढ़ चले चरण ! बढ़ चले चरण!
चीर अंधकार को, तैर क्षुब्ध सिन्धु को,
तोड़ विघ्न-पाश, रौंद-रौंद प्रतिरोध को,
और पदाघात से बना अचल सचल
बढ़ चले चरण ! बढ़ चले चरण!
ये सुदृढ़ चरण ! ये अडिग चरण!
भंग अवसाद,
दूर हो गया प्रमाद है,
विगत विषाद ये बढ़े
उठा निनाद है-
विजय हमारी, ध्रुव विजय हमारी है।
बढ़ चले चरण ! बढ़ चले चरण!
फिर मिली,
चेतना नवीन लोकतंत्र को,
फिर मिली,
घटना महान इतिहास को,
फिर मिली,
दीप्ति आत्मत्याग की युवक-समूह को,
दृष्टि लक्ष्य से बँधी,

और गति सहज सधी,
बढ़ चले चरण ! बढ़ चले चरण!
निश्चय अनिश्चय पर आज जय पा गया,
आ गया नया प्रभात आ गया
कौन यह भैरवी सुना गया–
त्याग बलिदान का पुण्य-पर्व आ गया
बढ़ चले चरण ! बढ़ चले चरण!
ये अभय चरण ! ये अडिग चरण!
आये पहले भी यहाँ
ग्रीक, शक, हूण, तुर्क,
अत्याचार, व्यभिचार, सर्वनाश साथ लिए,
किन्तु प्रत्याघात से हमारे छिन्न हो गये,
इस धरती के बीच खो गये।
संस्कृति की गोद में सो गये,
किंतु आज आया है चीन वह
हमने सिखाया था मनुष्यता का पाठ जिसे,
और दिया सभ्यता का ठाठ जिसे,
भाई कहा,
स्नेह और प्रत्यय अशेष दिया,
विश्व में उसे भी कुछ मान मिले,
स्थान मिले,
इसके लिए ही सब मित्रों को अमित्र किया
और आह कितने उदार हम,
तिब्बत की भूमि
और जन उसे भेंट किया।

आज वह चीन
यहाँ आया है,
कम्युनिस्ट क्रूरता के पैने नख-दंत लिये
लाखों चंगेजों की रक्त की पिपासा लिये-
हिंसा हिटलर की,
असत्य गोयबेल्स का,
उसके कवच हैं-
प्रकट हुआ है कम्युनिज़्म का स्वरूप वह,
नाजीवाद देख जिसे लज्जित नरक में।
आज उसी दानव के दर्प के दलन को,
भारतीय सैनिकों के,
बढ़ चले अडिग चरण।
उठो वीर सैनिकों
तुम हो सपूत उस विश्ववंद्य भूमि के,
जिसने दिया है जन्म
राम को, कृष्ण को, चंद्रगुप्त मौर्य को
विक्रम को, हूण-मृग-हरि यशोधर्म को,
राणा श्री प्रताप को,
शिवा को लक्ष्मी बाई को-
तुम भी उन्हीं के अवतार हो,
कालचक्र जो अमोघ विष्णु का,
उसकी तुम्हीं ज्वलंत धार हो-
चिर शांतिकामी इस गौतम के देश की
परम सहिष्णु जनता के
वह रोष हो,

जागृत आक्रोश हो
प्रलयंकर रुद्र का
तीसरा नयन कहते हैं जिसे!
बढ़ चले चरण ! बढ़ चले चरण!
एक बार के उठे चरण!
ये न अब रुकें कभी,
उन्नत हिमाद्रि से शीश न झुकें कभी,
जब तक लोकतंत्र का भविष्य
विश्व में सुरक्षित न बन जाय,
चीन और तिब्बत के
पीड़ित दलित, अश्मीभूत जन-जीवन को,
दानवीय त्रास से स्वतंत्रता न मिल जाय।
तुम चलो, बढ़े चलो,
और यहाँ खेतों में तुम्हारे लिए
बांधव तुम्हारे हरी फसलें उगायेंगे
दिन रात एक कर।
और दिन-रात, रात-दिन,
कारखाने अपने चलेंगे
न रुकेंगे कभी,
देंगे तुम्हें
साधन समग्र वे
अंतिम विजय के
इस क्रूर शत्रु पर
इस धूर्त शत्रु पर!
आशीर्वाद दे रही हैं तुमको

वीरप्रसू मातायें तुम्हारी, सुनो-
और वीर पत्नियाँ,
दे रही हैं शक्ति तुम्हें अपने सतीत्व की-
स्नेहशीला बहिनों की
राखियाँ सजाए निज वज्र-सी कलाइयों में,
बढ़ते ही जाओ वीर बढ़ते ही जाओ चीर
चीन की अनीति के दुरंत अंधकार को।
माओ और चाओ से कह दो-
''सैनिक हैं हम षण्मुख कार्तिकेय के,
जिसने तुम्हारे ही प्रदेश के
क्रूर नरकासुर को,
उसकी असंख्य सैन्य आसुरी को,
धूल में मिलाया था।''
विजय तुम्हारी है, विजय तुम्हारी है।
सत्य और धर्म हैं तुम्हारे साथ।
गीता कहती है-''उठो, युद्ध करो, विगतज्वर युद्ध करो।'
क्षत्रिय को यदि धर्मयुद्ध मिल जाता है,
भाग्य जग जाता है,
दिव्य द्वार स्वर्ग का स्वयं ही खुल जाता है।
क्षत्रिय तुम्हीं हो इस देश के,
रक्षक तुम्हीं हो इस देश के,
संस्कृति के, धर्म के, जनता के
मूल स्वाधिकार के, और लोकतंत्र के।
बढ़ चले चरण ! बढ़ चले चरण!

बलिदान-गीत

बरस रहे हैं जिनकी स्मृति के घन ये विगलित होकर,
जिनकी शुचि-स्मृति की हरीतिमा छाई है धरती पर,
जिनके तप का ज्वलित तेज ले तरणि तिमिर हरता है,
शशि जिनके यश की ज्योत्स्ना ले जग शीतल करता है,

जिनके उन्नत भाल सदृश है खड़ा हिमालय अपना,
सोया है सागर के उर में अब भी जिनका सपना,
नित जिनके शोणित से संध्या निज सीमंत सजाती,
जिनके तप्त रक्त की आभा ऊषा बन मुसकाती,

लख जिनका बलिदान हो गये अपलक नभ के तारे,
उन्हीं क्रांतिव्रतियों को अर्पित श्रद्धा-सुमन हमारे!
उन्हीं क्रांतिव्रतियों ने पहले सोया देश जगाया,
दे अपना सर्वस्व जाति का स्वाभिमान उकसाया।

बना रक्त को स्नेह, देह यह कर दी जलती बाती,
संगीनों के लिए खोल दी अपनी नंगी छाती!
झूले फाँसी के पलने पर, गरल पिया हँस-हँस कर,
कोटि-कोटि रौरव का पीड़न सहते रहे निरंतर।

गल-गल पल-पल तिल-तिल जल-जल किया राष्ट्र-आराधन,
स्वतंत्रता की बलि वेदी पर शीश कर दिये अर्पण।
उनकी पिस्तौलों ने उगली महाक्रांति की ज्वाला,
शोभित वही देश के उर पर बनी विजय-वरमाला।

आततायियों के वक्षों को बढ़-बढ़ लक्ष्य बनाया,
उनकी पिस्तौलों ने जग में साका नया चलाया।
उनकी पिस्तौलों से बरसे अघमर्षण अंगारे,
क्षार हो गए पारतंत्र्य के जलकर पाश हमारे।

जय बोलो, उन आत्महुतों की जय बोलो, जय बोलो,
जय गणेश, जय जय सावरकर, जय चाफेकर बोलो।
मदनलाल, वारीन्द्र घोष जय, जय सत्येन्द्र कन्हाई,
अपना तन-मन खुदीराम की स्मृति पर वारो भाई।

पुण्यश्लोक श्री हरदयाल जय, जय श्री रासबिहारी,
जय शचीन्द्र सान्याल, अमर स्मृति गेंदालाल तुम्हारी।
जन-जन के मानस को रोशन रोशनसिंह करो तुम,
जय विस्मिल, जय अशफाकुल्ला नवचेतना भरो तुम।

जय शहीद-पूषण नर-केहरि श्री आजाद तुम्हारी,
अर्पित है तुमको भावों की अंजलि विनत हमारी।
भगतसिंह के साथ देश की दीप्त करो तरुणाई,
स्वतंत्रता आई, न दासता मन की पर मिट पाई।

पुनः देश के मनोगगन में तुम उल्का से जागो,
एक बार फिर तपस्त्याग की आग बनो अनुरागो।

विजया

इन ज्वलित क्षणों में जीवन के,
ओ अनलमयी तेरा स्वागत!
शत धूमकेतु-सी स्मृतियों का
संसार लिए तेरा स्वागत।
वह प्रलय-अनल-सी जागी थी
छवि तेरी ही सागर-तट पर,
घन-सा अजस्र शायक-वर्षण,
नाराचों का ज्या-स्वन दुर्धर।
सुभटों की वज्र-घोर हुंकृति,
जिसमें जग की धृति दीन हुई।
उस ज्वाला में जल-गल प्रतिपल
लंका सोने की क्षीण हुई।
वह राम-बाण की शिखा प्रबल,
जिसमें रावण खल शलभ बना,
अविनश्वर उसकी आभा में
अपसृत संसृति का तिमिर घना।
तब तेरी ही मधुस्मिति फूटी
उस शोकमयी के आनन में,
उपरक्त रही शशि-रेखा-सी
जो तपस्विनी अशोक-वन में।
फिर आर्य जाति का शौर्य-सूर्य
समुदित जग में सबने देखा,

विजये, शत सिंधु-तरंगों पर
अंकित है अपनी जय-लेखा।
फिर क्रूर कंस के शासन का
घन तम हरती जागी अमला,
गीता बन प्रभु की वाणी में,
थी मुखर तुम्हारी पूर्ण कला।
फिर तेरी ही मधु-छाया में
वर लिया ग्रीक-लक्ष्मी का कर,
उस चन्द्रगुप्त ने निज असि से
सेल्यूकस का मद-गौरव हर।
''चाणक्य नीति जय मौर्य रीति''
यह आर्यजाति की गीति अमर
अम्बर के निभृत निलय में सुन,
काँपा मृत अलक्षेन्द्र थर-थर।
फिर धरती पर गो-द्विज-पीड़क
शक-शोणित अंबु अथाह बहा,
विक्रमादित्य का पौरुष वह,
विजये तेरा उल्लास अहा।
अम्बरचुंबी हिमशृंगों से
''जय हिंदुधर्म की जय'' छाई,
कविकुलगुरु की वर वीणा ले
वाणी ने ध्वनि यह दुहराई।
चलता है जल-थल-अम्बर में
शक-अरि के विक्रम का शाका,

जग-जयिनी उस उज्जयिनी में
फैली जिसके यश की राका,
वह स्कंदगुप्त की विजय-कथा
दर्पित हूणों का उन्मूलन
प्रतिपल वर्द्धित दावाग्नि यथा
प्रशमित कर देता है उठ घन।
फिर हूण-हरिण हरि-यशोधर्म
का कीर्ति-केतु नव लहराया।
जन-जन के जीवन में विजया
तेरा शौर्योदधि उफनाया।
हूणों का महा मिहिर डूबा
भारत के बल के प्लावन में,
निज पुण्य-प्रभाकर उदय हुआ
थानेश्वर के प्रिय प्रांगण में।
सम्राट हर्ष के शासन में इस
धर्म-धरा के भाग जागे
विजये, तेरी मधु-मदिरा पी
जन-जन के उर के राग जगे
रच मेद-मांस से अरबों के
बाप्पा ने विजय-स्तंभ निर्जर,
चित्तौड़-चरण में झुका दिया
इस्लामी प्रथम प्रवाह प्रखर।
पर पृथ्वीराज के साथ तुम्हें,
हा विजये अंतर्हित पाया,

हा हा कैसी दुर्भाग्य-निशा,
कैसा वह दारुण तम छाया!
वह तिमिर हटाती जागीं तुम
पद्मिनी की चिता ज्वाला में,
गोरा, बादल, जयमल, पत्ता
के मुण्डों की जयमाला ले।
साँगा के शोणित-उत्सों से
रक्तावत कलेवर तू जागी,
राणा प्रताप से तूने ही
स्वातन्त्र्य-यज्ञ की बलि माँगी।
मेवाड़-केशरी के कर की
बरछी मुगलों का काल बनी,
असि-मानसिंह की मुखमसि-सी,
हत हिन्दु-जाति की ढाल बनी।
छत्रपति शिवा का गैरिक ध्वज
नव उषालोक-सा उदित अमल।
औरंगज़ेब-निष्फल छल-बल-
लख दिवस-कोक-सा हुआ विकल।
उस महाबली के उद्भव का दव
लख देहली का दिल दहला।
झंझानिल-सा उसको भीषण
गोविंदसिंह का रोष मिला।
फिर राजसिंह की राजनीति,
श्री छत्रसाल की युद्धकला,

इन आवर्तों में धृत मूर्च्छित,
तिल-तिल मुस्लिम-साम्राज्य जला।
बाजी चढ़ बाजी राव बढ़ा,
उसको अन्तिम आघात दिया,
अवशेष मुगल-बल-वैभव भी,
कर भस्म-शेष निःशेष किया।
वह हिन्दुधर्म का विजय पर्व,
वह पुनः हिन्दु-साम्राज्य उदय,
वह अभिनव हिन्दु-राष्ट्र-रचना,
आंग्रे का आंग्ल-दलन निर्भय।
विजया! वह तेरी माया थी,
नवयुग का स्वर्ण स्वप्न सुन्दर!
आकर धीरे से चला गया,
विद्युत्-गति जन-मन कर भास्वर।
झांसी की रानी ने यद्यपि
असि-धारा में फिर नहलाया,
पर सत्तावन में शूरों ने
तुमको तो रूठी ही पाया।
अन्याय-दमन की, शोषण की,
उत्पीड़न की अवतरित शती,
फाँसी के तख्तों पर झूले,
हँसते-हँसते स्वातन्त्र्य-व्रती।
प्रवाहित अव्याहत तपस्त्याग की
स्वेद-रक्त-रंजित धारा,

ऊर्जित अविरत बलिदानों से,
तोड़ती पराभव की कारा।
हम मुक्त हुए, पन्द्रह अगस्त भी
सन् सैंतालिस का आया,
उस तिमिर-ओक में मुक्तिपर्व
युग-चन्द्रोदय बनकर छाया।
वंचित हो जाय अविद्या से,
योगी ज्यों स्वीय सिद्धि क्षण में
शैथिल्य आ गया उसी भाँति
प्रण में लड़ते-लड़ते रण में।
दुर्दैव दलित गति-मति, हृत-धृति
स्वीकार विभाजन हुआ हाय,
खण्डित स्वदेश लख तुम विजये
रहती हो कुंठित मलिन-काय।
पीड़ित नित नव दानव-दल से
अब भी कश्मीर अधीर महा,
चीनी असुरों से धर्षित हो,
हिमगिरि ने कितना क्लेश सहा।
रूठी-रूठी हो विजये, हम,
शोणित का अर्घ्य सजायेंगे,
प्राणों की पावन बलि देकर
अपने शिर - सुमन चढ़ायेंगे।
बढ़ चरणों में चढ़ जायेगा
अपना दृढ़ ध्येयनिष्ठ जीवन,

वरदे, हम कर देंगे अर्पित
तव सेवा में तृण-सा यह तन।
ध्रुव-तारक से संकल्पों में
जागेगा चिर अविभाज्य देश
पैंतीस कोटि का जीवन-धन
आराध्य अखंड अजेय देश
स्वातन्त्र्य, सख्य का, समता का
आदर्श बनेगा जन-जीवन,
शुचि धर्मतत्त्व से परिचालित
होगा राष्ट्रीय तंत्र प्रतिक्षण।
जागो जन-जन में, तन-मन में,
नयनों में उल्का सी जागो।
उर-उर की विजड़ित तंद्रा में
भैरव - गर्जन भरती जागो।
इन ज्वलित क्षणों में जीवन के,
ओ अनलमयी तेरा स्वागत,
शत धूमकेतु-सी स्मृतियों का,
संसार लिए तेरा स्वागत।

वीर-बाहु

ये कुलिश-कठिन, यमदण्ड-चण्ड, हैं परिघ-घोर तेरी बाहें।
ये खोल चुकीं रे, जीवन की जय की जग में अगणित राहें।
ये तोल चुकी हैं कन्दुक-से, सब विन्ध्य, त्रिकूट, मेरु मन्दर,
ये सुखा चुकी हैं प्रलय-क्षुब्ध, आलोड़ित, उन्नत शत सागर।
ये ध्वस्त कर चुकीं बार-बार रवि-शशि-उडु-गहन व्योम-कानन
हे वीर, अतल तक अंकित है इनके बल-पौरुष का धर्षण।
ये तोड़ चुकी हैं अमित-ओज दिङ्.नागों के मद-पूर्ण हृदय,
ये फोड़ चुकीं लघु भाण्ड सदृश ब्रह्माण्ड अनेक असीम अजय।
इनके संघर्षण में जगते पावक, पवमान, वज्र-गर्जन,
वृन्तच्युत से चू पड़ते हैं कर्षण में अशनि, केतु, बहु घन।
इनकी छाया में पलता है गत-त्रास शक्र का सिंहासन,
मन्दार-सुमन ले करती हैं सुर-सुन्दरियाँ इनका अर्चन।
ये भार-धारिणी धरती की, ये शौर्य-सिन्धु की शक्ति तरी,
दुख-दग्ध, दलित की, पीड़ित की, हैं शोकित की संताप-हरी।
ये धर्म-वर्म-सी गो-द्विज की, श्रुति के पथ की करतीं रक्षा,
दानव-कुल-दव सी, माधव-सी, अरि के उर को नय की शिक्षा।
ये शूल, परश्वध, पट्टिश, असि, धनु-शायक की आश्रय-दात्री,
साहस अनन्त, पौरुष अशेष ले विश्व-विजय-पथ की यात्री।
इन बाहों का जब पाती हैं दिग्वधुयें पुलकित आलिंगन,
उस मधु-क्षण में ही होता है जग में समर्थ साम्राज्य-सृजन।
ये मिटा चुकीं श्री सीता के जीवन का राक्षस-त्रास महा,

ये रचा चुकी हैं कृष्णा के केशों का शोणित-स्नान अहा!
ये उग्रसेन की तोड़ चुकीं वह कंस-कठोर क्रूर कारा,
ये सुधा-सलिल से सींच चुकीं कुंती के उर का मरु सारा।
मेवाड़ भूमि के प्रति-कण में जागृत है इनकी अमर कथा,
शिवराज-केसरी की धृति ये, औरंगजेब की हृदय-व्यथा।
ये धर्म-धरा का अवलम्बन, ये मातृभूमि की हैं आशा,
लिखती हैं अपने विक्रम की, यश की नित महिमामय भाषा।
फूँकेंगी पांचजन्य ले ये जब जागृति का आह्वान प्रखर,
प्रति जन में, मन में, जीवन में कर देंगी गीता-स्वर भास्वर।
इस धर्म-क्षेत्र के, भारत के सौभाग्य-सूर्य का पुण्य-उदय,
होगा वह, जिसमें क्षय होंगे सब दुरित-दोष-दुख दास्य अनय।
ये शारंग-समर्थ, पिनाक-उग्र गाण्डीव-प्रबल तेरी बाहें,
हे वीर, मिटा दें अग-जग की चिर-संचित वंचित की आहें।

चित्तौड़-दर्शन

शत-शत स्वप्नों में देखा है अब तक तुमको नित्य,
हे चित्तौर, वहीं तुम सहसा बने दृगों के सत्य।
मैंने देखा है हिमगिरि का नभ-चुंबी उत्थान,
पर वह भी तुमसे छोटा है, था न मुझे यह भान।
सतत तुम्हारे तप की ऊष्मा-सा जलता है भानु,
अक्षय ज्वलनशीलता तुमसे पाता सदा कृशानु।
नहीं, यहाँ हिमशीत हुआ है अनल मानकर हार,
सतियों के तन पर बन-बन कर कुसुमों का शृंगार।
वे सतियाँ जो जलीं धर्म की ज्वाला बनकर आप,
अब भी जागृत है दिशि-दिशि में उनकी प्रभा अमाप।
उसी प्रभा से दृप्त तुम्हारा अब भी उन्नत भाल,
वही प्रभामंडल अपनी इस धरती की जयमाल।
प्रवहमान है सतत पवन में उन सतियों की क्षार,
यहाँ बसा है शत-शत तीर्थों का पावन संसार।
खचित तिलक-सा दीप्त शीश पर कुंभा का जयस्तंभ,
अब भी देश-धर्म के अरियों का हरता बल दम्भ।
कीर्तिस्तंभ गूँज रहा है कुंभा का जय गान,
जिसकी पद-अर्चा करता था मालव का सुलतान।
और तुम्हारे कीर्ति-सोध की चूड़ा पर छविमान,
रत्नदीप-सा ज्वलित पद्मिनी का शुचि शील महान्।
गोरा बादल के पौरुष के गौरव-गीत ज्वलंत,

केशरिया बनकर आते हैं गाने यहाँ वसन्त।
भू-लुंठित था यहीं तुम्हारे चरणों में श्रीहीन,
धर्मज्योति लख चकाचौंध हो विफल अलाउदीन।
साँगा के तन पर तुमने ही झेले अगणित घाव,
मिटी न वह वेदना अभी तक, रुका न रक्तस्राव।
दिखा रहे हो तुम शत-शत क्षत अपने अंतर चीर,
पूछ रहे हो, समझेगा अब क्या कोई यह पीर?
अब भी गुंजित है अंबर तक जयमल की हुंकार,
बलिदानी वीरों को अब भी पत्ता रहा पुकार।
मरण-शीश पर पग रख करते जो जौहर अभियान,
उन नरसिंहों के कण-कण यह कहता है आख्यान।
शत-शत विपदाओं के पावस तरजे बारंबार,
तुम्हें डुबाने को उमड़े अति शोणित सिंधु अपार।
शरच्चन्द्रिका-सी पर अमलिन रही तुम्हारी कान्ति,
यहाँ ध्वस्त सिर पीट रही है आक्रान्ता की भ्रान्ति।
इन ध्वंसों में गूँज रहा है अब भी 'हर-हर' नाद,
अभी सुनाई पड़ते शूरों के जयिष्णु संवाद।
माताओं, बहिनों, जायाओं के पौरुष-आह्वान,
पुत्र, बंधु, पति के कर में वर रण-कंकण-परिदान।
अंकित करते यह छवि रवि-शशि किरणों से दिन-रात,
रंगे उन्हीं के रंग में अब तक जग के सायं-प्रात।
उद्धत पद-अश्वों की हेषा तूर्यस्वन घन घोर,
शंखध्वनि, गजगण का गर्जन, केहरि-गमन अछोर।
ध्वनित हो रहा दरी-दरी में क्रुद्ध युद्ध-उन्माद,

कर सकता जो अभी राष्ट्र का विगलित दलित प्रमाद।
और इसी के बीच सुनाई पड़ती कोमल तान,
जिस पर होती थी मोहन की वंशी भी कुरबान।
चढ़ी पवन के चपल दोल पर अभी रही है डोल,
प्रेमव्रती मीरा की पावन स्वर-लहरी अनमोल।
तनमय सा यह गगन बरसाता है तारों के फूल,
सिहर-सिहर उठती है, अब भी धरती सुध-बुध भूल।
प्रेम-शौर्य दोनों का साधक तुम-सा और न अन्य,
बलिदानों के मानदण्ड हे ! पुण्यभूमि तुम धन्य।
जला तुम्हारे तप की ज्वाला से दृढ़व्रती प्रताप,
शंकित नित रहता था जिसके भय से अकबर आप।
उसकी बरछी विकच घनों में विद्युल्लता ललाम,
काल भृकुटि भी उसकी असि-सी हो सकती कब वाम?
उसने जीवन में झेले बस शिशिर, ग्रीष्म, हेमन्त,
तपोनिरत उस महावीर ने भोगा नहीं वसंत।
राणा के आराध्य साध्य तुम, हे चित्तौर प्रणाम!
शूरों, सतियों के समाधिस्थल, तुमको कोटि प्रणाम!

प्राण की होली

खेल आज प्राण की होली !
हिमगिरि से उन्नत ललाट पर वर लो बन्धु !
विजय की रोली !
जगने दो वंसत की ज्वाला,
केशरिया तन, मन मतवाला,
छक सर्वस्व-त्याग की हाला,
भर लो अमर कीर्ति से झोली !
चलो ब्रह्मशर से निषंग से,
बढ़ो ध्येय-पथ पर उमंग से,
फैलो रंगों की तरंग से।
सुन जयनाद धरा हो डोली !
करो नवल विक्रम का साका,
उड़े गगनचुम्बिनी पताका,
खिले राष्ट्र-जीवन की राका।
जिस से जाय चाँदनी तोली !
लेकर सुमनों की पिचकारी,
सुरभि-गुलाल-राशि सुखकारी,
गैरिक, पिंग, अरुण, सुवर्ण की-
निधियाँ विपुल प्रकृति ने खोलीं !
वर लो बन्धु ! विजय की रोली !

नव संदेश

नव संदेश ले आयी !
होली नव संदेश ले आयी !
गगनांगण में प्रकट हुई है ऊषा युग-जागृति की,
आज परीक्षा पुनः तुम्हारी सुगति, सुमति, धृति-कृति की;
खौल उठा है उदधि और ली हिमगिरि ने अँगड़ाई!
शिशिर गया, पतझर के उर में जगी वसंती ज्वाला,
त्रस्त-ध्वस्त कर जीर्ण-शीर्ण को बहा पवन मतवाला;
ओज-तेज-मंडित जीवन की छटा चतुर्दिक् छायी!
दिशा-दिशा में गूँज रही है राम-कृष्ण की वाणी,
श्री प्रताप, गोविन्द, शिवा, बंदा की सुयश-कहानी;
उच्चादर्शों की सुरसरि में धोलो तन-मन भाई!
बँधे सुदृढ़ संगठन-सूत्र में भारत राष्ट्र हमारा,
जननी के चरणों में अर्पित हो सर्वस्व तुम्हारा;
नवल वर्ष की विपुल हर्ष की वर लो विजय बधाई!
होली नव संदेश ले आयी!

जय कश्मीर

जय अमरनाथ ! जय काशमीर !
जय जय भारत जननी के
ज्योतित मुकुट-हीर !
सुषमा-समष्टि की चरमावधि से मूर्तिमान,
स्रष्टा की पलकों के पुलकित सौन्दर्य-ध्यान,
वाणी की वीणा के शुचितम स्वर्गीय गान,
भारती प्रजा की देश-भक्ति के एक मान,
जय अमरनाथ, जय काशमीर !
हिम-मंडित शिखरों पर बिखरा हर का सुहास,
पार्वती-प्रकृति का नवोन्मेषशाली विलास,
व्यंजित करते सरि, सर, निर्झर, वन दिशाकाश-
माहेश्वर-सूत्रों का प्रस्तर करते प्रकाश।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !
धर यहीं वितस्ता-रूप स्वयं गौरी उदार,
गुह-सदृश गुहा को बाँट रहीं वात्सल्य-सार,
आपीतभूरिपय गजमुख सुख से बार-बार,
उत्संग बीच करते क्रीड़ा-कौतुक अपार,
जय अमरनाथ, जय काशमीर !
मणिधर नागों से सेवित यह प्रतिपद सुवेश,
कश्यप के तप से निर्मित चिर-पावन प्रदेश,
तिल-तिल इसकी धरती में तीर्थों का निवेश,
शत रूप धरे विहरते यहाँ गौरी-महेश,
जय अमरनाथ, जय काशमीर !

हरि हर दोनों का चक्रभृत विजयेश रूप,
दृग्गोचर होता यहाँ पापहारी अनूप,
गंगोभेद जो भेद शिखर पर ज्योति-स्तूप,
है वहीं विहरती हंसवाहिनी हंस रूप।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !

छू हिम-कुंकुम तन को उडु-शशि के किरण-जाल,
प्रतिफलित हो रहे शत-शत वर्णों में अपार,
रवि शीतल होता, यह शीतल धरती निहार,
नंदन का ऋतु-क्रम यह धरती लाई उतार।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !

भारत के वाङ्मय-वैभव का उद्गम समृद्ध,
भामह, वामन, उद्भट, कुंतक, रुद्रट प्रसिद्ध,
आनंदवर्धन, अभिनव वाणी के शीर्ष सिद्ध,
मम्मट, मंखक की जन्मभूमि यह ज्ञानवृद्ध।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !

शत काव्य-सुधा के स्रोतों से नित परिप्लावित,
अगणित कवियों-सुधियों की कृतियों से भावित,
श्रीभट्ट, जगद्धर, कल्हण, बिल्हण से सेवित,
जयरथ, क्षेमेन्द्र, तौत, राजानक से सत्कृत।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !

यह शैव-साधना का विश्रुत मूर्धन्य धाम,
यह सिद्ध पीठ प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का प्रकाम,
तृण से लौकिक सुख छोड़ बने जो चिर अकाम,
उन शिव भक्तों की भूमि, इसे शत-शत प्रणाम।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !

खोलो-खोलो इसके अतीत के ज्योति-पृष्ठ,
गोनंद प्रथम पर जाती सबसे प्रथम दृष्टि,
था जरासंध को भी जिसका साहाय्य इष्ट,
श्रीकृष्ण-करों से मिला जिसे निर्वाण मिष्ठ,
जय अमरनाथ, जय काशमीर !
थी म्लेच्छहीन कर दी जिसने यह वसुंधरा,
जालौक-स्मृति में अब भी प्रतिमन पुलक भरा,
जिस धर्मवीर में ईश-अंश ही था उतरा,
अब भी शिखरों पर कीर्ति-केतु उसका फहरा।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !
कर दलित दरद, तिब्बत को करके श्री-विहीन,
पार कर वंक्षु, कर तुर्क-देश अपने अधीन,
जीवन भर अश्वारूढ़ रहा कोदंड-पीन,
वह ललितादित्य महान् चीन को बना दीन।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !
दृढ़ हिमानीक-सी जिसकी सेनाएँ प्रचण्ड,
शत उदधि सुखा, शत-शत पर्वत कर खंड-खंड,
बढ़ मध्य एशिया तक पहुँची अविजित अखंड,
आराध्य सतत आदित्य-ललित वे बाहुदंड।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !
जागो जागो बलिदान मुकर्जी के महान्,
जागो सोये चाणक्य, करो नव नेत्र-दान,
जागो जन-जन के ओज, तेज पौरुष अमान,
काशमीर हमारा तन, मन, जीवन और प्राण।
जय अमरनाथ, जय काशमीर !
जय जय भारत-जननी के-
ज्योतित मुकुट-हीर !

उद्‌बोधन गीत

तोड़कर अपने बंधन शेष,
बढ़ चले विजय-पंथ पर देश।
लिये प्रेरक अतीत का ध्यान,
कर रहे हम हैं यह अभियान,
ध्येय को अर्पित तन, मन, प्राण,
सजा है केशरिया वर वेश !
आज अनुशासन की स्वर-धार,
कर रही प्लावित उर के तार,
उठी युग-जागृति की झंकार,
भरा प्राणों में पुण्यावेश !
सत्य का गगनचुंबि ध्वज साज,
धर्म-रथ पर हो शोभित आज,
हमारे नेता-मूर्त विराग-
साधना का धन लिये अशेष।
एक यह गगन, धरा यह एक,
एक संस्कृति का उदित विवेक,
अटल भारती प्रजा की टेक-
गूँजता रह रह यह संदेश।
प्रलय में पले हुए रणधीर,
चले हम आगत का तम चीर,
नयी निर्मिति के लिए अधीर,
करो में हैं भावी के केश।

व्यथा की एक कथा

कवि ने पूछा–''क्यों रहते हो व्यथित सतत कश्मीर?
किस पीड़ा से झेलम के मिस झरता दृग का नीर?''
यह सुन धरती के नन्दन की व्यथा हो गयी दूनी,
ज्वलित हो उठीं रोम-रोम में पीड़ाओं की धूनी।
बोला–''हे कवि, कथा व्यथा की कैसे तुम्हें सुनाऊँ,
बीत रहा है जो कुछ मुझ पर वह कैसे समझाऊँ?
देश स्वतन्त्र हुआ पर मेरा भाग्य उसी दिन सोया।
इस स्वराज्य में मैंने अपना सहज स्वत्व ही खोया।
संविधान में घोषित करके मुझको अलग इकाई,
नेताओं ने सहसा मुझ पर दारुण गाज गिरायी।
पाशव बहुमत से यह निर्णय गया देश पर लादा,
एकमात्र बंगाल-केशरी ने दी इसमें बाधा।
'भारत का कश्मीर, सदा से है कश्मीर हमारा'
कहते कहते धीर-वीर वह बढ़ा तोड़ विधि-धारा।
'जय श्यामाप्रसाद'का जनरव निखिल देश में व्यापा,
अब्दुल्ला का हृदय देख कर ओज तेज यह काँपा।
बन्दीगृह में डाल सर्प-सा डसा निशा में उनको,
हाय ! न तब से शान्ति मिली है मेरे आहत मन को।
रोते हैं गिरि-शिखर, घाटियाँ भी मेरी रोती हैं,
बलिदानी श्यामाप्रसाद की स्मृति में धृति खोती हैं।
रो-रो कर कण-कण कहता है-'चला गया वह मानी,

इस धरती की पीर अकेले एक उसी ने जानी।
हाय ! विदेशी माँग रहे हैं धरती पुनः हमारी।
क्या रौरव बनने वाली है, यह नन्दन की क्यारी?
जन-जन में श्यामाप्रसाद की तुम भावना जगाओ,
हे कवि, इस आग्नेय व्यथा के दाहक गीत सुनाओ।
'है अखण्ड काश्मीर' बहे बन प्लावन यह स्वर-धारा,
अविभाजित ही रहे निरन्तर यह भूस्वर्ग तुम्हारा।

हिमगिरि का आह्वान

शिखर-शिखर से आज मुखर है हिमगिरि का आह्वान।
उठो, राष्ट्र की बलिवेदी पर अर्पित कर दो प्राण।।
जागो-जागो राष्ट्रनीति के सूत्रधार विख्यात,
देखो चारों ओर घिरी है कितनी काली रात।
मेरे चिर अजेय मस्तक पर लख रिपु का पद-चार,
हाय! लाज से हुए न विगलित तुम दिल्ली दरबार।
सीमायें सब ओर अरक्षित और शत्रु चुपचाप,
बढ़ता ही आया, पर तुमने सुनी न वह पद-चाप।
नेफा माँग रहा है, कोई माँग रहा कश्मीर,
अब भी समझो इन प्राणों की ज्वलित विषैली पीर।
याद करो चाणक्य-नीति का वह पौरुषमय सार,
हुआ देश का मध्य एशिया तक जिस से विस्तार।
जागो कृषकों ! शस्यश्यामला धरा रहे चिरकाल,
अविरत श्रम के मेघ तुम्हारे बरसें बने सुकाल।
ईति-भीति-दुष्काल-व्याल के लिए बनो खगराज,
उपजाओ अपने खेतों में तुम दसगुना अनाज।
मैंने तुमको दिया अपरिमित अपने उर का प्यार,
गंगा-यमुना ब्रह्मपुत्र-सी देकर शत सरिधार !
इनके जल के बूँद-बूँद का ले पीयूष अपार,
अक्षय श्रीसंपन्न बना दो तुम अपने घर-द्वार।
ले लो सब अपनी सेना के योगक्षेम का भार,
मेहनत करते रहो, विजय का मार्ग करो तैयार।
जागो हे श्रमिकों, प्रमाद का अवसर रहा न आज,
तुम्हें बचानी है अब अपनी मातृभूमि की लाज।
जो चीनी एजेंट बिछाते जाल तुम्हारे बीच,
छोड़ हृदय-दौर्बल्य समझ लो उनका आशय नीच।

कर दिनरात एक तुम इतना माल करो तैयार,
जिससे मिलता रहे देश को आवश्यक संभार।
अस्त्र-शस्त्र से पूरित कर दो अपना सैन्य विशाल,
सतत कर्मरत बाहु तुम्हारे बनें देश की ढाल।
करो आत्मनिर्भर स्वदेश को बहा प्रस्वेद अपार,
मेहनत करते रहो, विजय का मार्ग करो तैयार।
बढ़ो सैनिकों, मुक्त तुम्हारे लिये विजय का द्वार,
तिब्बत फिर हो रहा तुम्हारे स्वागत को तैयार।
देता हूँ आशीष, तुम्हारा सफल बने अभियान,
काँपे सुनकर चीन तुम्हारा दुर्दम रण-प्रयाण।
मुझ में ही तेंतीस कोटि देवों का है अधिवास,
अंतिम जय का तुम्हें दिलाते हैं वे सब विश्वास।
चीर चीन का वक्ष तुम्हारा गूँज उठे जयनाद,
भारत अजर, अमर, अजेय है फैले यह संवाद।
पीत पत्र से शत्रु ध्वस्त हों, बनो शिशिर-वातास,
निज संस्कृति के आदर्शों का लेकर बढ़ो प्रकाश!

जय हिमालय !

अनाहूत आ गया विजय का पर्व तुम्हारे द्वार।
बढ़ो सजाओ घर-घर रिपु के शिर के बंदनवार।
टूटी है समाधि हिमगिरि की, सजग हुआ कैलाश,
खुला तीसरा नयन शंभु का ज्वलित निखिल आकाश।
प्रलय मचाता हुआ चल पड़ा कार्तिकेय का वाण।
चीनी नरकासुर के वध के लिए आज अभियान।
भाग्य जग गया, हुआ अपावृत स्वयं विजय का द्वार।
बढ़ो सजाओ घर-घर रिपु के शिर के बंदनवार।
सहज शान्तिप्रिय न्याय-धर्म के संरक्षक हम ज्ञात,
किंतु हमारा रोष प्रलय से भी प्रवृद्ध विख्यात।
सतत त्रिविष्टपजयी, तरणि निज विजय केतु अभिराम,
अपने रथ की अटल लीक ये सिंधु सकल उद्दाम।
हिमगिरि अपना शीश और हिमगिरि ही अपनी श्वास,
हिमगिरि अपना है, अपना है-यह अखंड विश्वास।
गूँज रहा है कंठ-कंठ से, खुला विजय का द्वार,
बढ़ो सजाओ घर-घर रिपु के शिर के बंदनवार।
पैरों में भूचाल दृगों में कालानल विकराल,
लेकर बढ़ते चलो निरंतर ओ माई के लाल!
कोटि-कुलिश से रिपु पर टूटो, गरजो बारंबार,
वामपंथ की पाप -पुरी को करो जलाकर क्षार।
बृष के दुःसह मार्तण्ड से बरसाओ वह आग,

तपकर कुंदन बने देश यह भाग्य उठे फिर जाग।
भाग्य जगा है, विजय-पर्व आ गया तुम्हारे द्वार।
उठो सजाओ रिपु के शिर के घर-घर बंदनवार।
हिमगिरि को लांछित करने का जिसने किया प्रयास,
स्वीय कंठ में उसने डाला विकट काल का पाश।
रिपु की आशा के कमलों पर पड़ो तुहिन बन आज,
तुहिनाचल की गूँज उठी है यह भैरव आवाज।
हिमगिरि शिव हैं और तुम्हीं हो उद्यत उदित पिनाक,
त्रिपुरासुर है चीन, बढ़ चलो उसका सीना ताक।
अनाहूत आ गया विजय का पर्व तुम्हारे द्वार।
उठो सजाओ रिपु के शिर के घर-घर बंदनवार।

संक्रान्ति

देखकर दानवीय अत्याचार अनाचार, त्रास घोर
निर्मम शिशिर का–
पीले कर भूमिशायी जिसने बना दिये
पत्र प्रति तरु के
साम्यवाद का प्रवाद गढ़ कर–
छोड़ दी है रवि ने मृदुता स्वभाव की।
संकलित कर स्वीय शक्ति सब
छोड़ आत्मविस्मरण,
ज्वालायें उगलता नयन अराल से,
कोटि–कोटि पदों में
प्रज्ज्वलित ज्वालामुखियों के रौद्र स्फोट लिए,
होकर प्रचंड से प्रचंडतर
मुड़ गया मार्त्तण्ड उत्तर की ओर
जहाँ खोया सा पड़ा है
हिमगिरि हिमानीक में।
हिमानीक–नहीं, यह दानव–अनीक है,
मानव के मज्जा, मेद, मांस और रक्त से,
भूख सदा जिसने बुझाई है
शक, हूण और मंगोल कहकर जिन्हें
इतिहास याद किया करता है, अब भी।
कोटि–कोटि बौद्ध भिक्षुकों के शान्ति–उपदेश,

रक्त की पिपासा नहीं जिनकी बुझा सके,
वे ही आज सैन्य सजा आ गये हैं फिर से
हिमगिरि की प्रशान्त भूमि पर,
मानवता के निरीह शोणित में,
सनी हुई
कुत्सित पताका लिए लाल-लाल।
इसलिए घूम गया
उत्तर की ओर रवि,
तुम भी बढ़े चलो।
साथ-साथ तुम भी बढ़े चलो।
तेज से तुम्हारे
यह हिमानीक जड़ता का शत्रुओं की
पल भर में ही गल जायगा।
भस्मासुर चीन का
अपने ही पाप से
अपने ही हाथों जल जायगा।

भारत माता

बँध रही दृष्टि
सम्मुख अलोक आलोक-सृष्टि।
यह नील गगन,
ले सूर्य, चन्द्र, तारा अगणन,
बरसता भावमय किरण-किरण,
आतप में ज्योत्स्ना में क्षण-क्षण।
चुम्बित जिससे हिममय किरीट,
गिरि का स्मितिमय, प्रति श्रृंग स्फीत,
हेमाभा में रंग बदल - बदल,
ये झलक रहे झरने अविरल।
बहती नदियाँ श्रुति-सुख कल-कल,
फैला जीवन का कोलाहल।
धरती का पग-पग सजल सफल,
लहराता शस्य भरा अंचल।
मस्तक पर प्रिय काश्मीर हीर,
षड्-ऋतु-रंजित पावन शरीर।
गंगा-यमुना कल कंठ-हार,
श्रुति -प्रथित पंचनद छवि अपार।
युग बाहु-सिन्धु उन्मदोद्दाम,
वह ब्रह्मपुत्र चिर शक्तिधाम।
बहु लड़ियों की मेखला विंध्य,

श्री, सुख, सुषमा, गरिमा अनिंद्य।
गर्ज्जित लहरों के शत-शत फन,
यह सिंधु शेष का सिंहासन।
आसीन सहज जिस पर अविचल,
माँ, चरणों में लंका-शतदल।
जागी उर-उर शुचि मातृ-मूर्ति,
भर भक्ति-प्रीति-बल-दीप्ति-स्फूर्ति।
चालीस कोटि कंठों के स्वर,
फूटे- "जय मातृभूमि भास्वर, !"

रेल की एक रात

सत्य क्या है?
गति अगति किंवा?
कहा है श्रुति ने-
दो पखेरू रह रहे हैं
यहाँ पीपल की अनश्वर डाल पर,
एक बैठा ही रहा करता सदा,
नहीं चलता, नहीं खाता, नहीं पीता, नहीं सोता-जागता-
वह सहज कूटस्थ।
दूसरा उड़-उड़ दिशा आकाश में
भोगता सुस्वादु पीपल के
असंख्य-असंख्य फल।
वह उड़ा करता सदा,
नहीं लेता वह कभी विश्राम,
सीमा के असीम प्रदेश में,
घूमने से वह कभी होता नहीं उपराम
उसी सैलानी पखेरू सा
घूमता है सतत नीलाकाश,
घूमते हैं सूर्य, शशि, नक्षत्र
यह धरती,
शस्य-श्यामल खेत, फल के भार से नमित वृक्ष असंख्य, गिरि कांतार,
सर, सरि, सिंधु-विश्व विराट।
और मैं कूटस्थ-
अंशतः कूटस्थ-

नहीं जा सकता कहीं मैं
छोड़ अपनी डाल-रेल का डिब्बा।
और भी मेरी तरह के
हैं यहाँ बहुत से कूटस्थ पक्षी,
यहीं चलते, यहीं खाते, यहीं पीते, यहीं उठते-बैठते-
रेल की माया बनाती उन्हें भी कूटस्थ।
सतत गति के बीच हम
कैसे अगति के दास-
पूछते गतिशील ये रह-रह धरा-आकाश।
तोड़ कर अपनी अगति के पाश,
बन सकेंगे क्या कभी हम भी
एक टेक कि एक लय,
सतत गति के इस महासंगीत की?
अथवा क्या रुकेगी जब कि गति की रेल
ठहर जायेंगे दिशा-आकाश
तभी आयेगा
हमारी इस अगति का अन्त,
प्राप्त होगा तभी निज गंतव्य?
कौन जाने सत्य क्या है-
गति अगति किंवा?
या कि गति औ अगति दोनों के परे,
सत्य है कुछ और,
गति अगति के युग्म में
जिसका हमें
मिला करता है सहज आभास।

गाँधी की पुकार और हरबतसिंह का बलिदान

दक्षिण अफ्रीका में घर-घर पहुँची गाँधी जी की पुकार,
मारुत की गति, विद्युत की गति, मन की गति यह लख गई हार,
आवाहन पर गाँधी जी के, कुछ ऐसी आँधी-सी आई
बलिदान करो, बलिदान करो ध्वनि क्षण-क्षण कण-कण में छाई।
आबालवृद्ध भारतवासी सत्याग्रहार्थ तैयार हुए,
निज देश प्रेम की वेदी पर, बलि के हित अपने प्राण लिए।
युवकों में था उत्साह अमित, आगे बढ़ने की होड़ लगी।
सर्वस्व समर्पित करने की, जन-जन में थी कामना जगी।
मस्तक पर सत्याग्रहियों के, शुभ लगा-लगा कुंकुम-रोली,
निज स्तनपायी शिशुओं को ले माताएँ मुदित साथ हो लीं।
शिशु मचल रहे थे चलने को, सब निद्रा, भूख, प्यास त्यागे,
अति विस्मय होता था परन्तु वृद्धों का दल लखकर आगे।
पर साहस था किसमें ऐसा जो बढ़ इन बूढ़ों को रोके,
विचलित कर पाते थे न उन्हें, आतंकवाद के भी झोंके।
इन वृद्धों के दल में थे सब सत्तर-पचहत्तर के ऊपर,
पर युवक सदृश ले स्फूर्ति अमित बढ़ते जाते थे वे पथ पर।
ऐसे ही थे हरबतसिंह वे पचहत्तर थे कर गए पार,
गाँधी के बंदी होते ही वे हुए स्वयं चल गिरफ्तार।
फिर "वोकसरस्ट" जेलखाने वे भेजे गए सजा पाकर,
सौभाग्य वहीं पर बंदी थे गाँधी अनंतश्री संतप्रवर।
इन हरबतसिंह को देख वहाँ उनको कौतूहल हो आया,

पूछा, ''हे वयोवृद्ध, तुमको है कौन जेलखाने लाया ?
वर्जित नितान्त है वृद्धजनों के हित यह अपना सत्याग्रह,
फिर तुमको कैसे हुआ अरे, इस वय में भी ऐसा आग्रह।''
बोले ''निज पत्नी और पुत्र लेकर के आप जेल जावें,
धिक्कार हमें है, फिर भी हम घर पर रहकर सुख पावें।''
''जेलों के दारुण कष्टों को पर सह न सकेंगे आप कभी,
स्वीकृति दें और प्रयत्न करूँ, तो करवा दूँ मैं मुक्त अभी।''
बोले वे, ''देव, असम्भव यह, मुझको मरना है एक बार,
यदि कारागृह में मृत्यु मिले, तो खुल जायेगा स्वर्गद्वार।
जीवन की चरम यातना का सबसे सुन्दर अवसान यही,
अपने शोणित से सिंचित हो उर्वरा बने यदि मातृमही।
श्रद्धा से नत थे गाँधी जी उन वृद्ध तपोधन के समक्ष,
पूरी उनकी कामना हुई, कर लिया प्राप्त अभिलषित लक्ष्य।
थी मृत्यु विफल, वे अमर हो गए उस कारागृह के भीतर,
युग-युग तक उनकी कीर्तिकथा गायेगी '''आत्मकथा'' निर्जर।

महात्मा गाँधी की पुकार-अहमद महमद काछलिया

थे हरबतसिंह से बलिदानी वे अहमद महमद काछलिया,
गाँधी के इंगित पर उठकर अपना सब कुछ बलिदान किया।
वे बड़े सेठ थे, था उनका व्यापार समृद्ध फला-फूला,
पर धन के मद में मन उनका अपना कर्तव्य नहीं भूला।
जब-जब अवसर आए, तब-तब हँस-हँस कारागृह वरण किया।
फूल ही समझकर शूलों के पथ पर दृढ़ता से चरण दिया।
घर बार और रोजगार जले सब सत्याग्रह की ज्वाला में,
पर मत्त रहे सब कुछ सहकर वे देशप्रेम की हाला में।
ऐश्वर्य न रहा गरीबी में काटा अपना सारा जीवन,
पर टेक न छोड़ी और किया दृढ़ता से पालन अपना प्रण।
अफ्रीकावासी भारतीय उनके द्वारा संगठित रहे,
प्रह्लाद-सदृश उनकी निष्ठा की अमर-कथा कवि कौन कहे।
सम्मान अशेष देश का वे पाते हैं, युग-युग पायेंगे,
उनके आदर्शों पर चलकर सब जीवन सफल बनायेंगे।

गाँधी की पुकार-वालियामा

यह धरती जिसकी शुचि-स्मृति से रहती है सतत शस्यश्यामा,
बलिदानव्रती थी नवयुवती वह वीरांगना वालियामा।
इस धर्मयुद्ध में देश हेतु वह भी थी सुख से जेल गई,
रुग्णा थी अतिकृश ज्वरग्रस्त फिर भी न उसे कुछ व्यथा हुई।
जेल में बढ़ गया ज्वर उसका यह लखकर जेलर भी पिघला,
चाहा कि छोड़ दें उसे किन्तु वह रही टेक पर निज अचला।
बोली कि अवधि पूरी करके ही जेल छोड़कर जाऊँगी,
होगा यह व्रत अन्यथा नहीं यदि मरी, अमरता पाऊँगी।
साग्रह पूरी कर ही डाली उसने जेल की अवधि सारी,
छूटी तो किन्तु नहीं छूटी उसकी वह घातक बीमारी।
मुक्ति के चार ही दिवस बाद वह धराधाम तज स्वर्ग गई,
उस अमर शहादत से पाई जन-आंदोलन ने शक्ति नई।
सत्रह भी पूरे न कर सकी थी वीरांगना वालियामा,
पर उसकी पावन स्मृति से है अब भी यह धरा शस्यश्यामा।

बा और बापू

बापू एक बार कलकत्ते से चलकर कटक गये,
गाँधी-सेवा-संघ की वहाँ बैठक में सम्मिलित हुए।
चलकर सेवाग्राम से वहाँ बा भी आईं,
सिन्धु-निकट छवि मूर्तिमती सुरसरि ने पाई।
तीर्थ, सुरालय और सुरों पर उनकी श्रद्धा,
वहाँ पहुँचकर रह न सकी उर में अवरुद्धा।
जगन्नाथ का करें पुरी जाकर वे दर्शन,
उठा शुद्ध संकल्प भक्ति से पूर्ण हुआ मन।
ले अपना सहचरी वर्ग वे गईं पुरी को,
किया समर्पण भाव विनत उर का प्रभुजी को।
लौटीं तो अति व्यथित-हृदय बापू को पाया,
मुखमंडल पर था गहरा विषाद घन छाया।
बोले बा को देख, ''किया अनुचित क्यों ऐसा,
सेवा व्रत को छोड़ तुम्हें भाया पथ कैसा ?
हरिजन अपने सेव्य न जिसमें जाने पावें,
उस मंदिर में कहो किसे हम शीश नवावें ?
तुमने जिसको ईश समझकर शीश नवाया,
वह था जड़ पाषाण न प्रभु की ज्योतिर्काया।
हो निर्बाध प्रवेश नहीं जिसमें प्रति जन का,
कब होगा आवास भला वह हरि के मन का।
बंदी होकर हाय रहेंगे हरि यदि अपने,

होंगे तो फिर न्याय-धर्म के निष्फल सपने।
पतित उधारन जगतविदित है प्रभु का बाना,
उन पर भी अधिकार क्षुद्र नर ने निज माना।
उच्च्च वर्ग के लोग हुए हरि के संरक्षक,
बनते जाते किन्तु धर्म के वे ही भक्षक।
घिरी जाति पर घटा आज संकट की गहरी,
पर बैठे हैं अंध बने ये हरि के प्रहरी।
तुमने जाकर वहाँ पुण्यफल सकल गँवाया,
प्रायश्चित लग गया पाप ही पाप कमाया।''

x x x x x x

पापहारिणी सुनी विमल बा ने यह वाणी,
मनस्ताप से पूर्ण हो गईं वे कल्याणी।

काली-करबाल

आयुत अर्क-कर-अमल, मरुत-गति-मुक्त-विलासिनि !
धूमकेतु - सी भीतिकरी, दुर्गा - कर - वासिनि !
बाड़व- दव-सी अधम - असुर -शोणित की प्यासी,
जय काली - करबाल, अनल - उल्का - उल्लासी।
चर्म चारु वर - वसन भेद - मज्जादिक - अशना,
मृगपति - दंष्ट्रोज्ज्वला प्रलय - सी क्षय-सी रसना।
भुज - भुजंग -अंगना, समर - कानन की व्याली,
शौर्य्य - सुरा पी दृप्त, मृत्यु - भीषण मतवाली।
हर - शिर- मंडन - चंद्रकला - विमला वरदात्री,
धर्म धरा, धन, धाम, देश, संस्कृति की धात्री।
श्री नृसिंह-नख-शिखा-रुचिर, सुर-अरि-उर तक्षक,
विष्णु - चक्र - सी प्रभापूर्ण श्रुति - संसृति - रक्षक।
शिव - त्रिशूल - विकराल, काल-विद्युत-द्युतिशाली,
रुधिर - स्राव -संभवा शिवा - सर - शोण मराली।
रण-भू - भूषण तिमिर - हरण नित उदित उषा-सी,
शूर - सुभट - हित महातीर्थ वरदा - वर काशी।
वीर - बाहु - आश्रिता असि - लता जन-मन-हारी,
तेरी ही सिर - सुमन - माल पहने त्रिपुरारी।
तू ज्वलन्त बलिदान - बलित, इतिहास - विधायक,
क्रान्ति - व्रती, चिर - शान्ति-कृती परिवर्तन नायक।
क्षात्र - धर्म की कान्ति कीर्ति - कृति, अमर-कथा तू,

कायर, क्रूर, कपूत, अनय - रत - हृदय - व्यथा तू।
वे मशीनगन, बम्ब, टैंक, आयुध वैज्ञानिक,
सब अधर्म की सृष्टि, ध्वंस की छलना मायिक।
किन्तु रही तू सतत नीति - रक्षण में तत्पर,
बल-पौरुष की माप, दीन-दलितों की दुख-हर।
लख कर तेरा रूप काँपते भूप प्रजाशन,
खस पड़ते हैं मुकुट, उलट पड़ते सिंहासन।
तेरी प्रतिभा - प्रभा देख प्रतिभात धरा पर,
हो जाते भय-भ्रान्त अनिल, गिरि, सागर, अम्बर।
वन्दनीय अभिनन्दनीय आराध्य सदा तू,
रे त्रिनयन की नयन - वन्हि, है साध्य सदा तू।

अमर सुभाष

सागर की ठंडी छाती में,
आजादी की आग जगायी,
जिसने रिपु-दल के शोणित से,
वाडव की है प्यास बुझायी।
जिसके आतुर आह्वानों से डोल
उठा है अडिग हिमाचल,
जिसके तप की प्रखर रश्मि से,
जड़ता के पाषाण गये गल।
जिसके इंगित पर उलटी,
जीवन धारा हो उठी तरंगित,
सोये केसरियों ने उठकर,
किया सहस सर्वस्व समर्पित।
क्रुद्ध काल का भ्रू-विलास वह,
खोया कहाँ सुभाष हमारा,
छिपा सकी उस तरुण तरणि को
किन काले मेघों की कारा।
पर उसमें वह गति है जिसको,
लखकर लज्जित हुआ प्रभंजन,
उसके मन में जाग रहा है,
कुरुक्षेत्र का रण संघर्षण।
महाभाग उस वीतराग का

मूर्तमान गीता है जीवन,
उसके तन पर न्यौछावर है,
उल्का, अशनि, प्रदीप्त हुताशन।
ज्योति-ज्योति व्यक्तित्व अमर है,
अक्षत है वह, मर न सकेगा,
मृत्युंजय वह हँस-हँस कितने,
कालकूट के घूँट पियेगा।
करने को सर्वांग पूर्ण, अपना,
आजाद हिन्द व्रत साधन,
करता होगा योगिराज वह,
मुक्त एशिया का आराधन।
दृढ़ निश्चय है, सिन्धु तैर या
गगन चीर कर वह आयेगा,
आंजनेय सांस्कृतिक मुक्ति की
सीता को सुख से लायेगा।

गीत

मैं किनारा हूँ, सदा तुम सिन्धु मेरे
ज्वार से रहते से लगाते नित्य फेरे।
मुझे पहना कर अनन्त तरंग माला,
शान्त करते हो हृदय की दीप्त ज्वाला,
छोड़कर जाते कभी पर दूर इतने,
रेत से हैं प्राण तपते विकल कितने।
तब मुझे मझधार से रह-रह बुलाते,
मेघ मंद्र अतंद्र मादक गीत-गाते।
भूल जाते हो कि तुम हो गति हमारी,
भूल जाते हो, अगति सीमा हमारी।
भूल जाते हो कि मैं केवल किनारा,
निज तरंगों से जिसे तुमने सँवारा।
इसलिए आओ, रहो प्लावित निरन्तर,
यह किनारा ही बने अब उदधि निर्भर।

गीत

प्राण तुम हो टेक मेरी इस व्यथा की,
और परिणति चरम जीवन की कथा की।
निकट ही पर दूर तुम से मैं रहा यों,
सरित के दो कूल रहते ही सदा ज्यों।
वेदना का सिन्धु था प्लावित निरन्तर,
किन्तु अब तक हाय, मिट पाया न अन्तर।
प्राण बड़वानल स्वयं अपने लिये मैं,
विषम हालाहल सदा फिरता पिए मैं।
शेष हूँ निःशेष पर विश्वास मेरा,
निकट है आश्लेष का मधुमय सवेरा।
प्राण के कलकंज पर आकर खिलोगे,
मैं न जाऊँगा, तभी तो तुम मिलोगे।

गीत

लीन सब तेरे चरण में।
खिल रहे हैं निखिल श्वासोच्छ्वास करुणा की किरण में।
हँस रहे हैं शस्य-श्यामल नील-निर्मल अवनि-अम्बर,
छा रहे हैं अखिल प्राणों में प्रणय के स्वर अनश्वर,
खो रहे हैं भेद जीवन-मरण तेरी ही शरण में।
बीज, मूल, स्कंध, शाखा, पर्ण, पुष्प, सुरंग शत फल,
संसरण की व्रतति में यह प्रतति तेरी ही रही पल,
हो रहे हैं शेष सकल अशेष तेरे ही वरण में।
खोजता था मैं यहाँ कब का व्यथित भूला अकेला,
तरी जर्जर, पथ अपरिचित, चिर तिमिरमय विषम वेला,
मिल गया सहसा सदय अवलम्ब तेरा संतरण में।
नाम-रूपों के तुमुल उद्घोष के उस पार क्षण-क्षण,
सुन रहा हूँ आज तेरा अमृतवर्षी ज्योति-निःस्वन,
छिप सकेगा अब न और विराट्! उर के आवरण में।

गीत

युग-युग जलेगी,
प्राण की यह होलिका
युग-युग जली, युग-युग जलेगी!
गहन तम-संकुल अमा में पूर्णिमा बनकर मिली यह,
शून्यता में रूप के शत इन्द्रधनु बनकर खिली यह,
मौन में कलरव-विकल उच्छ्‌वास के घन-सी घुली यह,
स्तब्ध मरु में बढ़ उमड़ बन अश्रु का पावस चली यह,
बिपुल जीवन-निर्झरी बन उपल के उर में पली यह,
ध्वंस में निर्माण की ज्वाला अमर युग-युग जलेगी।
विरस पतझर में यही कल कलि-कुसुम-किसलय-विलासी,
खिला करती नवल तरु-आश्लेष में पुलकित लता- सी,
सुरभि लपटों में यही अवसाद की जड़ता जलाकर,
भ्रमर को गुंजन, पिकी को दान करती है मधुर स्वर,
खींच लाती सुप्त सुषमा-राजहंसी को धरा पर,
यह असुंदर को, अशिव को क्षार कर युग-युग जलेगी।
उषा हँस-हँसकर इसे प्रतिदिन किरण कुंकुम चढ़ाती,
सांध्यश्री नव-नव इसी पर वर्ण की निधियाँ लुटाती,
नखत अक्षत ले, सजा कर चाँदनी का चारु चंदन,
कलित किरण-पराग ले करता निशाकर नित्य वंदन,
हैं सजाते भूमि, नभ, जल, पवन इसके शीश रोली,
रूप, रस, मधु, गंध की ज्वाला यहाँ युग-युग जलेगी।

काल के उर के उदधि में ज्वलित वाडव-दाह भीमा,
है बनाती वर्ष, ऋतु, युग, कल्प सबकी सहज सीमा,
प्रज्ज्वलित लपटें इसी की सृष्टि की क्रीड़ा रचातीं,
रूप फिर खोतीं इसी में पिघल पारद-सी दिशायें,
प्रकृति पढ़ती है निरंतर कीर्ति की इसकी ऋचायें,
यह अमिट अस्तित्व की लीला यहाँ युग-युग चलेगी !

गीत

नव वसंत-विलासिनी हे !
कलि-कुसुम-किसलय-लता-द्रुम-सुरभि-सद्म-निवासिनी हे!
रूप की तुम जगो ज्वाला,
पहन यौवन किरणमाला,
स्नेह की सरिता विशाला,
बहो कल-कल-हासिनी हे!
करो चित-प्लावित दिशायें,
विगत हों भ्रम की निशायें,
पढ़ो मंगल की ऋचायें,
अब रहो न प्रवासिनी हे !

विदा

रस-पोषित कोकिल के कुल से
कुसुमाकर ही यदि माँगे विदा।
यदि नृत्य-प्रमत्त मयूरों से सावन-
मास में मेघ ही माँगे विदा।
निशानाथ ही शारद-रात्रि में जो
कुमुदों के कलाप से माँगे विदा।
फिर पीर अधीर शरीर को चीर के
प्राण ही क्यों नहीं माँगे विदा।।१।।
यहाँ आकर के कर के कर में, मन-
प्राण को भा रहे, भा रहे हो।
इस मानस में तुम राजमराल से
छा रहे, छा रहे, छा रहे हो।
सुहृदों के उरों के सरोवर में गहरे-
गहरे छवि पा रहे हो।
तुम जा रहे हो कि निरंतर और भी
अन्तर बीच समा रहे हो।।२।।
तुम जा रहे हो यह जान निशीथिनी
ने निज ओस के आँसू बहाये।
नभ-ओक भी,शोक से नील हो,तारकों
का धन धूल में देता मिलाये।
कलियाँ न खिलीं, खुल के अपने उर
के क्षत हाय ! उन्होंने दिखायें।
यह देखो वियोग के भाव का भार
भी तो जग से उठता न उठाये।।३।।

गीत

ढुलकाती आई उषा आज रस की गगरी
मधु की गगरी।
फागुन की छवि तन, मन, वन, उपवन में उतरी।
दहके पलाश, लहके मंजरित आम्रकानन,
शत-शत छंदों में मुखर हुआ जग का यौवन,
कुंदों में खिल-खिल उठी पिकी की स्वर-लहरी।
पछुए के झोंकों में झरते हैं शीर्ण पर्ण,
है लुटा रहा धरती पर अंबर निज सुवर्ण,
पर पीत शस्य का गात, व्यथा कैसी गहरी !

गीत

खोल रुद्ध गवाक्ष आते हो स्वयं यों,
तिमिर के उर में उतरती है किरण ज्यों।
रेणु ज्योतिर्वेणु बन नव गीत गाती,
सुप्ति में सुधि जागरण की लौट आती।
देखता हूँ स्वप्न-आये प्रभा-रथ पर,
अरुण मुख, जलजात दृग सस्मित उषाधर।
व्योमकेश अशेष चितिघन से तरंगित,
वक्ष पर श्रीवत्स-सी शशि-रेख अंकित।
पा प्रतनु पद-भार बनते सजल लोचन,
स्पर्श से होते पुलकयुत रोम क्षण-क्षण।

x x x x x x

पूर्व जागृति के अचानक लौटते क्यों ?
तिमिर भर कर लौटती सायं किरण ज्यों!

गीत

पुतलियों में श्यामता बन तुम समाये,
आज तो घनश्याम ही घनश्याम छाये।
बरसती है सघन रस की धार रह-रह,
भीगती हूँ, खुले मेरे द्वार सब यह।
ढह चला है मूल से आवास मेरा,
मिट गये सब चित्र, है गहरा अँधेरा।
प्रखर चौमुख पवन बहता है निरन्तर,
रुक न पाता हाय! कोई चीर तन पर!

x x x x x x

अति विवश हूँ सदय हो, आओ सम्हालो,
दो सहारा द्वार तक अपने, बुला लो !

गीत

आज दर्पण में न निज को देख पाती,
किस तरह अभिसार का संभार पाती ?
मैं स्वयं बदली कि बदले अवनि-अंबर,
भर रही है अगति-सी कैसी निरंतर !
प्राण का चातक हुआ है मौन सहसा,
रहा उलटा आज कोई पवन बह सा !
बंद सभी गवाक्ष, भीतर भा रहे तुम,
क्या स्वयं अभिसारिका बन छा रहे तुम?
तो सुनो, यह दीन दर्पण तोड़ती हूँ,
बिंदु को निज सिंधु में लो, छोड़ती हूँ !

गीत

आज मैंने रात आँखों में बितायी,
पर न पग ध्वनि भी तुम्हारी दी सुनायी!
सुप्ति में तुम स्वप्न बन आये निरंतर,
जागरण में क्यों न मेरी याद आयी,
आज मैंने रात आँखों में बितायी!
सुप्ति मेरी, क्या वही जागृति तुम्हारी ?
सुप्ति से वलयित सदा जागृति हमारी ?
रात जो मेरी वही क्या दिन तुम्हारे ?
और मेरे दिन तुम्हारी रात घेरे!
क्या इसी से प्राण ने निज निधि न पायी?
आज मैंने रात आँखों में बितायी!
कीर- सा यह प्राण अविरत रट लगाये,
चित्त का चातक तृषा का दव जलाये,
कह रहा है-'श्याम घन अब तक न आये!'
झलक भी मानस-शिखी ने वह न पायी,
आज मैंने रात आँखों में बितायी,

गीत

निशा तिमिर के बाहुपाश में बँधकर सोई
मेरे अंतर में आहत शत सुधियाँ रोईं!
झलक रहे हैं दूर आँसुओं से कुछ तारे,
टूट-टूट गिर रहे विफल पल-पल बेचारे!
दग्ध हृदय का धूम या कि नीहार-भार है,
तप जीवन घन-सदृश बरसता बार-बार है!
पीड़ा की विद्युत के दवमय ज्योतित क्षण में,
देखा करता चित्र तुम्हारा उर के व्रण में!
रोम-रोम में कालकूट-सा विरह तुम्हारा,
जाग रहा है- अति दुर्गम अकूल यह धारा?
जन्म-मरण के सुप्रभात बनकर अब आओ!
रेणु-रेणु को अपनी मादक वेणु बनाओ!

गीत

तेरे दीपक में स्नेह कहाँ?
है अर्द्धरात्रि,
तू कौन यात्रि!
बहता है सन-सन पवन यहाँ।
बुझ-बुझ तारे,
रवि-शशि सारे
कहते- ''जीवन ही मरण यहाँ।
ऐसे पथ पर,
साहस भरकर,
जाता है रे वह देश कहाँ?

गुर्जर भारती

सागर से अर्चित है जिसका श्रीविग्रह दिनरात,
भारत के गौरव की गर्वित चूड़ा है गुजरात।
सोमनाथ की अकल कला का फैला यहाँ प्रकाश,
जिसकी मृत्युंजय गाथा की प्रतिध्वनि है इतिहास।
अब भी शोभित है ज्योतिर्मय यहाँ द्वारका धाम,
गोकुल-मथुरा के कृतित्व का सिद्धपीठ अभिराम।
कण-कण में अंकित यदुकुल का पौरुष-पुंज अमाप,
जिसकी स्मृति से त्रस्त उदधि यह रह-रह उठता काँप।
हरि के मुख के कमलालय के कूजित मंजु मराल,
पांचजन्य के पुण्य घोष से स्पंदित गगन विशाल।
नंदिघोष की रथ्याओं से तीर्थीकृत निःशेष,
गीतागुरु की गरिमा की धात्री यह धरा विशेष।
हरप्रिया रेवा से लालित पद-पद ललित ललाम,
गर्जित नित गिरनार-सिंह-सा अर्जित शौर्य-प्रकाम।
लहराते कदली - कपास के खेतों से सब ओर,
शस्य-श्यामला इस धरती की सुषमा सहज अछोर।
वाणी के सुत शत-शत चारण करते जिसका गान,
सती, संत, शूरों की है यह धरती अक्षय खान।

x x x x

माधव रजनी में विलसित लख राकापति का लास,
बलभीपुर के खँडहर लेते दुःख से गहरी साँस।
ऋतुपति से शतगुण समृद्ध था उसका स्वर्ण अतीत,

घेलों की लहरें गायेंगी युग-युग उसके गीत।
शिलादित्य का हठ, काकू का देश द्रोह कुख्यात,
बन विषाद का तिमिर लोक घन घिरता है प्रति रात।
पंचासर के प्रबल चावड़ों का अमरण आख्यान,
कहते ही रहते हैं गर्जनरत वनराज महान्।
तदुपरि अणहिलपुर पाटण का नव्योदय छविमान,
इस धरती के यशः शिखर का कलश बना द्युतिमान।
अनुपम है सोलंकी कुल का विक्रम-शौर्य-विकास,
सिद्धराज की गौरव गाथा पर गर्वित इतिहास।
एकीकृत स्वदेश का मन में जागा स्वप्न अपार,
किया चक्रवर्ती परंपरा का उसने उद्धार।
मिला उसे भी प्रतिभट अपना नवघण रा' खंगार,
राणक दे के पातिव्रत से शाणित शौर्य प्रसार।
राणक का सतीत्व जन-जन के मन का विमल मयंक,
सिद्धिराज के कीर्तिचंद्र का वही अमार्ज्य कलंक।
हेमचन्द्र के अनुशासन का किया सहज प्रतिपाल,
रहा कुमार पाल जीवन भर जैन धर्म की ढाल।
भीमदेव का था धरती पर अद्भुत विजय विधान,
पराभूत हो विनत चरण में था गोरी सुल्तान।
है अब भी अनधीत यहाँ के लोथल का इतिहास,
व्यावर्तित होने वाला है घटना-घटा-विलास।

x x x x

भारत की अध्यात्म साधना का यह क्षेत्र उदार,
सब धर्मों के सार तत्व का यहाँ हुआ विस्तार।

बौद्ध-जैन नाथों-सिद्धों के साधन पीठ-अनेक,
करते हैं इस पुण्य भूमि का ज्योतिर्मय अभिषेक।
है शंकर का यहाँ भारती-पीठ विश्व-विख्यात,
लसित मालसर में है शुचि चैतन्य-धाम अवदात।
मीरा के गीतों से गुंजित रहते हैं दिन-रात,
रँगे श्याम के रंग में आते-जाते सांय-प्रात।
हैं कबीर के राम यहाँ पर घट-घट में रममाण,
उत्थित होते भक्त-कंठ से अष्टछाप के गान।
यहाँ उदधि बन उफनाता है 'मानस' का उल्लास,
तुलसी-पत्रों पर अंकित लख राम कथा सविलास।
अखा भगत के 'अक्षय-रस' से सिक्त यहाँ प्रति ग्राम,
नरसी, बाझन, दरियायी के यहाँ गूँजते साम।
हीरादास, समर्थदास, दादूश्री, ईसरदास,
गामधनी, बस्तो विश्वंभर, बालम, प्यारेदास।
सैयद हाशिमशाह, बूटियों, रवि साहब, नीरांत,
भोजो भगत,त्रिविक्रम हरते जन-जीवन का ध्वान्त।
प्रेमानन्द के मामेरू के स्वर के मेघ अपार,
भक्ति और श्रद्धा की वर्षा करते धारासार।
केवलपुरी, कुबेरदास, सागर, नरसिंहाचार्य,
बापू गायकवाड़ आदि की वाणी शिरसाधार्य।
सन्तों की इस मणिमाला के हीर-सुमेरु ललाम,
वेदमूर्ति ऋषि दयानन्द को शत-शत विनत प्रणाम।

x x x x

इस प्रदेश के कच्छ क्षेत्र का महिमामय आख्यान,
मुखर निरन्तर सिन्धु उसी के गाता है जय-गान।

रन के यात्री अब भी करते हैं मेंकण की याद,
ध्वनित 'मोतिया' और 'लालिमा' के अब भी संवाद।
'परमेसरा देसरा' कह कर देते थे जन मान,
उन देसल की विजय-कथा का उर-उर जागृत ध्यान।
पा जिनका नेतृत्व कच्छ के बालक, वृद्ध, जवान,
हुए संगठित वणिक, प्रशासक, भिक्षुक और किसान-
सूबेदार बुलन्द खान का मोगल सैन्य अपार,
क्षत-विक्षत हो उनके सम्मुख हुआ पलायित हार।
महाराव लखपति का आया रामराज्य-सा काल,
सभी दिशाओं में प्रदेश का वैभव बढ़ा विशाल।
विविध कला-कौशल का दिन-दिन होता गया प्रसार,
रामसिंह मालम ने खोले शत समृद्धि के द्वार।
'ब्रज भाषा शाला' में करके कविकुल का आह्वान,
महाराव ने किया युगों तक वर्द्धित यश अम्लान।
काव्यशास्त्र, संगीत, नृत्य के साधक सुधी अनन्त,
बसे कच्छ में देवपुरी में बिलसित यथा वसन्त।
महा उदधि की तुंग तरंगों पर चढ़-बढ़ सोल्लास,
बहुसंख्यक कच्छी जन पहुँचे अफ्रीका तक खास।
बढ़ा विदेशों तक प्रदेश का अपरिमेय व्यवसाय,
प्रचुर धनागम के उद्घाटित होते गये उपाय।
प्रथित प्रागमल के कृतित्व का यह अध्याय अनन्य,
दास प्रथा अवैध घोषित कर हुए जगत में धन्य।
वन्दनीय है कच्छी जन का पौरुष शौर्य अमाप,
अभी सिन्धु के शिशु सुन जिसको सो जाते है काँप।

x x x x

युग-युग का तम-तोम हरण कर ज्योति-सरण-प्रतिद्वार,
बालारुण-सा हुआ यहीं पर मोहन का अवतार।
समुदित निज सौभाग्य चन्द्र ही कर्मचन्द्र के व्याज,
प्राण-प्राण स्वातन्त्र्य चेतना से ज्योतित था आज।
साबरमती हुई गंगा-सी पूत वंद्य-गीर्वाण,
राष्ट्रसंत ने किया पुलिन पर आश्रम का निर्माण।
दांडी ने पाया धरती पर कुरुक्षेत्र का मान,
और बारडोली पर शत थर्मापोली कुरवान।
इस धरती का पौरुष जिनमें हुआ निखिल साकार,
थे राष्ट्रीय ऐक्य के शिल्पी वे पटेल सरदार।
मेधा में चाणक्य, दक्षता में द्वितीय बिस्मार्क,
अपराजेय और अप्रतिभट यथा अपर विक्रमार्क।
लौह पुरुष वल्लभ भाई सा हुआ न कोई अन्य,
यह गुजरात भूमि जन उनको त्रिभुवन में है धन्य।
लोक सेवकों की परंपरा का ज्योतिर्मय हार,
धारण करती रही सदा यह धरती अगणित तार।
बापा ठाकर और विनोबा, रविशंकर महाराज,
होते रहे यहाँ पर संतत मानवता के ताज।
रामराज्य बापू का जिनके स्वप्नों में साकार,
हैं मुरार भाई से अब भी नेता यहीं उदार।
धर्म भूमि यह, कर्म भूमि यह, है गुजरात ललाम,
सती, संत, शूरों की जननी, इसको कोटि प्रणाम।

जय हिन्दी

जय हिन्दी, जय हिन्दी।
चिर-अभिनव भारतमाता के,
भव्य भाल की बिन्दी ।
इसके वर्ण, रूप, रस के वश,
सूर-उदधि, तुलसी का मानस,
सन्त कबीर और मीरा की,
वाणी शुचि-जय- हिन्दी ।
छन्द, भाव, भाषा, रस-वैभव,
करते वृद्धि-सिद्धि कवि नित नव,
गुणागरी नागरी हमारी,
लिपि निरुपम - हिन्दी ।
नंददास, रसखान, देव कवि,
घनानंद, भूषण अमंद छवि,
खुले, खिले अंचल-छाया में,
धन्य हमारी हिन्दी ।
फैला देश-विदेश उजाला,
सुविदित पंत, प्रसाद, निराला,
प्रेमचन्द्र ने जीवन ढाला,
अमर हमारी हिन्दी।
तमिल तेलुगु और कन्नड़ की
बंगाली असमी उड़िया की
विदित मराठी गुजराती की
विजय - ध्वजा यह,
जय जय हिन्दी ।

भारतेन्दु जी के प्रति

छिन्न-भिन्न कर रीति रूढ़ियों की तम कारा,
भाव गगन में हुआ अभ्युदय नव्य तुम्हारा!
नव युग का आलोक लोक में दिशि-दिशि छाया,
भारतेन्दु, है अमर तुम्हारे यश की काया!
किरण-किरण में तरुण चेतना का दव पाकर,
जला जीर्ण पतझर, उतर आया कुसुमाकर।
आन्दोलित हो गरज उठा साहित्य-महार्णव,
चूम रहा था झूम तुम्हारी ज्योत्स्ना अभिनव !
उर-उर में कमनीय कला का कलरव भरकर,
आये तुम जागरण-चरण हे कान्त कलाधर।

x x x x

फैली है सब ओर तुम्हारी ही यह राका,
चलता है सब ओर तुम्हारा ही अब साका।

गीत

सुपक्व स्वर्ण शस्य से
दिगंत भूतिमान है !
प्रबुद्ध सख्य-चेतना
रसार्द्र प्राण-प्राण है !

नहा उठी दिशा-दिशा
नयी प्रकाश-धार में ;
निमज्जिता समष्टि आज
है विकास ज्वार में !

हिमाद्रि की पुकार पर
हिमाद्रि बन बढ़े सभी,
अराति चीन-शीर्ष पर
हिमाद्रि बन पड़े सभी !

स्वदेश हो प्रबुद्ध
रक्तदान माँगने लगा,
अजेय प्राण-प्राण में
वसन्त जागने लगा !

कल्कि

आन्दोलित, उच्छ्वसित, स्फीत जन-मन का सागर,
गरज रहा है रोषभरा विद्रोह - भयंकर।
उठतीं विप्लव-भरी प्रलय-प्लावन की लहरें,
घेर घेर घनघोर क्रान्ति की विद्युत घहरें।
नियति नग्न-सी नृत्यपरा-परविर्तन पल-पल,
बरस रहे विध्वंस, मरण, रण क्षण-क्षण बादल।
श्वसित मरुत उनचास, बुझे उडुचय, शशि, दिनकर,
काँप रहे ग्रह-पिंड, विकल ब्रह्मांड चराचर।
उल्कालोकित अशनि-अशन अंबर के पथ पर,
उतर रहे हैं कल्कि, हुताशन-हय पर भास्वर।
वीक्षण विकट अराल काल-गति-अगति-विधायक,
रोम-रोम से छूट रहे किरणों के सायक।
कालकूट-कटु धूमकेतु-सी असि ले कर में,
जगा रहे भय-भीति अनय के निष्ठुर उर में।
खंड-खंड साम्राज्यवाद के दुर्गम भूधर,
टूट-टूट गिर रहे पाप के गढ़ धरती पर।
शोषण के सब यन्त्र-तन्त्र शासन के सारे,
उलट रहे हैं - लुटे स्वार्थ-साधक पथ हारे।
राजनीति के दस्यु अर्थ-क्रव्याद भयानक,
माँग रहे हैं शरण छोड़ ललना-आपानक।
भय-भ्रान्त अंगना-अंग से लिपट लुटेरे,

पूछ रहे हैं त्रस्त-कहाँ सब सैनिक मेरे ?
बिखर रहे परमाणु विपर्यय हैं कण- कण में,
विष-स्फोट हो रहा तमोमय जग-जीवन में।
बदल रही है पाप-ताप मय जग की सत्ता,
जागेगी फिर सत्य धर्म की प्रकृत महत्ता।
उतर रहे खिंच देव पीड़ितों की आहों से,
दीन जनों की दुसह कराहों की राहों से।
उनका ही रव दलित विश्व जनरव बन छाया,
उनका ही स्वर कोटि-कोटि कंठों ने गाया।
फैलेगी फिर नई धर्म की ज्योति धरा पर,
भोगेंगे सब साम्य, सख्य, स्वातन्त्र्य निरन्तर।
नवयुग का आह्वान गूँजता है दिशि-दिशि में,
आयी नवनिर्माण-चरण ऊषा इस निशि में।

विजया

डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह
अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, गया

नेशनल
पब्लिशिंग
हाउस

(425)

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, दिल्ली–११०००६
द्वारा प्रकाशित

मूल्य :

डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ●
तृतीय संस्करण १९७३ ●

पुस्तकालय संस्करण ५.५०
विद्यार्थी संस्करण ३.००

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस,
मौजपुर, शाहदरा, दिल्ली–११००५३
द्वारा मुद्रित

पराम्बा को

जीवन-निर्मात्री परम करुणामयी पुण्यकला
स्वर्गीया जननी
की स्मृति में

भूमिका

डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की 'विजया' देखकर यह विश्वास पुनः दृढ़ हो गया है कि भारतीय काव्य के परम्परागत मूल्यों की सत्ता अभी समाप्त नहीं हुई है। प्रस्तुत कृति जीवन और काव्य के विघटित मूल्यों के संक्रान्ति-काल में एक नई आशा-किरण है। यह काव्य ऐसे समय सामने आ रहा है जबकि भाव, भाषा और छन्द के प्रति घोर अनास्था का वातावरण छाया हुआ है और नयी कविता तथा अकविता के नारे लगाये जा रहे हैं। सब मिलाकर कविता श्रम-साध्य हो गई है उसमें वह भाव प्रवणता नहीं रह गई है जो मानव को कठोर यथार्थ से ऊपर उठाकर रससिक्त कर सकने में समर्थ हो। प्रस्तुत काव्य का महत्व इसीलिए है कि उसमें प्रचलित प्रतिमानों से दूर हटकर काव्य के प्रतिष्ठित मानदण्डों की स्वीकृति है। मैथ्यू आर्नाल्ड ने काव्य के भविष्य को जब महान बताया था तो संभवतः उनकी दृष्टि में काव्य का वह स्वरूप रहा होगा जिसमें मानवता के लिए रागतत्त्व की निधि सुरक्षित हो और जो उसे उसकी सम्पूर्ण शक्तियों को ऊर्ध्वरेता कर सके। २०वीं शताब्दी समग्रह बुद्धि-वाद प्रेरित विद्रोह, अनावस्था और विघटन की शताब्दी है। बुद्धिवाद की चपेट में कोई ऐसा विश्वास नहीं जो हिल न उठा हो, कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं जिनकी सत्ता असंदिग्ध हो और कोई ऐसी परम्परा नहीं जिसके टूटने की कोई आशंका न हो। सम्पूर्ण मानवता इस तथ्य से आक्रांत है कि यही अनास्था, विघटन और संत्रास बना रहा, तो संभवतः उससे वह शक्ति सदा के लिए विलुप्त हो जायेगी, जिस पर आज तक वह इस सृष्टि में अपनी सत्ता पर गर्व करता है। विज्ञान के बढ़ते चरणों ने बुद्धिवाद को जिस रूप में प्रतिष्ठित किया है वह संभवतः मानव की ग्रहण-शक्ति के बहुत आगे है, इसीलिए उससे विनाश की आशंका दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इस विज्ञान को यदि काव्य ने हृदय प्रदान न किया, तो संभवतः मानवता के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और कुछ नहीं

होगा। इस परिवेश में दो प्रकार की साहित्यिक प्रतिक्रियायें सामने आई हैं। साहित्यिक क्षेत्र में एक वर्ग वह है जिसने इस विनाश, संत्रास और विघटन की स्थिति को ही मानव की नियति समझ लिया है। यह वर्ग बोध के उस धरातल पर जागरित है जिसे यथार्थ कहा जाने लगा है। समग्रतः यह वर्ग उस भय को वाणी दे रहा है जो पहले से ही इतना व्याप्त है कि उससे बचने के लिए मानव जाति अब पुनः उस विन्दु पर पहुँचने के लिए आतुर है जिस पर खड़े होकर वह अपने को जीवित और मूल्यवान समझ सके। दूसरा वर्ग वह है जो मानवता पर आये उक्त मूल्य संकट को परास्त करने के लिये मानव में सुप्त उस महान शक्ति को स्वर प्रदान कर रहा है जो जीवन की हताश घटिका में अमृत-मंत्र फूँकने में समर्थ है। डॉ० चन्द्र प्रकाश सिंह इसी दूसरे वर्ग के कवि हैं। क्योंकि वह उस पीढ़ी के कवि हैं जो 'निराला' के साथ आई थी। इस पीढ़ी ने मानव को महत् और समर्थ स्वीकार किया है। मानव में प्रवृत्तिगत् देव-दानव संघर्ष है उसमें देव- प्रवृत्तियों की विजय दिखाना और उसके प्रति आस्था को संस्कारों से बद्धमूल करना प्रस्तुत काव्य के कथानक का स्वर है।

काव्य-परम्परा में मतवादों की कमी नहीं है, पर इतना सर्वमान्य सत्य है कि काव्य-कथ्य जीवन में सत् और असत् के बीच सीमा रेखा खींचने में समर्थ होना चाहिए। इस प्रतिपादन के लिए शुद्ध वैचारिक धरातल भी एक मार्ग है, पर जहाँ ये तथ्य काव्य विशेषतः प्रबन्ध-काव्य के क्रोड में उभरते हैं वहाँ अधिक सशक्त और संवेद्य होते हैं। काव्य में कोरा वैचारिक प्रतिपादन अग्राह्य होने के कारण अपने औचित्य को सिद्ध नहीं कर सकता। अतः कथ्य-संवाहक प्रबन्ध काव्य की प्रतिष्ठा भारतीय साहित्य में सदा से रही है। भारत में जब-जब कवियों के सामने कथ्य के व्यापक एवं सार्ववर्णिक संवाहन की समस्या आई हैं वे पुराणों के आश्रय में गए हैं। प्रस्तुत काव्य में भी कवि ने अपने कथ्य के लिए पुराणाश्रय में जाकर दुर्गा सप्तशती से प्रेरणा का सूत्र ग्रहण किया है। कृति का कथानक मानव मनोवृत्तियों का एक विराट रूपक है। कवि की धारणा है कि वर्तमान युग से इन्द्र-रूपी सत्य पराजित और निर्वासित हो गया है, समस्या यह

है कि अहं और पाखण्ड के राक्षस को मानव-जीवन में किस प्रकार परास्त एवं निरस्त किया जाय। कवि ने इस समस्या का समाधान कथानक के संदर्भ में किया है। मानव में निहित माँ-भगवती की शक्ति ही द्वैतजन्य अहं और पाखण्ड के मधु-कैटभ आदि राक्षसों का हनन कर सकती है। मानव में निहित इसी शक्ति की आराधना से आत्मविश्वास का उदय सम्भव है। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य का रूपक एक ओर कवि की सिद्धहस्त लेखनी और उर्वर प्रतिभा का प्रमाण है तो दूसरी ओर सशक्त-पौराणिक-प्रतीक-चरित्रों के माध्यम से कवि ने इस अकर्मण्यता के युग में आत्म-विश्वास और मानव की अपराजेय शक्ति को उभारने के लिए अनेक मौलिक उद्‌भावनायें की हैं। 'सुरथ' राज्य वर्णन कवि की अपनी मौलिक उद्‌भावना है जो भारतीय जनतंत्र पद्धति को एक बार पुनः रामराज्य की कल्पना के सामने खड़ा कर देती है। इस कृति को देखकर यह विश्वास हो गया है कि प्रबन्ध काव्य की सत्ता अभी असंदिग्ध है और डॉ० सिंह जैसे प्रबन्ध- कवि में वह शक्ति और सामर्थ्य है जो भारतीय काव्य मूल्यों की प्रतिष्ठा कर सके।

आज तलाश तो ऐसे कवि की है जो विशृंखलता और अराजकता के युग में नए सिरे से जीवन के अर्थ और उसके औचित्य का संधान कर सके। डॉ० सिंह ने इसी संधान के औचित्य को स्वीकारा है।

सप्तशती के कथानक में जो गूढ़ योग का प्रतिपादन है, कवि ने अनेक स्थलों पर इसे विशुद्ध काव्य का रूप प्रदान किया है। उदाहरण के लिए-

कमल सुकोमल पदों का करते ही ध्यान,
अन्तर के सुप्त सोम-सूर्य जग जाते हैं।
भर जाता व्योम ज्योति-सृति से निशित,
सोई जड़ दामिनी के नव पंख उग आते हैं।
हृदय कमल में विराजी स्वप्ननायिका के,
घहर - घहर रूप- घन घहराते हैं।

ऊर्ध्वमुखी होके बहती है सदा धारा अंब,

विंदुमालिनी के मधु - सिंधु लहराते हैं।

मातृ-शक्ति की महिमा का अखण्ड राग काव्य का मूल स्वर है, और जिसे शिव-काव्य की संज्ञा दी जाती है वह काव्य इसी धरातल पर उदित होता है। पुराणों में उल्लेख है कि जब देव-दानव युद्ध में भी देव-शक्तियों की विजय हुई उस समय विजय का श्रेय प्राप्त करने के लिए पृथक सभी देव शक्तियों ने आग्रह किया पर वे असफल रहे। उसी समय एक दिव्य नारी का उदय हुआ जिसने स्पष्ट किया कि दानवों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय उन सब की सम्मिलित अंतर्वर्ती शक्ति को ही प्राप्त हो सकता है। यह शक्ति मानव के अन्तस् में व्याप्त उस महीयशी शक्ति का प्रतीक है जिसके बल पर वह 'नहि मानुशात् श्रेष्ठतरं हि कश्चित्' घोषित करने का अधिकारी है। शास्त्रीय दृष्टि से प्रबन्ध काव्य पर विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि देव और दानव शक्तियों का संघर्ष और उसमें देव-शक्तियों की विजय ही प्रबन्ध काव्य का लक्ष्य होना चाहिए। प्रस्तुत काव्य शास्त्रीय दृष्टि से एक शुद्ध प्रमाणित होता है जिसका सामयिक महत्त्व भी है क्योंकि कृति का कथ्य एक ओर आध्यात्मिक स्वर से संबद्ध है तो दूसरी ओर उसमें भौतिक जीवन के अनेक पक्षों का उद्घाटन है। दोनों बिन्दुओं को स्पर्श करने वाली प्रस्तुत काव्य कृति शक्ति-पूजा और भौतिक शक्ति की उदात्त परिकल्पना है-

''सर्व काम दाता है तुम्हारा यह दिव्य ध्यान'' कृति का मूल प्रतिपाद्य है। समग्रतः शक्ति-आराधना का लक्ष्य निम्नलिखित रूप में व्यक्त हुआ है-

बोले देव-'घुमड़ रहे हैं करुणा के घन,
जिन लोचनों में अंब! उन लोचनों की जय?
कल्प लतिका-से बाँटते हैं जो निखिल श्रेय,
वरदे ! वरद उन कंज से करों की जय !
लेते हर आपदा अशेष शरणागतों की,

परम शरण्ये उन पद पंकजों की जय।
पी-पी दैत्य -रक्त-हरते जो सज्जनों का त्रास,
विजये ! तुम्हारे उन दिव्य आयुधों की जय!

प्रस्तुत कृति का कला-पक्ष प्रौढ़ है। डॉ० सिंह ने इस काव्य-कृति से परम्परागत काव्य-रूप और उसके सम्पूर्ण अंगों को परम्परागत शिल्प प्रदान किया है। भाषा में चित्र-प्रस्तुत करने की अपार शक्ति है जो डॉ० सिंह ने भली भाँति पहिचानी है। मुझे कला की दृष्टि से यह कृति सर्वाधिक सफल और श्लाघ्य प्रतीत हुई है। जिनकी आस्था काव्य के परम्परागत प्रतिमानों पर समाप्त हो गई है उन्हें इस कृति को देखकर इस तथ्य से आत्मसात् करना होगा कि-

या दुग्धा पि न दुग्धेव कविदोग्घृभिरन्वहम्।
हृदि नः सन्निधतां सा सूक्ति धेनुः सरस्वती।।

कवियों द्वारा निरन्तर दुही जाकर भी काव्य-गौरूपी सरस्वती अभी अनदुही सी है। नयी पीढ़ी यदि इस तथ्य को स्वीकार कर ले तो उसे कविता का युग समाप्त होता हुआ न दीख पड़ेगा। इस कृति में कविता का युग पुनः अपनी पूरी शक्ति के साथ उदित हुआ है।

'दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां
तपस्विनाम्' और काव्य रसिकों में इस
कृति का आदर होगा, ऐसा मेरा विष्वास है।

मैं कृति की व्यापक सफलता की कामना करता हूँ।

सत्यनारायण सिंह
भू०पू० सूचना प्रसारण और संचार मंत्री
भारत सरकार
राज्यपाल, मध्य-प्रदेश

आत्म-निवेदन

'दुर्गा सप्तशती' भारतीय आर्य-वाङ्.मय की पुण्यतम एवं अन्यतम कृति है। इसका महत्त्व उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता जैसे चरम प्रकर्ष-सम्पन्न ग्रंथों के समकक्ष ही सर्व- मान्य है। जिन आर्य ग्रंथों में वेद के सर्वोच्च सत्य और व्यवहार को सार्वजनीन और सार्ववर्णिक बनाने का कालजयी उपक्रम किया गया है उनमें 'दुर्गासप्तशती' का स्थान उच्चातिउच्च है। यह आख्यान आधिभौतिक, आधिवैदिक एवं आध्यात्मिक सभी स्तरों पर एक समान परम एवं पूर्ण सत्य की सुसमन्वित, व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसमें भक्ति, वेदांत, योग, साधनात्मक मनोविज्ञान एवं लौकिक मनोविज्ञान के सामाजिक एवं वैयक्तिक सभी पक्षों का ऐसा समाहार है जो अपनी समृद्धि और सिद्धि में अनुपम हैं। बड़े-बड़े मर्मज्ञ 'गूँगे के गुड़' की भाँति इसकी महिमा का अन्तर्मुखी आस्वादन ही करते रहे हैं। बहिर्मुखी प्रकाशन उनके द्वारा भी समग्रतः शक्य नहीं हो पाया है। उस कथा को मैंने अपनी वाणी की अक्षमता के परिधान में परिवृत्त करने का प्रयास किया है, यह मेरा दुःसाहस ही है। किन्तु मूक को वाचाल बना देने और पंगु को हिमगिरि के उत्तुंग शृंग पर आरोहण करने की क्षमता प्रदान करने का जिनका सहज करुणामय स्वभाव है उन्हीं पराम्बा की कृपा-कोर की प्रेरणा से मैंने यह 'विजया' काव्य लिखा है। अतएव इसे सुधी साहित्य-जगत के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे संकोच नहीं हो रहा, अपितु आराधना के सात्विक आह्लाद का अनुभव हो रहा है। यह वह देव-मन्दिर की देहली है जहाँ, महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में 'नृप-हेममुद्रा' और 'रंक-वराटिका' सम भाव से स्वीकृत होती हैं। अवश्य, यदि इसमें जगज्जननी के चरण-कमलों के मरंद-गंध का लेश भी समावेश हो पाया होगा, तो बुधजन भी इसे स्वीकार करेंगे। अन्यथा निर्गन्ध सुमन को भी आराध्य के चरणों में समर्पित होने में बाधक कौन हो सका है ?

इस काव्य में अनेक रूपों में परम्परा का साग्रह ग्रहण किया गया है। समसामयिक परिवेश में इसकी उपयुक्तता का तटस्थ मूल्यांकन सम्भव नहीं है, क्योंकि यह 'हंसहि मलिन खल विमल बतकही' का युग है। परम्परा के श्रेष्ठ के नवोत्थान एवं परानुकरण प्रेरित प्रयोग की वात्या के साथ अभियान में क्या श्रेयस्कर है, इसका निर्णय काल ही कर सकेगा।

मेरी काव्य-रचना को भारत सरकार की सर्वोच्च मन्त्रि-परिषद् के वरिष्ठ सदस्य परमोज्ज्वल चारित्र्य एवं साधना सम्पन्न राष्ट्र सेवी माननीय श्री सत्यनारायण सिंह जी के अहैतुक स्नेह से निरन्तर बल मिलता रहा है। इस काव्य की भूमिका भी उन्होंने कृपापूर्वक लिखी है। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

मगध विश्वविद्यालय, गया

२५ सितम्बर १९६९

।। मंगलाचरण ।।

मूलाधार चक्र में अवस्थित तुम्हीं सतत,
करते हो इच्छा, ज्ञान, क्रिया को प्रवर्त्तमान।
विग्रह प्रणव के तुम्हीं हो चिदानंदघन,
योगिजन जिसका सदैव धरते हैं ध्यान।
तत्त्व पाँच, वाणी चार, तीन गुण, तीन काल,
देह-त्रय के परे तुम्हीं हो नित्य क्रियमाण।
वांगमय के परम विधायक विनायक हे!
निज जननी का रस-सिद्ध करो कीर्ति-गान!

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	उपक्रम	439
2.	आद्या	445
3.	महालक्ष्मी	449
4.	महासरस्वती	463
5.	वर-प्राप्ति	487
6.	उपसंहार	490

उपक्रम

थे राजर्षि सुरथ धरती के एकराट् सम्राट्,
चैत्र-वंश अवतंस, प्रथित-यश अप्रतिम शौर्य विराट्।
पालन करते निखिल प्रजा का औरस पुत्र समान,
जन-जन के रक्षण में क्षण-क्षण निरत यथा पवमान।
शस्त्र-शास्त्र दोनों पर उनका था अबाध अधिकार,
शशि-सा शील, प्रताप अनल-सा, रवि-सा तेज अपार।
दिशा-दिशा में उड़ा कीर्ति का उनका केतु महान्,
उनके पुण्य-गीत गाते थे पुलकित नित गीर्वाण।
प्रबल दंडधारी थे यम से वे दुर्द्धर्ष नरेश,
अनय, अधर्म, विधर्म, पाप, छल हुए सकल निःशेष।
निज पुण्यों से वे धरती पर लाये स्वर्ग उतार,
फिर भी सहसा हुआ दैव का उन पर कुटिल प्रहार।
विद्रोही हो गये दूर के देशों के राजन्य,
कोलाध्वंसी उन भूपों का था संगठन अनन्य।

x x x x

समाचार पा छोड़ मंत्रियों पर शासन का भार,
गये नृपति विद्रोह-दमन हित लेकर सैन्य अपार।

x x x x

जम कर उनसे हुआ सुरथ का महा घोर संग्राम,
क्षीण सैन्य-बल था, फिर भी वे जय पा गये प्रकाम।
छिन्न हुआ साम्राज्य सुरथ का लौटे रण में हार,

निज प्रदेश तक ही सीमित था अब उनका अधिकार।
नृप-प्रवास में मिला मंत्रियों को अबाध अवकाश,
कपट-बीज का उनके मन में क्रमशः हुआ विकास।
पुनः नृपति को देख पराजित वे अमात्य दुर्वत्त,
राज्यकोष अपहृत करने को मिलकर हुए प्रवृत्त।
मिली नृपति को मंत्रिवर्ग की दुरभिसंधि की गंध,
सोचा अति प्रतिकूल काल यह, ये कृतघ्न मति-अंध।
यदि इनको दंडित करने का तत्क्षण करूँ उपाय,
हो सकता है जुटा न पाऊँ साधन उचित सहाय।
अतः एक दिन हयारूढ़ हो नृप मृगया के ब्याज,
गये गहन वन को एकाकी तज सब राज-काज।
पर हिंस्र श्वापद-संकुल था दुर्गम वह कान्तार,
जहाँ महामुनि मेधस् करते थे तप - प्रभा प्रसार।
धर्म-मेघ थे वहाँ बरसते अविरत चिति-जल कान्त,
गये सुरथ नृप उस आश्रम में तन-मन अति श्लथ-श्रान्त।
सर्प-मयूर वहाँ करते थे सुख से साथ विहार,
व्याघ्र-मृगादिक का था विस्मयकर सप्रेम सहचार।
गिरि के पाद-प्रान्त में सुस्थित तपोभूमि वह शान्त,
ताप-त्रय पीड़ित धरती का हरती थी सब ध्वान्त।
उन राजर्षि सुरथ का ऋषि ने किया उचित सत्कार,
करते रहे वहाँ रहकर नृप विपिन बीच संचार।
कभी ममत्वाकृष्ट चित्त वे होते निपट अधीर,
त्यक्त राज्य की स्मृति देती थी उनका अन्तर चीर।
व्यथित सोचते निज पुरुषों का अर्जित राज्य विशाल,

क्या दुर्वृत्त भृत्य पायेंगे उसका भार सम्हाल?
मेरा प्रमुख गजेन्द्र सदामद अरिवश में असहाय,
क्षुधित, तृषित, सब भोग-विवर्जित होगा अति निरुपाय।
किया जिसे संचित है मैंने दीर्घ काल सह क्लेश,
कर देंगे व्ययशील सचिव वह राजकोष निःशेष।
चिंतातुर इस भाँति घूमते थे आश्रम के पास,
पड़ा दिखाई वैश्य व्यथाकुल उनको एक उदास।
पूछा नृप ने ''अहो कौन तुम, क्यों हो इतने दीन,
किस पीड़ा ने तुम्हें बनाया है विषण्ण श्रीहीन।
प्रेमपूर्ण नृप की वाणी सुन बोला वह साभार-
''श्रेष्ठ कुलोद्भव मैं समाधि हूँ, हे राजर्षि उदार!
पुत्र, कलत्र और सुहृदों ने अपहृत कर सर्वस्व,
लांछित कर निष्कासित मुझको किया बनाकर निःस्व।
परित्यक्त आत्मीय जनों से आया यहाँ निराश,
फिर भी मन को विकल बनाती उनकी स्मृति की फाँस।
पुत्र-पौत्र हैं मेरे सकुशल स्वजन-वर्ग सक्षेम,
रक्षित हैं क्या मेरे द्वारा संचित हीरक-हेम ?
क्या कलत्र गण अब भी करते हैं मेरी कुछ याद ?
विपिन बीच आया हूँ, तबसे मिला न कुछ संवाद।''
कहा सुरथ ने,- अति विचित्र है वणिक् तुम्हारा वृत्त,
अपमानित भी तुम स्वजनों से हो इतने अनुरक्त।
समझ न सका समाधि ! तुम्हारे मन का यह व्यापार !
बोला वैश्य, देव, अद्भुत है यह निज मन की हार!
निर्मम स्वजनों की चिंता से रहता सतत् अशान्त,

उन्हें भूल कर बना न पाता मानस निज अक्लान्त।
साश्रु किये रहता है मुझको दुर्दम मोहावेग,
उच्छ्वासों में सिर धुनता है उनका दुःसह वियोग।
निपट विवश हूँ देव, बतायें कुछ उपाय-उपचार,''
बोले नृपवर- ऋषि-चरणों में चलकर करें विचार।
जिज्ञासा से प्रेरित दोनों पहुँचे मुनि के पास,
किया प्रणत होकर निज अभिमत उनके निकट प्रकाश।
बोले नृप, भगवन् हम दोनों होकर अति उद्भ्रान्त,
समुपस्थित हैं श्रीचरणों में हरो हृदय का ध्वान्त।
राज्य-कोष की स्मृति से संतत अस्वायत्त है चित्त,
चिर अशान्त रहता है मेरा मानस दुःख-संयुक्त!
निपट अज्ञ-सा मैं रहता हूँ क्षण-क्षण शोक-प्रलीन,
मुझे बनाये रखती है क्यों यह ममता अति दीन?
उसी भाँति ये वैश्य प्रवंचित, लांछित, हृत-सर्वस्व,
निर्वासित होकर स्वजनों से आये हैं हो निःस्व।
फिर भी उन्हीं कलत्र-पुत्र की ममता से आक्रान्त,
निशि-वासर रहता है इनका मानस घोर अशान्त।
जिन विषयों में देखे हमने दोष-क्लेश अनेक,
हाय!उन्हीं के प्रति यह ममता! यह दारुण अविवेक।
बाँध रहा है इस ममत्व के कुलिश-पाश में कौन ?
अन्धकार के महा गर्त में गिरा रहा है कौन ?
क्यों इतना कार्पण्य-क्लैव्य यह, क्यों यह दैन्य अपार,
महाभाग! ले चलें आप इस शोक-सिन्धु के पार।
श्रीचरणों में दैव खींच कर लाया है स्वयमेव,

सहज समर्पित-चित्त शिष्य बन हम प्रपन्न हैं देव!
मुनि बोले- नृप, सब जीवों को है विषयों का ज्ञान,
पृथक् पृथक् विधि से करते हैं वे उनका आदान।
प्राणिवर्ग में कुछ दिवान्ध हैं, रात्रि-अंध कुछ गण्य,
तुल्य-दृष्टि निशि-दिन दोनों में तिमिर-ग्रस्त हैं अन्य।
मनुज मानता है अपने को ज्ञानी किन्तु विशेष,
विषय-ज्ञान से मंडित हैं क्या प्राणी नहीं अशेष ?
जिस इन्द्रिय-संजात ज्ञान पर मानव को अभिमान,
खग-मृग सरी और सृप को भी है वह वैसा ज्ञान।
निद्रा, भय, भोजन, मैथुन में पशु नर में क्या भेद,
विकल एषणा में इनकी ही पाते हैं सब खेद।
मनुज चाहते हैं अपत्य को सानुराग जिस भाँति,
पाने को प्रतिकार स्नेह का ढोते चलते भ्रान्ति।
देखो उसी भाँति खग रह क्षुधा- दलित भी दीन,
कण-संग्रह कर निज शावों को सेते ममता-लीन।
हैं जो विवेक से मंडित और जिन्हें हम मानते हैं यहाँ ज्ञानी।
वे ममतावृत मोह के गर्त्त में नित्य यहाँ गिरते सब प्राणी।
है कुछ भी न विचित्र, स्व-चित्त का वित्त हरा करती हैं भवानी।
ऐन्द्रिय राग के वेग दुरंत से मोहती हैं सब का मन मानी।।
वे हरि की बन माया महा सृजती हैं चराचर विश्व की काया।
होकर के परितुष्ट वही सजतीं जन के हित मुक्ति अमाया।
विद्या सनातनी वे ही परा रचती जग-बंधन की घन-छाया।
विश्वमोहिनी शुद्धा शरण्या शिवा शिवदा वही हैं महामाया।।
बोले नृप-''हैं कौन महामाया, क्या उनके कार्य?

उनका आविर्भाव-हेतु क्या है बतलावें आर्य?
उनका रूप, स्वभाव, समुद्भव कहें सहित विस्तार,
उत्कंठित हैं हम सुनने को हे द्विजवर्य उदार!''
बोले ऋषिवर- ''नित्या हैं वे ओत-प्रोत अशेष'',
विश्वातीता, विश्ववेदसा, विश्वमयी निःशेष।
फिर भी उनकी समुत्पत्ति के नृपति निमित्त अनेक-
देव-कार्य-संपादन अथवा रक्षण जन की टेक।
भक्त-भीति-भंजन हित लेती हैं जब वे अवतार,
करती हैं दुर्वृत्त दुर्जनों का क्षय, विविध प्रकार-
उत्पन्ना कह कर तव पूजित होती हैं जगदम्ब,
हर लेती हैं स्मरण-मात्र से जन के क्लेश-कदम्ब।
श्रुति-भूषण बनते हैं उनके दिव्य-चरित्र अनूप,
तुम्हें सुनाऊँगा मैं वे ही अघमर्षण हे भूप!''

आद्या

जब कल्पान्त हुआ एकार्णव हुई निखिल यह सृष्टि,
संवर्तक मेघों ने की अति प्रलयकारिणी वृष्टि।
निगल गया जल के गुण रस को तेज-तत्व हो पीन,
और पवन ने किया तेज-गुण रूप तत्व को क्षीण।
और अन्त में पवन-तत्व को निगल गया आकाश,
शेष रहा अव्यक्त प्रकृति का केवल यहाँ विलास।
वाणी, मन, गुण, महत्तत्व सब होकर द्रुत स्थितिहीन,
प्राण, बुद्धि, देवता लोकयुत हुए उसी में लीन
वही योगमाया हैं जिनका आश्रय ले भगवान्।
सोये अपने शेष-शयन पर हुआ कल्प-अवसान!
पुनः सिसृक्षा का जब जागा उनमें ज्योतिर्भाव,
नाभि-कमल से हुआ विधाता का नव आविर्भाव।
आदिदेव वे दीर्घकाल तक करते रहे विचार,
कौन सहायक, कैसे होगा यह प्रपंच-विस्तार।
विष्णु-कर्ण-मल से उत्थित हो दानव दो विकराल,
इसी समय विधि के वध के हित उद्यत हुए अराल।
विधि ने देखा तमस्तत्व ही था सम्मुख साकार,
मधु-कैटभ के द्वैत रूप का लेकर दृश्याधार।
संकट लख यह, किया समाहित जगदम्बा का ध्यान,
हरि के नेत्रों में निद्रा बन था जिनका संस्थान।
उद्भव-रक्षा - प्रलयकारिणी विश्वेश्वरी अशेष,

हरि निद्रा रूपा अतुला कारुण्यमूर्ति निःशेष।
विधि ने विगलित उर से उनके चरणों का धर ध्यान,
श्रुति-सहोदरा निज वाणी से संस्तव किया महान्।
''तुम स्वाहा हो, तुम्हीं स्वधा हो, वषट्कार श्रुति-सार,
स्वरात्मिका तुम, सुधा, अक्षरा, नित्या, ज्योति अपार।
मात्रात्रयरूपिणी तुम्हीं हो परिव्याप्त सर्वत्र,
तुम्हीं अर्धमात्रा हो चिर अनुच्चार्य है अत्र।
सावित्री हो तुम्हीं, तुम्हीं हो जननी परा प्रकाम,
धारण करती तुम्हीं, तुम्हीं हो सृजती यह भव-धाम।
करुणामयि ! पालित होता है तुम से ही यह विश्व,
नाम-रूप खोकर मिटता है तुम में ही हो निःस्व।
सृष्टिमयी हो, स्थितिरूपा हो, प्रलयमयी तुम एक,
जगन्मयी ! धारण करती हो क्षण-क्षण रूप अनेक।
तुम्हीं महाविद्या हो देती परम ज्ञान का दान,
और महामाया बन करतीं जग में मोह-विधान।
तुम्हीं महामेधा हो, तुम हो ध्यान-अध्यान महान,
तुम्हीं महादेवी हो, तुम हो देवि! परम गीर्वाण।
जननि ! तुम्हीं त्रैगुण्यसर्जिका आद्या प्रकृति विराट,
काल, स्वभाव, कर्म हो, धृति हो तुम सब की सम्राट।
कालरात्रि हो महारात्रि हो, मोहरात्रि तुम घोर,
श्री, ह्री, धी तुम बोध लक्षणा, जिनका ओर न छोर!
पुष्टि-तुष्टि हो, शान्ति-क्षान्ति हो, लज्जा लोक-ललाम,
तुम खंगिनी, शूलिनी, गदिनी चक्रधरा अभिराम!
चाप बाण ले, परिघ-भुशुंडी धारण कर तुम अंब,

शरणागत के, आर्तजनों के हरतीं क्लेश-कदंब।
तुम्हीं सौम्य हो, सौम्यतरा हो, सौम्यतमा चिति-रूप,
एक परम शिव ही लख पाते वह सौंदर्य अनूप।
श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम से भी श्रेष्ठ अनन्य,
निखिल सृष्टि की अंब ! तुम्हीं हो परा ईश्वरी धन्य।
सत् हो किंवा, असत्, चर-अचर जो कुछ भी संवेद्य,
सब की शक्ति-सार तव संस्तव कैसे हो अनवद्य।
सुप्त तुम्हारी योगशक्ति-वश स्वयं विष्णु भगवान्,
देवि ! तुम्हारे संस्तव का हो कैसे शक्य विधान।
हरि का, हर का, मेरा तुमने सिरजा रूपाकार,
कौन रच सके जननि ! तुम्हारे संस्तव का संभार।
विपुल उदार प्रभावों से चिर-अभिनंदित जगदम्ब,
मधु-कैटभ का दुराधर्ष भय हरो, हरो अविलम्ब।
हरि को जागृत करो, संवरो निद्रा का विस्तार,
असुर-द्वय के निधन हेतु तुम करो उचित उपचार।
विधि की वाणी सुन आद्या की करुणा जगी अपार,
हरि के दृग, मुख, वक्ष, बाहु से हुईं त्वरित साकार।
मुक्त योगनिद्रा से जागृत हुए विष्णु तत्काल,
देखा सम्मुख मधु-कैटभ को दुर्जय भीम विशाल।
उद्यत थे विधि को ग्रसने को वे दोनों मुख खोल,
कंपित था उनके गर्जन से अर्णव सहित खगोल।
हरि को लख कर रोष-भयावह हुए और वे वाम,
पंच सहस्र वर्ष तक उनसे किया युद्ध अविराम।
हरि के कर से मरे न फिर भी वे दोनों विक्रान्त,

सहसा उनकी मति में उपजा महामोह का ध्वान्त।
बोले हरि से ''हम प्रसन्न हैं, माँगो कुछ वरदान,
पाई हमने युद्ध क्षेत्र में तुष्टि अभीष्ट महान।''
हरि बोले -''तो मेरे कर से करो मृत्यु स्वीकार,
युद्ध भूमि में अन्य याचना है अयुक्त निःसार।''
हुए प्रवंचित असुर कहा,''हरि! हमको यह भी मान्य,
चिर अजेय हैं असुर-द्वय हम अटल-प्रतिज्ञ वदान्य।
करो शुष्क, जलहीन भूमि पर वध किन्तु उपाय-''
'ऐसा ही हो' कहकर उद्यत हुए त्वरित उरुगाय।
''आओ अर्पित करो ऊरुओं को अपना उरु भाग,
प्रस्तुत है सन्निकट वीर! यह निर्जल क्षेत्र अपार।''
पुनः विमोहित हरि जंघा पर शयित हुए वे शान्त,
काटे हरि ने शीश चक्र से, विधि को किया अक्लान्त।
''सर्जन का अवरोध था आदिम द्वैत तमोमय ज्योति-प्रहारी,
देख जिसे भयभीत हुए अज कुंठित थी रचना-सृति सारी।
जागी अदभ्र दया उनकी बन सुप्ति जो थीं हरि-नेत्र बिहारी,
काष्ठा-कला, अकला-सकला महाकालिका वे ही शरण्य हमारी।''
सुना सुरथ ने अति विस्मित हो यह निगूढ़ आख्यान,
मुनि के चरणों में अर्पित की प्रणति सभक्ति महान्।
कहा, सुनायें अन्य महामाया के चरित्र अनन्य,
हम प्रपन्न हैं शिष्य - भाव से हे ऋषिराज वरेण्य!

महालक्ष्मी

बोले ऋषि–''नृप सुनो दूसरी लीला–चरित उदार,
लिया महामाया ने, जग हित जब अनुपम अवतार–''
'दानव–अधिप महिषासुर के विक्रम से,
धर्षित था दिव और विधृता वसुन्धरा।
इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर हुए सत्ताहीन,
दीन, प्रभाक्षीण हुई जीवन – परम्परा।
अनिल, अनल, जल, स्थल, सूर्य, सोम, व्योम,
काल, लोकपाल का प्रभाव भाव बिसरा।
यज्ञभाग–वंचित विकल चित्त देववृंद,
सेते थे सभीत मेरु पर्वत की कंदरा।
''देख महिषासुर का विकट भृकुटि–भंग,
चन्द्र होते उष्ण, रवि बुझ–बुझ जाते थे।
शीत होता पावक, विनीत होते हिमवान,
भीत पवमान निज गति भूल जाते थे।
अंगुली उठी कि क्षुब्ध सिंधु जड़ीभूत हुआ,
अभ्रंलिह गिरि–शृंग भूमि चूम जाते थे।
व्योम–विटप के उडुचय झर – झर जाते,
काले मेघ घुमड़ अंगारे बरसाते थे।
''चरण–प्रहार से विमानीकृत ऐरावत,
शुंड कर उन्नत पुकार करता था घोर।
बार–बार व्याकुल असुर–ऊरुओं के भार,

उच्चैःश्रव पाता था न निज यातना का छोर।
वैजयंत दीन था असुर - वैजयन्ती लिए,
अमरावती थी श्रीविहीन करुणा-विभोर।
नंदन-विपिन भी विवर्ण था वसंत ब्याज,
शोकोच्छ्वास व्याप्त था समीर-मिस सब ओर।।
देव-ललनाओं की कलित कलकंठता से,
मोदित हो निज श्रम-भार हरता था वह।
उर्वशी के नूपुर -रणन किंकिणी-क्वणन से,
प्रमत्त देवधुनि-धार तिरता था वह।
कल्पलतिका की कलियों के कल तल्प पर,
भोगासक्त निज भूरि भाग धरता था वह।
रोहिताश्व-वाहित बलाहकों के रथ पर,
सौरभ के नभ में विहार करता था वह।
अत्याचार - पीड़ित दलित देव मंडली ने,
साथ ले धरा को हरि के समीप की पुकार-
भूतवाद और भोगवाद के निदाघ बीच,
सूखी जा रही है प्रभु! धर्म-जान्ह्वी की धार।
इंद्रिय-प्रसक्त दानवों की विषयैषणा के,
विष से मुमूर्षु धरती है आज निराधार।
मानवता मृत और सुरता असत् हुई,
उमड़ा असुरता का सब ओर पारावार।
बोले हरि 'तपक्षीण हो रहे हो तुम, और-
तपबल वर्द्धित है असुर - समाज का।
अधिकृत सब अधिभूत शक्तियों को कर,

छीन लिया पद है उन्होंने देवराज का।
संगठनहीन सत् की समस्त शक्तियाँ हैं,
पाया अधिकार तम ने है मनोराज का।
केन्द्रीभूत जिसमें तुम्हारा अधिदैव बल,
होगा वही रक्षक तुम्हारी आज लाज का।
यह कह सहसा सरोष कमलापति की,
बंक हुई भृकुटि विकट- मुख हो गया।
प्रकटा हुताशन सा तेज दीप्त आनन से,
देख हर-नेत्र ज्वाल भी प्रदीप्त हो गया।
प्रकटा प्रचंड देव-विग्रहों का तेज फिर,
प्रलय - पयोनिधि में आया ज्वार ज्यों नया।
देखते ही देखते निखिल तेज-पुंज वह,
मिल कोटि चण्डकर-सा प्रचण्ड हो गया।
संगठित देव-शक्तियों का ज्योति-चक्र वह,
काल-सा अराल रोदसी में घूमने लगा।
दग्ध होके सकल दिशायें अति स्तब्ध हुईं,
क्षुब्ध नभ ज्वालामुखियाँ उगलने लगा।
फाड़ कर तम का विराट् शून्य ओक वह,
धूमकेतुओं का महालोक पलने लगा।
अंबर-अवनि के अनंत अवकाश बीच,
मंदर-सा वह तेजकूट चलने लगा।
सर्व देव - देह - समुद्भूत महातेज वह,
मिलकर अविलम्ब बन गया नारी रूप।
शंकर के तेज से गठित मुख-मंडल की,

आभा परिव्याप्त लोक-लोक में हुई अनूप।
विष्णु-तेज-दुःसह प्रचण्ड भुजदण्ड बने,
यम-तेज ही था कुंतलों में श्याम-घन रूप।
शशि, शक्र, वरुण, धरा के तेज द्वारा बने,
स्तन,कटि, ऊरु औ नितंब सब ज्योति स्तूप।।
नासिका, चरण, कर-पद की अँगुलियों में,
था धनद, धाता, अंशुमान वसुओं का तेज।
नयन-त्रितय में विराजमान पावक को,
देखा था दलित देवद्वेषी असुरों का ओज।
सांध्य-श्री अमल भ्रू-युगल में बसी थी, और-
विलसित दंत - पंक्ति में था प्राजापत्य तेज।
अनिल श्रवण में बसा था, अंग-अंग में था,
समवेत देव-मण्डली का राशि-राशि तेज।
असुर - दलित देवगण वह रूप देख,
पुलकित उच्च हर्षनाद करने लगे।
भक्तियुक्त लेकर विभूतियाँ स्वकीय सब,
सेवा में विविध उपहार धरने लगे।
खींच निज शूल से अमोघ शूल अन्य जब,
श्रद्धावान शंकर प्रदान करने लगे।
तब निज चक्र से निकाल वक्रतर चक्र,
हरि दे शिवा को भव - भय हरने लगे।।
शंख लाये वरुण, हुताशन ज्वलित शक्ति,
और पवमान ने प्रदान किया धनु-वाण।
गिरि-गर्व - गौरव-प्रहारी स्वीय वज्र देके,

कृतकृत्य हो रहे थे भावनत मघवान।
दण्ड से भी अपने महाप्रचण्ड दण्ड देके,
माँगा यमराज ने असुर-संकटों से त्राण।
पाश देके वरुण, विधाता अक्षमाल देके,
रत वंदना में हुए काल दे महा कृपाण।
विश्वकर्मा ने दिए विविध अस्त्र-शस्त्र और,
कवच अभेद्य मृत्यु - दशन महाकुठार।
वाहनार्थ सिंह हिमवान ने प्रदान किया,
काँपीं सुन गर्जन दिशायें दीर्ण हार-हार।
इंदु-रेखा - मंडित मुकुट लसा शीश पर,
रवि-किरणों ने रोम-रोम में किया प्रसार।
इस भाँति नंदित, सुरों से अभिनंदित हो,
देवी ने विकट अट्टहास किया बार-बार।
क्षुब्ध उस नाद के महांकुश से ताड़ित हो,
गज- सा गगन करता था आर्त्त चीत्कार।
काँपे कोल, कच्छप, फणीन्द्र, लोकपाल सब,
वेपथुमती थी धरती नितान्त निराधार।
काँप उठे पर्वत, समुद्र, सर्व लोक-ओक,
क्षण-क्षण में था प्रतिशब्द उठता अपार।
देवों के प्रमत्त पीन जय-जयकार बीच,
डूबा जा रहा था दानवों का दीन हाहाकार।।

x x x x

देख के त्रिलोक सब क्षुब्ध महिषासुर ने,
पूछा असुरों से यह क्षोभ कैसा, कैसी क्रान्ति?

लेके निज सैन्य फिर दौड़ा उसी ओर जहाँ,
सिंहवाहिनी थीं हरतीं समस्त ध्वान्त-भ्रान्ति।
देखा वहाँ जाके ज्योति विग्रह अनन्यतम,
पूरित दिशाओं में अमेय पुंज-पुंज कान्ति।
लिखित किरीट शशि का था उच्च अंबर में,
पादाक्रान्त नत धरती को हो रही थी श्रान्ति।
उनकी अनन्त बाहुओं से नभ छादित था,
शस्त्रों में अनन्त-कोटि रवि थे प्रकाशमान।
दीपित दिशायें थीं शरों की कोटि अर्चियों में,
वैश्वानर कोटि-कोटि थे वहाँ विभासमान।
ज्या-स्वन ध्वनित था, घिरे से आ रहे थे घोर,
घन कोटि-कोटि प्रलयान्त के ज्यों गर्जमान।
विकट भृकुटि से प्रसूत कोटि-कोटि काल,
कोपित असुर-सैन्य ओर थे प्रधावमान।
ज्योति से चकित विथकित असुराधिप ने,
सैन्य को दिया निदेश-बढ़के करो प्रहार।
सेनापति चिक्षुर बढ़ा विपुल मन्यु भर,
चामर को बार-बार लिये नर्दमान बारबार।
दौड़ा असिलोमा साथ में था पंच कोटि सैन्य,
साथ में उदग्र के रथों का दल था अपार।
कोटि कोटि अश्वों, की गजों की चतुरंगिणी ने,
घेर अंबिका को बरसाई अस्त्र-शस्त्र धार।
देख असुरों का अन्ध साहस, सहास अंब,
लेके चन्द्रहास दैत्य-सैन्य काटने लगीं।

फूल-सा उतार लिया चिक्षुर का शीश और,
हूल-हूल शूल युद्ध-भूमि पाटने लगीं।
पामर-सा चामर को मारा एक बाण से ही,
हय-गज-सैन्य ध्वस्त भूमि चाटने लगी।
पीस दिया उग्र हो उदग्र को गदा से निज,
त्रस्त असुरों को भ्रान्ति-भीति बाँटने लगी।।
ऊर्जित प्रवृद्ध-कोप केशरी के विक्रम से,
दहकी अशेष रोदसी पलाश-वन सी।
जिह्वा लेलिहान, शोणिताक्त दंत-राजि घोर,
गति अनिरुद्ध थी युगान्त के पवन-सी।
हिमगिरि - गह्वर - भयावह विवृत मुख,
ज्वलित सटा थीं पिंग प्रलयान्त घन सी।
पी-पी रक्त, खा-खा के चबा के असुरों के चय,
रणभूमि उसने बना दी पितृवन-सी।
देख निज सैन्य का विनाश महिषासुर ने,
देवी पर द्विगुणित वेग से किया प्रहार।
लक्ष्य कर उसका उपक्रम सहज जगी,
मुख पर मंगला के स्मिति-ज्योति शशि-सार।
श्वासों से प्रकट हुए उनकी अगण्य गण,
दुःसह था प्रतिपक्षियों को उनका प्रहार।
दलमल डाला पल में सकल दैत्य-दल,
बरसा धरा पर असुर-रक्त धारासार।
आयुध अनेक महिषासुर ने छोड़े,
शक्ति, पट्टिश-परश्वध, त्रिशूल, गदा, भिंदिपाल।

तान धनु, वाण बरसाये सृष्टि-ध्वंसकारी,
लहराये व्योम में श्वसित कोटि काल-व्याल।
निगरण करता गगन को, महाम्बुधि-सा,
छा गया तिमिर-ओघ गर्जित महोर्मिमाल।
क्षण में परन्तु चंडिका ने मात्र वीक्षण से,
भंग किया प्रहरण-आवरण विकराल।
देखे असुरेन्द्र ने विफल सब अस्त्र-शस्त्र,
क्रुद्ध अति धारण किया महिष रूप घोर।
वेगपूर्ण घूर्णन से धरती विदीर्ण हुई,
पुच्छाहत क्षुब्ध अब्धि में प्रलीन ओर-छोर।
श्रृंग-घात-विच्युत घनों के व्रात खंड-खंड,
तूल-तुल्य बिखर गये असंख्य ठौर-ठौर।
श्वास के अनिल से अचल उड़ चले, और-
व्याप्त हुआ व्योम बीच घर्षण-जनित रोर।
तुंड से, खुरों से, और पुच्छघात से प्रचंड,
आहत किया सकल अंबिका का गण-व्यूह।
दौड़ पड़ा दृप्त केशरी के वध हेतु फिर,
तान धुत श्रृंग भरता प्रलयंकारी हूह।
देख उसे उद्धत अतीव चंडिका के उर,
उत्थित हुआ अशेष रोष-त्वेष का समूह।
जागी भृकुटी में भंगिमा की महिमा-तरंग,
ध्वंस करने के हेतु दर्प उसका दुरूह।
बाँध लिया क्षिप्त कर पाश महिषासुर को,
किन्तु लिया उसने त्वरित सिंह-रूप धार।

मारने को उसके उठाई करवाल, त्योंही,
धर लिया खंगपाणि पुरुष का रूपाकार।
बिद्ध किया देवी ने प्रखर सायकों से क्षिप्र,
गजरूप धार वह गर्जित था बार- बार।
खींचा निज शुंड में जकड़ कर केशरी को,
काटा वह कर अम्बिका ने असि का प्रहार।
धार कर दुराधर्ष महिष-स्वरूप फिर,
भुवन समस्त वह त्रस्त करने लगा।
स्पंदमान हो उठा तृतीय नेत्र चंडिका का,
शंकित थे विधि प्रलयानल जगा, जगा।
किन्तु उस क्रोध का निरोध किया अम्बिका ने,
सहज दयार्द्र - भाव अंतस् में उमगा।
मेरे शस्त्रघात से पुनीत हों मरे असुर,
पावें शुद्धगति ऊर्ध्वलोकदायी सुभगा।
धार यह उर में, सुधार शूल घोर,
डाली महिषासुर की ओर दृष्टि अरुणा।
बोलीं-'मूढ़ ! कुछ क्षण और कर गर्जन तू,
देख आरही है वह तेरी मृत्यु तरुणा।
करलूँ तनिक मधु-पान तू ठहर अभी,
प्रवाहित होगी तेरे शोणित की वरुणा।
पी-पी तृप्त-दृप्त होगा योगिनी समूह मेरा,
गूँजेगी सुरों की जय-ध्वनि ज्योति-सरणा।
यह कह उछलीं चढ़ीं दुरंत दैत्य पर,
पैरों से दबा के कंठ किया घोर शूल-घात।

रोक दिया अम्बिका ने उसको स्व-विक्रम से,
अन्य रूप धार उठा जब वह पादाक्रान्त।
आधा निकला हुआ भी युद्ध करता ही रहा,
उठी घोररूपा-असि कोटि विद्युदौघ-स्नात।
काटा शीश कीट-सा मसल महिषासुर को,
भाग चला हाहाकार करता असुर-व्रात।
अक्ष, स्रक्, परशु, गदा, कुलिश, बाण, धनु,
दंड, शक्ति, शूल, पाश, चक्र, चर्म, करवाल।
घंटा, पान-पात्र, पद्म, शंख, कुंडिका-वलित,
अष्टादश हस्त दैत्य-शोणित सने थे लाल।
समुदित रोम-रोम में थे कोटि-कोटि रवि,
नयन-त्रयी में जागरित था प्रलय-ज्वाल।
बाँया पद माँ का सिंह-पृष्ठ पर शोभित था,
बाँया महिषासुर के कंठ पर विकराल।

x x x x

विकच सहस्र -दल सी खिलीं दिशायें सब,
दूर हुआ बाधा का, विपत्तियों का तम-तोम।
हर्षित थे सकल महर्षि मुक्तत्रास देव,
गा रहे थे जगदंबिका के पुण्य कीर्ति-स्तोम।
व्यजन डुला रहे थे पुलिकत पवमान,
आतपत्र धारण किये खड़ा हुआ था सोम।
प्रमुदित हो रहा था रोम-रोम मेदिनी का,
बरसा रहा था गीत-गंध के प्रसून व्योम।
लेके साथ देव-व्यूह और अप्सरा-समूह,

लुंठित चरण में था विगलित देवराज।
कोई कहता था 'पाहि पाहि'कोई'त्राहि-त्राहि,
कोई सजाता था अर्चना के नव-नव साज।
कोई हो चकोर पीता पद-नख-चन्द्रिका को,
कोई कीर बन गाता नाम-गुण के समाज।
सघन घनाघनों के वादित मृदंग मन्द्र,
बरसा रहे थे सुधा-सिंधु जल-बिंदु व्याज।
बोले देव घुमड़ रहे हैं करुणा के घन,
जिन लोचनों में अंब! उन लोचनों की जय।
कल्पलतिका-से बाँटते हैं जो निखिल श्रेय,
वरदे ? वरद उन कंज से करों की जय ।
लेते हर आपदा-अशेष शरणागतों की,
परम शरण्ये ? उन पद-पंकजों की जय।
पी-पी दैत्य रक्त हरते जो सज्जनों का त्रास,
विजये ! तुम्हारे उन दिव्य आयुधों की जय।
चन्द्रानने!त्रिनयने!जय-जय बालातपअरुणे अभिराम।
जय तरुणेन्दुकिरीटधारिणी जगदम्बे!सिद्धिदे प्रकाम।
चिंतामणि-चय दक्षिण कर में ले वितरित करती अविराम,
भक्त-हेतु निज वाम-पाणि में अभयधरे!वत्सले!प्रणाम!
तृषिता नित दानव शोणित की जिनकी असि दामिनि सी निशिता,
घनसार-घटा बन छा रही है जिनकी मृदु हास-छटा वितता।
स्रवती रहती सुतस्नेह-सनी जिनकी पयोधर सदा अमृता,
कृतस्थाणुस्थला चिरमोक्षफला हों सुमंगला वे चिन्दानंदलता।
कमल-सुकोमल पदों का करते ही ध्यान,

अन्तर के सुप्त सोम-सूर्य जग जाते हैं।
भर जाता व्योम ज्योति - सृति से निशित,
सोई जड़ दामिनी के नव पंख उग आते हैं।
हृदय - कमल में विराजी स्वप्ननायिका के,
घहर घहर रूप - घन घहराते हैं।
उर्ध्वमुखी होके बहती है सदाधारा अंब,
बिन्दुमालिनी के मधु-सिन्धु लहराते हैं।
स्पंदहीन कंदशायिता सुषुप्त चेतना को,
अंबिके ! तुम्हारी कृपा-किरण जगाती है।
विदलित कर तम के विषम पंच पर्व,
कंज प्रति कंज विकसाती सरसाती है।
भास्वर बनाती पूर्ण अक्षर-स्वरूप दिव्य,
स्वर और लय के जलद बरसाती है।
कर देती सहज समक्ष सब तत्व, और,
रोधिनी के वज्रद्वार खोल छवि छाती है।
दहराख्य हृदय - कमल में तुम्हारी अंब,
चिति-निकुरंब छटा-घटा घिरती है जब।
कोटि-कोटि बालारुण होते हैं उदित,
सहस्रार की सकल पर्णिकायें खिलती हैं तब।
झरते हैं रस के प्रपात, पीके मधु वह,
जन को तुम्हारी ही अहंता मिलती है सब।
ध्वस्त होता मन में बसा हुआ महिष,
भूरि क्लेशों का प्रपंच रंच शेष रहता है कब?
शत - कोटि - अनल - प्रदीप्त हृदयारविंद,

विकसित होता पा के रूप का किरण-दान।
प्रज्ज्वलित होते हैं शरीर के सकल-रन्ध्र,
उत्थित हो योगिनी सजाती ऊर्ध्व अभियान।
होते हैं निमेष से रहित विगलित दृग,
शिवाकाश बीच पाती बाह्य दृष्टि अवसान।
लीन होती सीमा, प्राप्त होता अंब भूमा-पद,
होता है अनुग्रह तुम्हारा जब क्रियमाण।
मूल, नाभि, उर, तालु-मूल भ्रू-युगल बीच,
पंकज-दलों में वर्णरूप है विभासमान।
झरती सतत सहस्रार से सुधा जो, वह,
विग्रह तुम्हारा उससे है सिक्त शोभमान।
भूषित निखिल लिपिमालिका से अंग-अंग,
देख कोटि पूर्णचन्द्र होते हैं गलित मान।
शब्दब्रह्मरूपिणी-तुरीया परा जगदम्ब,
सर्वकामदाता है तुम्हारा यह दिव्य ध्यान।
वेद मूल जिसका प्रणव कोष अक्षय है,
जो है बीजवर्णरूपी-शिव ज्योतियों से कान्त।
जो है बीजमन्त्रों से प्रसूत चिदानन्दघन,
वेष्ठित निखिल आवरण-शक्तियों से शान्त।
सेवा करती हैं सब सिद्धियाँ जहाँ प्रणत,
अष्ट मातृकाओं मुद्राशक्तियों सहित दान्त।
संसृति के उसी ज्योतिचक्र के त्रिकोण बीच,
निर्विकल्प शिवसह शोभित तुम्हीं अक्लान्त।
नन्दन के सुमनों से समर्चित चर्चित थीं करुणा-निकुरंबा।
संस्तव से सुरों के वे दयार्द्र अतीव हुईं परम जगदम्बा,

बोल उठीं ''स्व अभीष्ट कहो तुम मैं वरदायिका तुष्टि-कदम्बा।
हूँ जग के दुख-मोचन हेतु प्रतिश्रुता मैं परम अवलम्बा।
बोले देव-''दीन हैं, दुखी हैं, परितप्त हैं जो,
तुम को पुकारते हैं आर्त अति बार-बार।
दुर्जनों से, अधम खलों से हो प्रताड़ित जो,
अवलंबहीन हैं नितान्त निःस्व निराधार।
अशरणशरणे! पड़े हैं पाद-प्रान्त में जो,
'शरण शरण' कहते हैं सदा हार - हार।
उनको उबार लो, उबार लो त्वरित अम्ब,
विफल न होने दो विकल उनकी पुकार।
मार के दैत्य दुरन्त प्रमत्त को लोक विशोक बना दिये सारे।
शस्त्र-प्रहार से पापियों के गण भी तुमने क्षण में सब तारे।
मूर्तिमती करुणे ! शरणागत-रक्षक की तुम टेक हो धारे।
स्नेहस्नुतस्तने! हैं सुत को पद-पल्लव ही अवलम्ब तुम्हारे।
बाधा अशेष करो निःशेष, रहो जन-रक्षण का प्रण धारे।
ध्वस्त करो निज शस्त्र समूह से चंडिके! शत्रु सव्यूह हमारे।
देती रहो परित्राण उसे जग के मग में थक के जो पुकारे।
हारे हुओं का सहारा बनो स्व-अनुग्रह की रही ज्योति पसारे।
सुना सुरथ नृप ने देवी का लोकोत्तर आख्यान,
अन्तर्लीन हुए पुलकित हो धर अम्बा का ध्यान।
मेधस् ऋषि भी समाधिस्थ से रहे मौन कुछ काल,
पुनः गूँथने लगे अम्बिका की सुचरित मणिमाल।

महा सरस्वती

(१)

ऋषि- जल, थल, अम्बर तीनों के थे शुंभराज सम्राट,
अनुज निशुंभ सतत अनुगत था जिसका शौर्य विराट्,
स्वर्ग जीत कर वैजयन्त में दोनों रहे विराज,
निर्वासित हो इन्द्र, भ्रष्टश्री भटक रहे स-समाज।
सूर्य, चन्द्र, यम, धनद सभी की सत्ता कर स्वायत्त,
भोग रहे थे यज्ञ-भाग भी वे असुरेन्द्र प्रमत्त।
पंचभूत से महत्तत्व तक था उनका अधिकार,
धर्षित थी सब प्रकृति देवगण करते हाहाकार।
पवन, अग्नि, घन, विद्युत सबका करते थे वे काम,
अणु-परमाणु सभी पर उनका शासन था अविराम।
प्रलयंकर उनके आयुध थे, वेग अदभ्र अनन्त,
क्षण में निर्जन मरु बन सकता जग का विकच वसंत।
विचर रहे थे शत-शत उनके गुप्त दूत सर्वत्र,
छिपते थे जब जहाँ देवगण जाते थे तत्र।
हिमगिरि के सर्वोच्च शिखर पर सुरगण हो समवेत,
थे पुकारते जगदम्बा को -कृपादृष्टि अभिप्रेत।
विलख रही थी यह धरणी भी रूप धेनु का धार,
करुणाक्रन्दन से विगलित हों काँपा गगन अपार।
देवगण- जगदम्बे ! हे शिवे ! नमन है तुमको बारम्बार,
शरणागत हम दीन आर्त्तजन तुमको रहे पुकार!

रौद्र ! नित्ये ! गौरि ! धात्रि हे ! भद्रे तुम्हें प्रणाम!
ज्योत्स्नामयि!हे चन्द्ररूपिणी शत-शत सतत प्रणाम।
वृद्धि-सिद्धिरूपिणी नैऋती, शर्वाणी विख्यात,
कल्याणी हे लक्ष्मि ! हमारा स्वीकृत हो प्रणिपात।
अतिशय सौम्य, रौद्र भी अतिशय, उभय रूप तुम धार,
आद्ये! सदा वहन करती हो निखिल सृष्टि का भार।
सब भूतों में तुम्हीं विष्णुमायारूपा विख्यात,
स्वीकृत हो हे अंब ! पदों में हम सबका प्रणिपात।
सब भूतों की तुम्हीं चेतना, प्रज्ञा तुम्हीं प्रकाम,
निद्रा, क्षुधा, शक्ति, तृष्णा हो, क्षान्ति, शान्ति, अभिराम!
छाया, श्रद्धा, वृत्ति, दया हो, श्री ह्री हो अभिजात।
स्वीकृत हो हे देवि! पदों में हम सबका प्रणिपात!
जन्म-कर्म से, नाम-रूप से असंसक्त तुम एक-
धारण करती हो स्वेच्छा से लीला-रूप-अनेक-
प्रत्यगात्मिके ! परात्परे ! तुम अकल, अनीह, अजात,
स्वीकारो, हो हे अंब ! पदों में हम सबका प्रणिपात!
क्षेत्रज्ञा सर्वाध्यक्षा साक्षीभूता अव्यक्त,
आत्ममूल हो, मूल प्रकृति तुम व्यक्त सतत अविभक्त,
परानन्दसंदोह आगमाम्नायमहार्णव-स्नात,
स्वीकरो जगदम्ब ! पदों में हम सबका प्रणिपात!
हे दुर्गे ! हे दुर्गनाशिनी ! दुर्गनियंत्री धन्य,
शरणागतवत्सले जननि ! जय करुणा दया अनन्य।
दानवोत्थ-बाधा से संप्रति पीड़ित हैं सब लोक,
धर्म ग्लानि से बाधित जीवन,हरो विषम दुःख-शोक!

इस विपत्ति में अम्ब ! तुम्हीं हो एकमात्र अवलम्ब,
हमें त्राण दो, परित्राण दो, अब मत करो विलम्ब।

ऋषि- इसी समय पार्वती पधारीं करने गंगा-स्नान,
पूछा देवों से, करते हो तुम किसका आह्वान?
यह सुन उनके-काय कोष से निकलीं शिवा प्रकाम,
शरच्चन्द्रशोभना सच्चिदानन्दमयी अभिराम।
बोलीं-ये देवता पराजित असुरों से हैं दीन,
इनकी चित्तवृत्ति मेरे ही चरणों में है लीन।'
यह कह वे कौशिकी सिंह पर हुईं सहज आसीन,
ज्योतिर्मय हो उठा शिखर वह ज्यों उदयाद्रि नवीन।
तभी वहाँ पहुँचे असुरों के चण्ड-मुण्ड द्वय दूत,
जगदम्बा का रूप देख कर विस्मय हुआ अकूत।
लौट गये उलटे पग दोनों असुरराज के पास,
अति विनीत होकर निज अभिमत उनसे किया प्रकाश।

चंड-मुण्ड- हिमगिरि पर देखी है हमने नारी एक अनूप,
लोकत्रय में, कालत्रय में अनुपमेय वह रूप,

मुण्ड- ज्योतित है सौन्दर्य-शिखा से हिमगिरि शिखर अशेष,
भासमान है दिशा-दिशा में वह लावण्य विशेष।

चंड- असुरर्षभ ! हैं निखिल सृष्टि के प्राप्त आपको रत्न,
चरम रत्न है वही जगत्पति, उसको वरो सयत्न!

शुंभ- भेजो तुम सुग्रीव दूत को सत्वर उसके पास
हम प्रणयार्थी हैं कह उसको लावे यहाँ सहास।
वरे मुझे अथवा निशुंभ को स्वेच्छा के अनुसार,
स्वागतार्थ उस रूपराशि के हम दोनों तैयार।

ऋषि- लेकर यह संदेश शुंभ का दूत त्वरित हिमगिरि पर आया,
ज्योतिस्नात कलधौत-सानु पर समासीन देवी को पाया।
अर्द्धचन्द्र का मुकुट शीश पर, देह-लता दिनकर-निभ द्यौतित,
देखप्रभा-मण्डल वह अनुपम था सुग्रीव दूत हत-स्तंभित।
फिर होकर प्रकृतिस्थ अंबिका के चरणों में शीश नवाया,
श्लक्षण मधुरवाणी में उनको निज प्रभु का संदेश सुनाया।

सुग्रीव- असुरराज हैं शुंभ लोकत्रय के परमेश्वर,
अव्याहत आदेश मानते जिनका सुरवर।
मैं हूँ उनका दूत देवि, सेवा में प्रस्तुत,
लाया हूँ संदेश उन्हीं का सुनें स्नेहयुत!
कहा उन्होंने-''लोकत्रय पर मेरा है अधिकार,
अनुगत हैं सब देव, भोगता मैं यज्ञों का सार।
निखिल सृष्टि के श्रेष्ठ रत्न जो वे सब मेरे आज,
द्विरद-रत्न ऐरावत मेरे गृह में रहा विराज।
कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रव आदिक अन्य रत्न विख्यात,
मुझे समर्पित किये इन्द्र ने स्वयं सहित प्रणिपात।
विधि का हंस-विमान छीनकर करता मुक्त विहार,
नत धनपति से महा पद्मनिधि का पाया उपहार।
अक्षयश्री कल केसर-मंडित जो हैं चिर अम्लान,
माला किंजल्किनी उदधि ने की है विनत प्रदान।
कांचनस्रावी वरुण-छत्र से सेवित मेरा भाल,
उत्क्रांतिदा शक्ति भी अपनी मुझे दे गया काल।
प्राप्त प्रजापति का स्यंदन वह जिसकी गति अनिरुद्ध,
दिये वह्नि ने मुझे वस्त्र दो जो चिर-ज्वलन विशुद्ध।

छीना है निशुंभ ने बल से बली वरुण का पाश,
अब्धिजात जो अन्य रत्न सब वे भी उसके पास।
देवि, सृष्टि में तुम्हीं अन्यतम नारी-रत्न वदान्य,
वरो मुझे अथवा निशुंभ को जो हो तुमको मान्य।
देश-देश में दिशा-दिशा में जितने रत्न प्रसिद्ध,
हुए आज तक उनके भोक्ता केवल हम यह सिद्ध।''

ऋषि- सुन यह विश्वाश्रया अंबिका कुछ मुसकाईं,
ज्योत्स्ना की घन-घटा घुमड़ हिमगिरि पर छाई।
विद्युच्छवि से हुईं दिशा-विदिशायें भास्वर,
वाणी में बज उठे मुरज के मेघमंद्र स्वर।

जगदंबा- इन्द्रजयी हैं शुंभ त्रिलोकी के अधिकारी,
रत्न उन्हें सब प्राप्त गिरा यह सत्य तुम्हारी।
उनके अनुज निशुंभ प्रथित सुर-दर्प-प्रहारी,
किन्तु पुराकृत दूत प्रतिज्ञा सुनो हमारी।
युद्ध भूमि में जीत मुझे जो विमद करेगा,
मेरा प्रतिभट वही मुझे बढ़ वरण करेगा।

सुग्रीव- गर्वित होकर देवि, करो मत तुम इस भाँति प्रलाप,
अपरिमेय है असुरराज का विक्रम-शौर्य-प्रताप।
उनके सम्मुख टिके युद्ध में किस नर में उत्साह,
एकाकी नारी हो तुमने पकड़ी उल्टी राह।
उनके लघु सैनिक कर सकते देव-सैन्य का नाश,
अप्रतिभट वे प्रणय-प्रवण तुम चलो शुंभ के पास।
यदि न करोगी सविनय उनकी आज्ञा का सम्मान,
केश खींचकर ले जायेंगे वे असुरेन्द्र महान।

जगदंबा- शुंभ-निशुंभ सहज अप्रतिभट उनका शौर्य अपार,
किन्तु दूत यह पलट न सकती मेरे प्रण की धार।
कह दो अपने प्रभु से जाकर तुम मेरा संदेश,
मैं प्रस्तुत हूँ, करें उन्हें जो हो करणीय विशेष।

(२)

ऋषि- शुंभ को जाकर के जब दूत ने अम्बिका की सब बात सुनाई।
खौल उठा प्रलयाब्धि-सा भीषण दारुण मेघ-घटा घहराई।
वह्नि भी शीत हुआ भयभीत हो क्षीण हो पीतता भानु ने पाई,
कंपित अम्बर से नखतावलि विच्युत हो धरती पर आई।
क्रुद्ध धूम्रलोचन को उसने सत्वर दिया निदेश-
लाओ उस नारी को मेरे पास खींचकर केश।
यदि उसके रक्षक हों कोई देव, यक्ष, गंधर्व,
रण में वध कर उनका कर दो गर्व सकल तुम खर्व!
गया धूम्रलोचन सेना ले साठ सहस्र विशाल,
कंपमान होती थी धरती लख वह गति विकराल।
जगदंबा को देख गर्व से उसने कहा पुकार-
दानवेन्द्र की सेवा के हित हो जाओ तैयार।
देवि, अवज्ञा इस आज्ञा की है गुरुतम अपराध,
केश खींचते हुए तुम्हें हम ले जायेंगे बाँध।
जगदंबा- दानवेन्द्र के सेनापति तुम साथ सैन्य अतिकाय,
क्या कर सकती निपट अकेली नारी मैं असहाय।
ऋषि- यह कह कर ध्यानस्थ हुईं क्षण भर कल्याणी,
आनन से प्रस्फुटित हुई सहसा 'हुँ' वाणी।

ज्वालमाल बन वही शब्द अंबर तक छाया,
भस्मशेष हो गई दैत्य की तत्क्षण काया।
शेष सैन्य दल क्रुद्ध केसरी ने सब खाया,
मूर्त्त धर्म का रूप जिसे मुनियों ने गाया।
धूम्रलोचन के निधन की बात,
शुंभ को सुनकर लगा आघात।
चंड-मुंड प्रचंड को दे आदेश
दिया, लाओ खींचकर तुम अम्बिका के केश।
गये दोनों साथ था उनके असंख्यक सैन्य,
हुआ विस्मय अम्बिका का देख उन्हें अदैन्य।

चंड- चलो अब भी देवि, छोड़ो व्यर्थ का अभिमान,
क्षमा कर देंगे हमारे असुरराज महान!
अन्यथा ले जायेंगे हम तुम्हें बल से आज,
केश-कर्षण से तुम्हारी जायगी लुट लाज।

ऋषि- 'ले चलो' कह अंबिका की हुई भृकुटी अराल,
प्रकट उससे हुईं काली हाथ में करबाल।
शुष्कमांसा द्वीपि का था कृति का परिधान,
ललनशीला जीभ, भीषण वदन का व्यादान।
भूषिता नरमुण्डमाला ज्वलित-अति-त्वेष,
थी निमग्रा रक्तनयना गगन-दारण घोष।

काली- पराविद्ये ! मैं तुम्हारा ज्वलित सात्विक क्रोध,
क्या मुझे करणीय सत्वर, करें मेरा बोध।

जगदम्बा- असुरद्वय प्रस्तुत यहाँ ये मूर्त राग-द्वेष,
चाहते हैं युद्ध, इनको करो तुम निःशेष।

मुण्ड- महामायाविनी नारी तुम न अबला मात्र,
युद्ध के इस यज्ञ में उपयुक्त बलि का पात्र।

काली- अरे बलिपशु! ठहर कर ले कल्पना कुछ और,
एक क्षण में बनेगा खल काल का तू कौर।

ऋषि- असुरद्वय ने किये काली पर प्रचंड प्रहार,
कुलिश, पट्टिश, परशु, तोमर, चक्र के दुर्वार।
पी गईं सब असुर-आयुध कालिका विकराल,
प्रज्ज्वलित था मुख,जगी ज्यों कोटि दिनकर-माल।
व्यात्त आनन, वज्र दृष्ट्रायें प्रलय-सी घोर,
चूर्ण होते जहाँ गज, हय, पदाति अथोर।
हो रहा था विकट दशनों से रुधिर का स्राव,
किया भक्षण असुरदल को, विपिन को ज्यों दाव।
चंड-मुंड प्रचंड का वध कर पहन कर मुण्डमाला,
अम्बिका के निकट पहुँची वे महाकाली कराला।

काली- गये दोनों असुर यमपुर को समेत समाज,
शुंभ और निशुंभ को मारो, स्वयं तुम आज।

जगदम्बा- धन्य हो हे देवि ! चामुंडा तुम्हारा नाम,
विदित होगा विश्व में अब से प्रणत-विश्राम।

(३)

ऋषि- व्योम-सी विशाल असुराधिप की राजसभा,
बैठे थे असंख्य उडु-सोम से असुर-धीर।
मंचतति उच्च व्योमगंगा सी वितत अति,
बीच में था सिंहासन जटित हिरण्य-हीर।

कांचन का स्राव करता था जो सतत, वह-
छत्र शोभमान श्वेत जलद-सा था गंभीर।
अष्टबाहु शुंभ था विराजित अमित-द्युति,
व्यजन डुला रहा था परवश-सा था समीर।।
चंड-मुंड के वध का लाया दूत एक संवाद,
सुनकर उस आसुर समाज में व्यापा गहन विषाद।

निशुंभ- देव ! हिमगिरि से अभी आया यहाँ सन्देश,
चंड-मुंड मरे, हुआ सब असुर-दल निःशेष।

ऋषि- हुआ विस्मित शुंभ सुनकर अनुज की यह बात,
प्रज्ज्वलित हो उठा दारुण क्रोध से सब गात।

शुंभ- दैत्य-दल पर बंधु है यह अति विषम आघात,
मात्र नारी एक कर सकती न यह उत्पात।
मुझे लगता देवगण ने किया कुछ षड्यन्त्र,

निशुंभ- यदि यही है तो सफल होगा न उनका तन्त्र।

शुंभ- त्वरित हो कटिबद्ध अपना सैन्य निखिल अपार,
सब उदायुध दैत्य-सेनप हों अभी तैयार।
कंबु सेनाध्यक्ष चौरासी प्रचंड प्रसिद्ध,
कोटिवीर्य पचास हों, सौ धौम्रकुल सन्नद्ध।
मौर्य, दौहृद और कालक कालकेय समस्त,
त्वरित सज्जित हो चलें, हो देवजाति निरस्त।

निशुंभ- आज सेनापति रहेगा रक्तबीज कराल,

शुंभ- ठीक है यह, वह अकेला ही सुरों का काल।

ऋषि- चला आसुर सैन्य धरती कँपी बारम्बार,
भर गया सब ओर भीषण अन्धकार अपार।

देखकर आया हुआ वह असुर - दल निःसीम,
किया दुर्गा ने धनुर्ज्या-घोष अतिशय भीम।
क्रुद्ध उनका केहरी भी क्षुब्ध उठा दहाड़,
स्तब्ध दानव-दल विकल था, डोल उठे पहाड़।
चंडिका ने किया घंटा-नाद घन-गंभीर,
उग्र गर्जन महाकाली का गया नभ चीर।
सुना बृहत् निनाद दानव-वाहिनी ने घोर,
रोष में भर, घेर दुर्गा को लिया सब ओर।
देवगण यह देखते थे दृश्य प्रलय-कराल,
हुईं जागृत शक्तियाँ उनकी सभी तत्काल।
अज, महेश्वर, विष्णु, गुह की शक्तियाँ तद्रूप,
हुईं उत्थित वेष, बल, वाहन सकल अनुरूप।
चंडिका ने किया जब ध्यानस्थ हो आह्वान,
धूम्रजटित हुए वहाँ अवतरित हर ईशान।

दुर्गा- देव ! जाकर असुरगण से कहें यह संदेश,
शुंभ और निशुंभ से अनुरोध करें विशेष।
जायँ वे पाताल को दल-बल सहित तत्काल,
छोड़ दें यह इन्द्र का अधिकार-राज्य विशाल।
और भोगें देव अपना वैध मख का भाग,
अन्यथा होगा अनुष्ठित युद्ध का जो याग।
खायेंगी उसमें शिवायें विकट उनका माँस,
पियेंगी छक-छक रुधिर सब तृप्ति तक सोल्लास।

शिव- देवि ! तुम्हारा दूतकर्म मैं करता हूँ स्वीकार,
शिवदूती कह स्मरण करेगा तुमको यह संसार।

किन्तु असुर ये चरम तमोगुण की हैं दारुण मूर्ति,
अहं-बुद्धि से हत है इनकी सहज चेतना-स्फूर्ति।
ये न सुनेंगे कभी तुम्हारा यह हितकर सन्देश,
संवर्द्धित ही होगा उनका इससे द्वेष-त्वेष।
रक्तबीज है असुर सैन्य का नायक बना विशेष,
उसमें केन्द्रित है समिष्ट का अभिनिवेश निःशेष।
यह निशुंभ अस्मिता मूर्त्त है, शुंभ अविद्या घोर,
हैं आच्छन्न दिशा-विदिशायें जिसका ओर न छोर।
मनोमयी सत्ता के स्तर तक है इनका अधिकार,
उसके आगे देवि, तुम्हारी चित का पूर्ण प्रसार।
तुम सत् चित् आनंदमयी हो सर्वस्याद्या सिद्ध,
अरूपोरुरूपा त्रिगुणात्मा अपराजित प्रसिद्ध।
वध कर इन असुरों का सत्वर करो लोक-परित्राण,
हैं सहकार हेतु प्रस्तुत ये सुर-शक्तियाँ महान्।

ब्रह्माणी- देवि, आई हंस पर चढ़ पार कर आकाश,
करूँगी कौशाम्भ से मैं असुरदल का नाश।

माहेश्वरी- मैं त्रिशूलधारिणी वृषारूढ़ा वरदानी,
अहिवलया शशिकलाभूषिता प्रकट भवानी।
असुरक्षय के हेतु मुझे तुम उद्यत जानो,

वैष्णवी- प्रकट विष्णु की शक्ति मुझे भी तुम पहचानों।
शंख, चक्र ले गदा, शार्ङ्.ग गरुड़ोपरि संस्थित,
दानवदल का ध्वंस करूँगी रण में प्रस्थित।

कौमारी- मैं मयूरवाहना देव-सेनापति जाया,
शक्तिहस्त मैं ध्वस्त करूँगी आसुरी माया।

ऐन्द्री- मैं गजेन्द्र-संस्थिता वज्रहस्ता कल्याणी,
दृग सहस्र से भस्म करूँगी दानव मानी।
वाराही- यज्ञ-वाराही धरा को दाढ़ पर निज धार,
प्राप्त हूँ मैं असुर भय से मुक्त संसार।
नारसिंही- वज्रदंष्ट्रायें विकट मुख नख अराल कठोर,
पान करती मैं असुर-उर फाड़ रुधिर अछोर।
शिव- ये तुम्हारी ही विभिन्न विभूतियाँ निष्पन्न,
धर्म-रक्षण हेतु सुर-समुदाय देख विपन्न।
जगदम्बा-
देव! यदि करेंगे आपका प्रस्ताव अस्वीकार,
ध्वस्त होगा, तो असुरगण का अशेष प्रसार।
ऋषि- शंकर ने जाके समझाया असुरेश्वर को,
काल प्रतिकूल आ गया है कर लो विचार।
जागृत है ऋत, क्रियमाण है सतत सत्,
सह न सकेगी यह भूमि और अत्याचार।
स्वकुल कुशल यदि इष्ट है तुम्हें तो द्रुत,
छोड़ो युद्ध-वृत्ति और छोड़ो स्वर्ग-अधिकार।
जाकर पाताल में निवास करो गर्व छोड़,
अन्यथा मिटेगा सब दैत्य-वंश का प्रसार।
शंकर का शान्ति - अभियान असफल हुआ,
क्रुद्ध हुआ शुंभ रक्तबीज को दिया निदेश।
मारो अंबिका को करो भक्षण- सहायकों का,
शिशु भी सुरों का किसी लोक में रहे न शेष।
युद्ध में उपस्थित विलोक असुराधिप को,

अंबिका ने द्रुत दैत्य-व्यूह में किया प्रवेश।
वेध दिया वाणों से शरीर सब दानवों का,
प्लावित था रुधिर-प्रवाह से रण-प्रदेश।
इसी बीच आ गया सामने रक्त बीज दुर्दान्त।
उसकी उग्र जल्पना से थे धरा-गगन आक्रान्त।

रक्तबीज- मैं रक्तबीज हूँ अजय असुर-सेनानी!
मेरे तन का प्रत्येक रुधिर-कण अक्षय,
धरती पर गिरकर बनता दानव दुर्जय,
संकुलित रक्तबीजों से धरती हतभय।
मैं चिर अजेय! मैं अपरिमेय सेनानी,

ऋषि- ऐन्द्री ने पवि से रक्तबीज को मारा।
बह चली महागिरि से ज्यों गैरिक धारा।
वैष्णवी चक्र से आहत हो वह दानव,
लगता था घन अटवी में ज्यों दीपित दव।
वाराही ने उस पर असि निशित प्रहारी,
कौमारी ने निज शक्ति फेंक कर मारी।
ईशानी ने जब शूल हृदय में हूला,
वह असुर युद्ध-वन में पलाश-सा फूला।
घावों से बहकर रक्त-बिन्दु जो आये,
वे दुर्जय दानव बन धरती पर छाये।
हो गया जगत् उन असुरों से परिपूरित,
थे भयाक्रान्त सब देव, दिशायें कंपित।

जगदंबा- (चामुण्डा से)
चामुण्डे ! अब तुम अपना मुख फैलाओ,

क्षत-प्रवहित इसका रक्त सकल पी जाओ।
निःशेष रक्त हो जायेगा जब दानव,
मैं पी लूँगी इसके प्राणों का आसव।

ऋषि- चंडी ने यह कह उस पर शूल चलाया,
शत क्षत-विक्षत हो गई असुर की काया।
पीती जाती थीं स्रवित रक्त चामुण्डा,
खाती थीं उत्थित असुर अशेष प्रचंडा।
दुर्गा ने किये प्रहार निरन्तर शतशः,
नीरक्त हो गया रक्तबीज वह क्रमशः।
निष्प्राण देख उसको धरती पर शायित,
सब विकल देवता हुए हर्ष-विह्वल स्थित।
मातृकाओं ने किया छक असुर - शोणित्-पान,
मत्त होकर किया उद्धत नृत्य-गान महान।

ऋषि- पी रक्तबीज का रक्त परम परितृप्ता,
योगिनियाँ हर्ष-विभोर गा उठीं दृप्ता।

योगिनियों का गीत-

योगिनियाँ हैं हम असुर - रक्त की प्यासी!
जो धर्म - विमुख, जो लोक - शत्रु खल दुर्जन,
शिश्नोदर - पर अपकार - निरत जो क्षण - क्षण।
पीने का उनका रक्त हमारा है प्रण !
हम धर्मवृद्धि की हैं संतत अभिलाषी !
खल रक्तबीज है गया युद्ध में मारा,
लेकर दैत्यों का प्रमुख सैन्य अब सारा।

बरसाता मेघों-सा बाणों की धारा,
प्रकुपित निशुंभ अति उद्धत विजयोल्लासी !
संदष्ट-ओष्ठ वह शुंभ बढ़ा आता है,
गर्जन से अम्बर काँप काँप जाता है।
दुर्गा पर खरतर शर-समूह छाता हैं,
वे लगती हैं घन-संकुल चन्द्रकला-सी!
योगिनियाँ हैं हम असुर-रक्त की प्यासी!
रवि-चन्द्र-वन्हिमय नयन त्रितय की ज्वाला,
देखो दुर्गा की जागृत हुई कराला,
है विफल असुर-दल-चालित आयुध-माला,
लो पहुँचा उनके निकट शुंभ सुरत्रासी!
योगिनियाँ हैं हम असुर-रक्त की प्यासी!

शुंभ- ठहर क्षण भर अम्बिके ! तेरा निकट अवसान,
बाण ये मेरे हरेंगे त्वरित तेरे प्राण।

जगदम्बा- शूर को शोभा न देता जल्पना का जाल,
शौर्य को अपने प्रमाणित कर तनिक इस काल।

ऋषि- अतुल आठों भुजाओं से व्याप्त कर आकाश,
लगा करने शुंभ फिर-फिर अट्टहास-विलास।
अम्बिका ने शंख फूँका ले त्रिशूल कराल,
बेध डाला उस असुर का वक्ष विपुल विशाल।
गिरा मूर्छित धरा पर हिमगिरि-शिखर-सा ध्वस्त,
हुआ प्राप्त निशुंभ सम्मुख, असुर-गण थे त्रस्त।
दस सहस्र बाहें रच उसने किये चक्र के घात,
घायल था केशरी, समाच्छादित अम्बा का गात।

क्रुद्ध हुईं चंडिका प्रलय-हित उद्यत यथा कृतान्त,
काट दिये सह-चक्र असुर के बाहु समूल नितान्त।
बेध दिया फिर विषम शूल से उसका उर गम्भीर,
निकला उससे महाबली अति असुर अन्य रणधीर,
कहता हुआ-''ठहर मायाविनि!ठहर-ठहर क्षण एक,
काटा उसका भी शिर द्वयता हरता यथा विवेक।
किया केशरी ने असुरों का विपुल सैन्य-संहार,
क्रुद्ध मातृकाओं ने डाला शेष असुर-दल मार।
इसी बीच चेतना प्राप्त कर जाग उठा फिर शुंभ,
देखा अपना सैन्य निहत सब वध को प्राप्त निशुंभ।
कही अम्बिका से प्रकुपित हो उसने तीखी बात-

शुंभ- अन्यों के बल से गर्वोद्धत तू करती उत्पात।

जगदम्बा- मैं निष्केवल एक, जगत् में मेरे सिवा न अन्य,
सकल मातृकायें ये मेरी ही विभूतियाँ धन्य।
अपनी ही ऐश्वर्य - शक्ति से मैं बहुरूपा आज,
देख, समेट रही मैं अपना अनेकत्व का साज।

ऋषि- यह कहते ही हुईं शक्तियाँ श्री-विग्रह में लीन,
युद्ध-भूमि में रहीं अकेली दुर्गा ज्योतिर्पीन।

शुंभ- देखें अब ये देव सहायक तेरा मेरा युद्ध

जगदम्बा- असुर! दिखा तू मुझको अपना विक्रम जगत्प्रसिद्ध।

शुंभ- शर वर्षा से अभी बुझेगी तेरी जीवन-ज्योति,

जगदम्बा- दर्पजन्य छलना है तेरी यह सब आत्म-प्रतीति !

ऋषि- किया शुंभ ने जगदम्बा पर अविरत शस्त्र-प्रहार।
चिर अविजेय अमोघ प्रलयकर अप्रतिहत दुर्वार।

काट दिये वे सब देवी ने बाण छोड़कर एक,
छोड़े फिर उसने दुर्गा पर बाण अमोघ अनेक।

शुंभ- प्राण-पवन पीने को उद्यत हैं ये विषधर व्याल।

जगदम्बा- देख यहाँ यह गरुड़ सिद्ध जो सब व्यालों का काल।

ऋषि- विफल हो गया सकल शुंभ का दारुण शस्त्राघात,
सती हृदय पर गिर कर जैसे कामी-वचन-प्रपात।
दौड़ पड़ा ले अतः खंग वह जगदम्बा की ओर,
कालानल सा ज्वलित जल्पना-रत प्रलपति अति घोर।

शुंभ- देख अरी, शतचन्द्र खंग यह ज्योतित प्रलय-कृशानु।

जगदम्बा- अभी छिन्न करती मैं इसको जैसे तम को भानु।

ऋषि- इन्द्र-दर्प हर काटी उसकी दुर्गा ने करवाल।
श्वसित सर्प सा बोला दुर्जय दानव वह विकराल।

शुंभ- चढ़कर मैं अपने स्यंदन पर जाता हूँ आकाश,
सहज मनोगति निज शस्त्रों से करने तेरा नाश।

ऋषि- रथ पर चढ़कर लगा विचरने नभ में दैत्य दुरंत,
फूटी अम्बा के अधरों पर मधु-स्मिति ज्योति अनन्त।

जगदंबा- स्यंदन, अश्व, सारथी तेरे होते हैं सब ध्वस्त,
मेरे धनु से देख हुई खल ! यह कालाग्नि समुत्थ।

ऋषि- छोड़ा दुर्गा ने दानव पर ज्वलन-ज्वार सा बाण,
रथ, हय सब जल गये, उड़ गये त्वरित सूत के प्राण।
विरथ अकेले असुरराज के शस्त्र हुए शत खंड,
मुष्टि-प्रहार किये देवी पर उसने परम प्रचंड।
देवी के तल के प्रहार से क्षण भर रहा अचेत,
हो सचेत द्रुत गया गगन को जगदम्बिका समेत।

यथा अविद्या परा चेतना से करती है युद्ध,
असुरराज वह लड़ा उसी विधि जगदंबा से क्रुद्ध।
दीर्घकाल तक रहा प्रवर्त्तित वह दारुण संग्राम,
सिद्ध और मुनिगण विस्मय से थे अभिभूत तमाम।
पटक धरा पर उसे अम्बिका ने निज लिया त्रिशूल,
बेध दिया उर उस दानव का बरसे नभ से फूल।
स्वस्थ हो गईं सकल दिशायें, था सब जगत प्रसन्न,
सुर, नर, ऋषि, मुनि, सिद्ध, यक्ष, चर-अचर, सकल अविपन्न।

(५)

ऋषि- निहत हुआ असुरेन्द्र विगत-भय निखिल चराचर,
चले अग्नि को किये अग्र सब सिद्ध, यक्ष, सुर।
पहुँचे, थीं अम्बिका जहाँ मृगपति-आसीना,
पड़ी हुई थी शुंभ-देह पदतल अति दीना।
मंडित था शत बाल-रवि-द्युति से विकचानन,
विद्युद्दाम अनंत विगतश्री होते लख तन।
अर्द्धचन्द्र का मुकुट शीश पर चिर नव शोभित,
शरच्चन्द्रिका सदृश बरसता था मधुमय स्मित।
कन्यायें असि-निशित लिए हाथों में भास्वर,
पार्श्वगता थीं-उठा हुआ था वरदायक कर।
'पाहि पाहि'कर प्रणत चरण-तल में सब प्राणी,
अर्पित करने लगे स्तवनमय अपनी वाणी।
अग्नि- जय-जय अंबिके! प्रज्ज्वलित ज्ञान-ज्योति जय!
भस्मशेष द्रुत करो हमारे पाप-ताप-चय,

हविष्कृतों की गिरा भगिनियों-सी पवित्र सहजात,
करती रहतीं व्यक्त तुम्हारे गुणव्रात अवदात!
और प्राप्त होते हैं वे फिर तुमको ही स्वयमेव,
सर्वज्ञे! यज्ञों में भजते तुमको ही सब देव !
हिंसारहित चारु यज्ञों में करते हम आह्वान,
रक्षा के हित देवि! पधारों करो सोमरस-पान।
जगदंबे ! तुम ज्ञेय नेय स्तुतियों के द्वारा,
करते हम आह्वान लोक-हित वहाँ तुम्हारा-
जहाँ दण्ड के योग्य, खलों के निग्रहकारी,
अंबे! सामों से होती अर्चना तुम्हारी।

वरुण- कृपादृष्टि की वृष्टि करे प्लावित जन-जीवन,
भव का दव हो शान्ति का सरसे सावन!

यम- विश्वेश्वरि ! जय विश्वभरणि! अक्षयकरुणा जय !
आर्तिहरणि ! भवसिंधुतरणि ! अशरणशरणा जय !

कुबेर- जननि ! परम धन तुम्हीं खोजते जिसे योगिजन,
बरसो सिद्धि-समृद्धि-वृद्धि-निधि जन पर क्षण-क्षण।

इन्द्र- शरणागत - दीनार्त्त - परित्राता कल्याणी।
बाधा प्रशमित करो, हरो दुःख सकल भवानी।
करें समर्पित प्रणति तुम्हें हम अम्बे ! सायं-प्रात।
अर्पित हों निज बुद्धि, कर्म सब तुमको सायं-प्रात।
करें यज्ञ की हवि हम प्रस्तुत तुमको सायं-प्रात।
अशरणशरणे ! रहो प्राप्त तुम हमको सायं-प्रात।

महर्षिगण- सकल शब्दमय अम्ब तुम्हारा विग्रह चिद्घन,
जग के वांगमय सकल तुम्हारी ही स्तुति पावन।

नाम-रूप ये अखिल तुम्हारे अन्वय नित नव,
सब संकल्प-विकल्प तुम्हारे ही प्रत्यय ध्रुव।
शमित हुए सब अशिव, शिवे ! मंगले ! भवानी।
कैसे संस्तव करें चकित - विथकित है वाणी!

मुनिगण-

उदयाचल पै विकसे रवि-सी जिनके तन की सुषमा सरसै।
अति चारु भुजानि में चारि लसैं वर अंकुस, पास, अभै बरसै।
दृग तीनि में देव-अदेवनि कौ करुना अरु कोप सदा दरसैं।
उनहीं सिवा के पद कंजनि में मति भृंग सी मोहि बसै हरसै।।

सिद्धगण-

ईशत् हास तैं रावरो आनन पूरनचन्द हू की छवि लाजै।
अंग की कान्ति लखे कमनीय न कुन्दन हू कछुवै दुत साजै।
कंज के कोस पै ओस के बिंदुहूँ तै बहुतै नख-ज्योति विराजै।
तो कर की समता करिकै कलपद्रुम हू अति दीन ह्वै राजै।

मानव-

ज्वालन सों जो कराल लसै जननी सो त्रिसूल सबै भय टारै।
दैत्य की रक्त बसा बिलसै जेहि खंग मैं सो मम काज सँवारै।
भीषण जाकर नाद दिसानि कँपाइ अदेवनि तेज सँहारै।
घंटा सोई छन ही छन में जन के सब पाप ओ ताप निवारै।
श्रेय औ मंगल तैं जन की सजिबे की रही सदा बानि तिहारी।
बाधहिं चूरि अभागहिं दूरि बहाइबे की रही कानि तिहारी।
आइ पर्‍यौ पदकंजनि में उर में बिरदावली आनि तिहारी।
हे जगदम्ब ! बिलम्ब बिना चहिये सदया मुसकानि तिहारी।

मागध- बाधायें कर शमित अम्ब! सब अरि संहारो।

निखिल - लोक ईश्वरी ! शरण्ये ! हमें उबारो।

सूत- धन्य है, धन्य है तू जगदम्ब निरन्तर तोहि निवाजिबो भावै।
चारिहू चारि दिसावधि तै जनहेतु घनी करुना उपजावै।
सत्य कौ, सुन्दर कौ, सिव कौ, सब ओर प्रभा भरौ लोक दिखावै।
अन्तर में बसिकै, लसिकै हँसिकै नित भाव कौ स्रोत बहावै।।

आर्त्तजन- जगदम्बे ! जय कृपाविग्रहे। शत-शत तुम्हें प्रणाम।
ओज तेज के लिए देवि! हम करते तुम्हें प्रणाम।
हमको अपनी दिव्य शक्ति से ज्योतित करो अशेष,
शत्रु हमारे इस ज्वाला में जलकर हों निःशेष।

जगदम्बा-(अभय मुद्रा में)
मैं निज जन का योगक्षेम नित वहन करूँगी।
धर्महानि यदि हुई, त्वरित अवतार धरूँगी।
निर्भय हों सब लोक, धर्म की जय है निश्चय।
असत्-अचित् का और अशिव का होगा ही क्षय।।

ऋषि- यह कहकर वे चंडविक्रमा हुईं चंडिका अंतर्धान,
निखिल सृष्टि ने किया कृपामृत में उनके नव अवभृथ स्नान।
भूप! यशोदा-ज्योति-गर्भ से फिर उनका होगा अवतार,
ध्वस्त करेंगी वे दानव-दल अखिल अमंगल अत्याचार।
विंध्यवासिनी के स्वरूप में वे पूजित होंगी सर्वत्र,
निगमागम गायेंगे उनके आशशि-सूर्य पवित्र चरित्र।
अभय करेंगी लोकत्रय को नंदा वे नंदजा अजा,
नंदित होगी उनके अर्चन से विशेष यह निखिल प्रजा।
वैप्रचित्त असुरों से होगी पुनः धरित्री जब आक्रान्त,
असत् अशिव का और अनास्था का फैलेगा दुर्गम ध्वान्त।

भक्षण कर लेंगी असुरों का उग्ररूप चंडिका समिद्ध,
शोणितदशना होगा उनका रक्तदंतिका नाम प्रसिद्ध।
शोणितवसना शोणितवर्णा शोणित-आभरणा अभिराम,
शोणितायुधा शोणितनयना शोणितकेशा ज्योतिर्धाम-
रक्त-क्रान्तियों में समाज की उनका होगा अविर्भाव
अन्य त्रस्त, वैषम्य ध्वस्त कर उतरेंगी वे बन युग-दाव।
फिर जब अनावृष्टि से पीड़ित होगी यह धरती निःशेष,
सौ वर्षों तक यहाँ रहेगा जलाभाव से दारुण क्लेश।
तब सब ऋषि-मुनियों की स्तुतियों से प्रीताअंबिका प्रकाम
प्रकटेंगी सहजा अयोनिजा करुणाकादम्बिनी ललाम।
अपने शत नयनों से डालेंगी संसृति पर दृष्टि सदय,
अतः शताक्षी कह पूजेगा युग-युग उनको मानव-चय।
निज-विग्रह से जीवनदायक शाक करेंगी वे उत्पन्न,
रक्षित होगी उनसे ही यह जीव-सृष्टि दुष्कालापन्न।
उनके नील जलज-नयनों की करुणा से जग होगा स्नात,
शाकंभरी नाम से होंगी तब वे धरती पर विख्यात।
उसी समय फैलेगा जग में दुर्गम का अति दारुण त्रास,
वध कर दानव का जगदंबा सृजन करेंगी नया प्रकाश।
अतः लोक में विश्रुत होगा उनका दुर्गा नाम अनन्य,
जिसका गायन कर,कीर्त्तन कर यह जगतीतल होगा धन्य!
शाकंभरी, शताक्षी, दुर्गा कीर्त्तनीय ये उनके नाम,
दुष्ट-दमन के दमन-शमन के प्रेरक होंगे चिर अभिराम।
जब हिमगिरि-वासी ऋषियों का बाधित होगा धर्माचार,
बढ़ जायेगा असुर खलों का उन पर भीषण अत्याचार-

धर्मक्षेत्र की सीमाओं में घुसकर जब दानव दुर्वृत्त,
नीति, शील, आचार, धर्म की मर्यादा कर देंगे ध्वस्त–
तब फिर वे चंडिका ग्रहण कर भयकर भीमा रूप महान,
भक्षण कर लेंगी असुरों को, ऋषि मुनियों को देंगी त्राण।
फिर जब अकरुण अरुण दैत्य से पीड़ित होगा यह संसार,
जीवन-मूल्यों के विघटन से दानवता होगी साकार।
बाहर-भीतर के अरियों से प्रतिहत होगा सृष्टि-विकास,
अनृत-कलिल में फँस कर जीवन बन जायेगा ज्ञानाभास।
तब वे षट् - ऐश्वर्यधारिणी परा भगवती चिर अमला,
छपद भ्रमर के अगणित रूपों में प्रकटेंगी स्वीय कला।
षट्पद भ्रमरों के धारण कर असंख्यक वे विकराल,
मारेंगी वह असुर सपरिकर बन प्रलयंकर काल-व्याल।
उनकी दैवी परा शक्ति से आसुर धृति-मति होगी ध्वस्त,
समुदित होगी विमल चेतना अवचेतन को कर उपरक्त।
तब भ्रामरी रूप में उनका अभिनन्दन होगा सब ओर,
भर जायेगा दिशा-दिशा में उनका जय जयकार अछोर।
भक्त जानकर तुम्हें सुनायें मैंने ये आख्यान विचित्र,
राजन् ! हैं अतिशय रहस्यमय ये देवी के चरित पवित्र।
सकल तत्वस्वामिनी सत्वरूपिणी वही हैं प्रकृति परा,
निखिल नाम-रूपों से उनके सार्थवती है वसुन्धरा।
वही विष्णुमाया दुरत्यया अखिल विश्वपालिका ऋता,
त्रिधोदिता धारण करती हैं विविध रूप वे ही अमृता।
उन्हीं भगवती के चरणों की शरण गहो हे नृप! अविलंब,
समाराधिता हरण करेंगी दुरित-दुःख आपत्ति-कदंब।

प्रांजलि प्रयत प्रह्व अंतर में भरकर उनकी कला असीम,
तन्मय होकर ध्यान करो तुम उनकी करुणा का निःसीम।
हे समाधि ! तुम भी आराधो उनके पद-पंकज अभिराम,
देखो बरस रही है उनकी करुणा-कादंबिनी प्रकाम!

वर-प्राप्ति

ऋषि की वाणी की वीणा की यह झंकृति,
बरसी रस के मेघों की बन ज्योतिः-सृति।
अन्तर में नृप के विभा अलौकिक जागी,
नैराश्य-क्लेश की निशा पराजित भागी।
हो चले आवरण भंग-ध्वस्त आणव मल,
जागी दुर्गा की पद-नख-स्मृति दृढ़ अविचल।
अभिनव धृति का था समुदय मनोगमन में,
प्रति रोम सिक्त सच्चिदानन्द-प्लावन में।
लेकर समाधि को साथ सुरथ ऊर्ज्जित मन,
सरिता के तट पर तपोनिरत थे पावन।
सैकत तट पर मृण्मयी मूर्ति रच नित नव,
करते थे विगलित स्वर से देवी का स्तव।
बहु पुष्प, धूप, आहुतियाँ करके अर्पण,
रह निराहार करते थे अर्चन-तर्पण।
निज देह -रक्त से प्रोक्षित बलि से अविरत,
आराधन करते थे दोनों संशित-व्रत।
जपते थे देवी-सूक्त समाधि समाहित,
'दो शरण, शरण्ये' रटते थे नृप संतत।
हे कृपाविग्रहे ! हे कारुण्यकदंबा !
ओ भक्तवत्सले ! दयामयी जगदंबा !
बरसो करुणाकादंबिनि ! बरसो-बरसो !
निज सुत पर जननी स्नेह-सुधा-रस सरसो !
होते ही आये हैं कुपुत्र युग-युग में,

पर नहीं कुमाता हुई कभी इस जग में।
करुणार्णवेशि ! आपत्ति-मग्न मैं अतिशय,
निज स्वार्थ-सिद्धि-हित कहता जय अम्बे जय!
इसको न जननि ! तुम मेरी शठता जानो,
गति क्षुधा-तृषार्त्त पुत्र की प्राकृत मानो।
सहता आया बहु दुःख-क्लेश जीवन में,
आ गया इसी से व्याकुल चरण-शरण में।
अब भी यदि मिटता नहीं पराभव मेरा,
अब भी यदि डाले रही निशा यह डेरा-
उपहसित रहा यदि अब भी मैं अरियों से,
अधिकार-विवर्जित पालित मधुकरियों से-
तो कलुषित होगी अम्बे ! कीर्ति तुम्हारी,
माँ कहाँ रहेगा विरद दीन-दुःखहारी !
मत होने दो वह विरद वितथ हे अम्बे!
श्रितकल्पलते ! सुत हेतु परम अवलम्बे !
पद-दलित करूँ निज अरि-दल को मैं बल से,
मैं रहूँ सदा सेवित ऐश्वर्य अचल से
नित वृद्धिशील निज राज्य अचल मैं पाऊँ,
आसूर्यचन्द्र माँ ! कीर्ति तुम्हारी गाऊँ।
सुन कर नृप की यह विनय परम कल्याणी,
साकार हुईं सदया सामने भवानी।
नयनों से झर - झर कृपा-सुधा झरती थी,
करुणा की नव घन-घटा घुमड़ घिरती थी।
थी निखिल कामदा पद-तल की मधु-लाली,
ऊषा सी समुदित चरणों की नख-पाली।
थे प्रणत सामने वैश्य और नृप दोनों,

मन-बुद्धि-गलित थे, अहं-विवर्जित दोनों।
बोलीं प्रसन्न जगदम्ब-भूप कुलन्दन !
परितुष्ट तुम्हें देती हूँ वर मनभावन !
हत होंगे बल से निश्चय शत्रु तुम्हारे,
पाओगे स्वल्पकाल में वैभव सारे।
अस्खलित रहेगा वह अधिकार तुम्हारा,
चिर वृद्धिशील होगा वह राज्य तुम्हारा।
अविचल होगी इस जग में कीर्ति तुम्हारी,
तुम होगे परा भक्ति के वर अधिकारी।
फिर अपर जन्म में सावर्णिक मनु होकर,
पाओगे तुम सौभाग्य अनन्त अनश्वर।"
होंगे अभीष्ट सब शीघ्र सुसिद्ध तुम्हारे,
मोक्षदा ज्ञानश्री वैश्य रहोगे धारे।
यह कह कर अन्तर्धान हुईं शर्वाणी,
प्रतिध्वनित हुई कण-कण में उनकी वाणी।
वर प्राप्त सुरथ ने स्वाधिकार फिर पाया,
चरणों में नत हत रिपु-दल, राज्य सवाया।
विजया के वर से विजय सुरथ ने पाई,
दिग्वधुओं ने कल कीर्ति-कथा वह गाई।
अब भी कहती हैं कीर्ति-कथा वह गंगा,
ताराहारावलि-भूषित पुण्य-तरंगा।
अब भी हिमगिरि के शिखरों पर चिर शोभन,
करती है उसका रवि-किरणें आलेखन।
करती है अब भी सिंधु-हृदय पर अंकित,
विजया की वह कल कथा कौमुदी विस्मित।

उपसंहार

स्वायत किया साम्राज्य सुरथ ने अपना,
साकार हुआ आदर्श राज्य का सपना।
जो तपोनिरत आचार-निष्ठ व्रतधारी,
ज्ञानी विरक्त इन्द्रियजित चिर अविकारी।
अति कार्य-कुशल, ह्रीमंत, विनीत जितेन्द्रिय,
श्रीमंत, शस्त्र-शास्त्रज्ञ, यशस्वी, गतभय।
वाग्मी, वदान्य, निःस्वार्थ श्रेय के साधक,
निर्माण-परायण जनहित के आराधक।
चुन ऐसे सेवाव्रती प्रजा के प्रतिनिधि,
संचालित की नृप ने शासन की नव विधि।
कर गठित मंत्रि-परिषद् शुचि तन्त्र चलाया,
स्थिर सख्य, साम्य, स्वातंत्र्य देश में छाया।
निज नीति-चक्षुओं से रहकर चिर जागृत,
साधते मन्त्रिगण नव-नव नित्य प्रजा हित।
अविदित था उनको अपना और पराया,
समदृष्टि न्याय का दान सभी ने पाया।
अपराधी सुत भी घोर शास्ति पाता था,
बाधक न दंड-विधि में कोई नाता था।
निर्दोष शत्रु भी अभय विचरते जग में,
प्रतिबन्ध नहीं था कोई जीवन-मग में।
दुर्जन, पापी, खल-मुक्त सकल थे जनपद,
परदार-निरत था कहीं न कोई दुर्मद।

चल पड़े कला-कौशल व्यवसाय अपरिमित,
उद्योगों से था राजकोष वर्द्धित नित।
आध्यात्मिक साधक, गहन ज्ञान-आराधक,
सांस्कृतिक विभव के संवर्द्धक उत्पादक-
जो जीवन मूल्यों का निर्धारण करते,
आदर्शों का आलोक लोक में भरते-
वे संत, मनीषी, कवि, वैज्ञानिक, शिक्षक,
पाते थे मान महान् देश में प्रतिदिक्।
मंत्रिगण चरण-तल में उनके नत होते,
नयनों की पुतली से थे उनको सेते।
सम्राट् स्वयं करते थे उनका अर्चन,
कहते थे - 'ये ही अपने सर्वोपरि धन।'
नृप की उदात्त आचरण-प्रणाली निरुपम,
बन गई राष्ट्र के जन-जन का जीवन-क्रम।
जगदंबा को अर्पित थी गति-मति सारी,
थी मूर्तिमती मातृत्व पुरुष हित नारी,
खुल गये शक्ति के स्रोत वाह्य-अन्तर के।
बन गये हंस सब तरुण ज्योति के सर के।
बृषभ -स्कंधा पर भाल तरणि से दीपित,
लखकर प्रचंड भुजदंड शेष हत विस्मित।
उच्छवसित सिंधु से सहज स्फीत वक्षस्थल,
शिर पर किरीट बन शोभित स्वयं व्योमतल।
ऐसे युवकों से सेनायें शत सज्जित,
रखतीं स्वदेश की सीमायें थीं रक्षित।
बाहर था जैसा महाशक्ति का स्फूर्जन,

अन्तर में वैसा ही संयम का ऊर्जन।
अम्बा का विग्रह हृदय-कमल पर संस्थित,
था भाव-लोक में प्रति जन के संपूजित।
अभ्रंश, अद्वेष, अक्षोभ, अमोह, अमत्सर,
कारुण्य, क्षमा, इंद्रियजय, शुचिता निर्भर।
थे भाव-पुष्प ये अर्पित चरण-वरण में,
चैतन्य-ज्योति जागृत थी करण-करण में।
थी नाभि-कुण्ड में दीप्ति चेतना-ज्वाला,
जाता था जिसमें अक्ष-वृत्ति-हवि डाला।
जो एधमान था चिन्मय सतत निरिंधन,
उस ज्ञानानल में था हविष्य बन हुत मन।
क्षय हुए तापत्रय, ध्वस्त अशेष क्लेश-घन,
बन गया व्यक्ति का जीवन तप कर कुन्दन।
चारित्र्य-ज्योति फैली समाज में अनुपम,
था पुष्टि-तुष्टि से मंडित प्रति गृह-आश्रम।
प्रति वर्ण, वर्ग में था सौहार्द परस्पर,
कोई न दीन था, दुखी नहीं था कोई,
रोगी, विकलांग, अपुत्र नहीं था कोई।
शोषक-शोषित अथवा उत्पीड़क-पीड़ित,
कोई न वहाँ था पूत-पतित जेता-जित।
परिवार एक बन गई धरा यह विस्तृत,
था स्वर्ग स्वयं चरणों में विनत अधिष्ठित।
अनुकूल नियति थी, देश-काल मंगलमय,
पाकर अभीष्ट सब जीवन निखिल निरामय।